उत्सर्ग

[सामयिक व सामाजिक उपन्यास]

गौड़

हिंदिया प्रकाशन
चांदनी चौकः दिल्ली-6

UTSARG : BY GAUR

Price Rs. 6.25

मूल्यः ६.२५

यंग पब्लिशिंग हाउस द्वारा प्रकाशित एवं डिसेंट प्रेस दिल्ली द्वारा मुद्रित।

नई पीढ़ी एंव भावी नागरिकों को सप्रेम
सर्मपित है

—गौड़

ज्यों ही सुमित्रा ने घर में प्रवेश किया, वहां बैठे चन्द्र कान्त को पिता से बातें करने में लीन देख, वह भी इन्हीं के पास बैठ गई। और दिनों की भांति उस नें चन्द्र कान्त से बात नहीं की पिता को सम्बोधित कर बोली, देख लिया पिता जी, आपनें। आप उन्हें सीधा कहतें हैं, दो दिन से सिर पटक रहीं हूं परन्तु यह है, मानते ही नहीं।

लड़की की बात सुन बाबू दीन दयाल हंस दिये तेरी बात न मानने से कोई सीधा नहीं रह जाता, यह तो मैं भी जानता हूं, परन्तु बेटी तेरी वह बात क्या है, क्यों यह नहीं मानते ? यह बताये बिना तेरा बूढ़ा पिता कुछ कह नहीं पायेगा।

आप क्यों कहनें लगे, आपके तो यह लाडले हैं, मैं पूछती हूं यदि उस ही बंजर में रहना था तो जर्मनी क्यों गए। इन्जीनीयरिंग करनें की क्या आवश्यकता थी। सुमित्रा की बातें सुन चन्द्र कान्त मुस्करा दिया।

बाबू दीन दयाल कान्त को अपना पुत्र समझते आये थे, घोषणा न करने पर भी सब यही समझते थे, कि अपने मित्र जयपाल के सुपुत्र चन्द्र कान्त को लड़की सौंपने की बात उनके मन में है, सुमित्रा और चन्द्र कान्त भी मन हीं मन यह समझते थे। एक प्रकार से चन्द्र कान्त को जर्मनी बाबू दीन दयाल ने ही भेजा था। जयपाल ने बहुत कहा — दयाल मुझ पर इतना ऋण क्यों चढ़ा देना चाहते हो भाई ?

हंस कर उन्हों ने मित्र की बात टाल दी थी—"अरे तुम तो पागल हो गए हो, भला जमना दास के पोते पर भी कोई ऋण चढ़ा

सकता है, रही कान्त की बात, उस का तुम से क्या सम्बंध, वह तो मेरा लड़का है तुम्हारा नहीं। ,,

"देखो दयाल ? हमारे तुम्हारे समय दूसरे थे, परन्तु ग्राज कल के लड़के पढ़ लिख कर मां बाप को कुछ नहीं समझते, इसी कारण तो कहता हूं व्यर्थ में कोइ झूठी ग्राशा मत पाले रखो"

"नहीं जी नहीं, मेरा कान्त ऐसा नहीं है, ग्रौर क्या हुग्रा यदि यह लोग नहीं चाहेंगे तो, केवल एक के स्थान पर दो विवाह करनें पड़ेंगे। यही तो होगा।

"जो तुम्हारा मन चाहे करो, फिर मुझे दोष मत देना कह देता हूं।"

"हां हां नहीं दूंगा, बस !"

कान्त, दयाल बाबू के उद्धगार जानता था, इसी कारण कोई भी बात कह कर उनका मन नहीं दुखाना चाहता था। सहज भाव से बोला "—परन्तु सुमित्रा ! पिता जी की आज्ञा जो है।"

"होगी ग्राज्ञा ! मैं पूछती हूं चाचा जी को तुम्हारे भविष्य से खेलने का अधिकार किस ने दिया।"

सुमित्रा की बात का उत्तर दिया दयाल बाबू ने —' 'गुरुजनों को अधिकार दिया नहीं जाता, वह तो स्वतः बना रहता है बेटी ! कान्त यदि गांव में जाना चाहता है तो तू इसे रोक मत।"

स्वंय ग्रपने पाँव पर कुल्हाड़ी मारना यदि किसी को कहते है, तो वह यही है,मेरी यही बात ग्राप लिख रखिए।"

बात कर, सुमित्रा फुलाए मुंह बैठी रही। चन्द्र कान्त दयाल बाबू को 'बाबू जी' कहता था, बोला—"अब आप ही इसे समझाइए बाबू जी।"

कान्त की बात सुन सुमित्रा बिगड़ खड़ी हुई- "यह मुझे क्या समझायेंगे, तुम दोनों की क्या गठजोड़ है, इतना भी क्या मैं नहीं समझती।"

"तुम सब कुछ समझती हो बेटी ! मै बूढ़ा ठहरा, उन्नीसवीं शताब्दी का जीव। इसी कारण तुम्हारी बातें नहीं समझ पाता· आज तेरे चाचा नहीं है, जब वह जीवित थे- तब की बातें ही मुझे पता है वही बातें समझ पाता था, बड़े भाई ने केवल एक बार कहा, जयपाल घर की देख भाल करने के लिए किसी का गांव में रहना आवश्यक है। उन दिनों ढूढ़ने पर भी बी०ए० नहीं मिलता था, तेरे चाचा ने तो एम० ए० किया था। बड़े भाई की आज्ञा हो जाने पर एक दिन भी भविष्य की बात उसने नहीं कही, हो सकता है वह मूंख हो, परन्तु मूंख होने पर भी वह भूखा नहीं मरा।"

"भूखा मरने को ही दुर्भाग्य नहीं कहते, गांव से निकल और लोग तो लखपति हो गए, परन्तु चाचा जी, रहने दो उन की बात आप मुझ से अधिक जानते हैं।"

"सुमित्रा के अन्तिम शब्दों में कटाक्ष छुपा था वह दोनों से छुपा न रहा - परन्तु उसकी बात का उत्तर दिया सुमित्रा की मां पार्वती ने— "देखती हूँ तू बहुत उदंड होती जा रही है।"

पार्वती की आयु पचास से ऊपर हो चली थी परन्तु देखने पर वे जैसे चालीस से ऊपर नहीं दिखाई पड़ती थी। तांबे जैसे रंग, तीखे नख

शिख, मुख पर कठोरता का कोई चिन्ह न दखाई पड़ने पर भी एक बात स्पष्ट झलकती दिखाई देती है कि उस नारी की अवहेलना नहीं की जा सकती एक बार आदेश देने पर उसे टाला नहीं जा सकता, सरलता से कही गई बात को भी मस्तिष्क नत कर ग्रहण करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं।

किसी कार्य से वह बाहर आई थी, लड़की की बात उस के कान में पड़ गई। बोली "गुरुजनों के प्रति कड़वी बातें नहीं कही जाती। ,, साथ ही कान्त को नमस्ते का उत्तर देते हुए बोली "तुम इन बाप-बेटी के पास मत बैठा करो, कान्त भीतर मेरे पास क्यो कही चले आये।"

" तुम्हारे पास आये बिना क्या रहता हूं मां।" थोड़ा रुक कर बोला- " मां पिता जी मरने से पूर्व एक आज्ञा दे गए थे, उसी को लेकर लड़ मुझ से सुमित्रा रही है, कहती है वहां जा मैं अपनी सर्वनाश कर लुंगा।"

"कुछ नहीं होगा रे, यह तो पागल है, बड़ों की आज्ञा मानने से कभी दुख नहीं होता।"

"सच मां!" प्रसन्नता से खिल कान्त बोला - " मैं तो समझा था तुम्हारी आज्ञा नहीं मिलेगा।"

"उसी समय सुमित्रा ने तुनक कर कहा" – गांव क्यों मां! इन्हें काले पानी क्यों नहीं भज देतीं!"

" गांव क्या काला पानी होता है? नहीं बेटा यह तो पागल है, वह क्या अब तुम को कुछ और कहने आयेंगे?"

"वह तो समझता हूं मां, परन्तु वहां जाकर करूंगा क्या, यह नहीं समझ पाता।"

" वहां रहने पर सब समझ जाओगे भाई ! केवल एक बात का ध्यान रखना तुम जिनके वंशज हो वह लोग छोटे नहीं थे, जिले भर में उन के गौरव को कोई नहीं पा सका। सदैव उन्हों ने दिया है, लिया नहीं। क्या हुआ यदि तुम्हारे दादा परदादा का नाम सुनते ही लोग भूमि पर पड़ कर नमस्कार नहीं करते, फिर भी श्रद्धा से उनका मस्तक झुक जाता हैं।"

मां की बात का उत्तर सुमित्रा ने दिया "तुम यह क्यों भूल जाती हो मां उन के पास लाखों रुपये थे, और इन के पास छदाम भी नहीं।"

बाबू अभी तक चुप बैठे थे, बोले "छदाम न होने से क्या बनता है, जब इनके पूर्वजों को बंगाल से निकाला गया तब उनके पास क्या था, ?

कंठस्थ किया, ऋग वेद ! नादरशाह की क्रूरता से भय खा जब इस के परदादा परशुराम दिल्ली से भागे तब मल–मूत्र का टोकरा सिर पर रखे केवल प्राण लेकर ही गांव में जाकर बसे थे, तब क्या था ? नहीं नहीं, कभी पैसा न रहने से भी प्रतिभा नष्ट नहीं हो जाती।"

दयाल बाबू की बात सुन कर कान्त ने कहा "परन्तु बाबू जी ! वह समय और थे, आज तो लोग गांव से भाग कर नगर की ओर दौड़े चले आ रहे हैं।

उत्तर दिया पार्वती ने " चले आ रहे हैं, परन्तु इसी से क्या सुखी हो पाये हैं ? धन बटोरने के उपक्रम में क्षण भर को सिर उठा जीवन के वास्तिविक सुख की ओर किसी का भी ध्यान नहीं जाता, तुम लोगों की भांति पढ़ी लिखी मैं नहीं हूं, परन्तु एक बात समझती हूं जब मनुष्य किसी एक ही वस्तु से अनेको सुख बटोरना चाहता है तो सुख

से बहुत दूर चला जाता है। इन्हीं कारणों से पैसे के विराट स्वरूप के नीचे मनुष्य दब कर रह गया है।"

मां की बात का उत्तर दिया सुमित्रा ने "तुच्छ कह देने से ही पैसा तुच्छ नही हो गया है, आज के युग में इसके विना तो मनुष्य दो श्वास भी नहीं ले सकता मां!"

"नहीं ले सकता इस कारण कि वह उस के बिना श्वास लेना चाहता नही, परन्तु अब और अधिक खड़ी रह कर तर्क वितर्क मै न कर सकूंगी न ही तो तुम बाप बेटे वही करो" कह वह भीतर चली गई।

उठ कर कान्त भी पार्वती के पीछे रसोई पहूंचा। पीठ कान्त की ओर सरका पार्वती बोली-आ बैठ.........

एक बात कहूं कान्त बोला ....

"एक क्यों तू दस बात कह!"

"तुम मुझ से रुष्ट तो नहीं हो।"

"वाह रे लड़के तू क्या पागल हो गया है, या मैं पागल हो गई हूं जा मां होकर अपने लड़के पर रुष्ट हूंगी और वह भी बिना कारण।"

"सोचा था मैं गांव जा रहा हूं इसी से ...."

कान्त की बात सुनकर पार्वती गम्भीर हो गई "लड़की के कारण तुम से रूठूंगी, इतना ही छोटा तूने मुझे समझा है देवर जी कितने महान थे, यह तुम लोग नहीं समझ सकते, समझती हूं मैं!" कहते-कहते मानों वह अपने में खो गई हो - मानो कान्त से न कह वह स्वंय अपने से कह रही हो, अपने पिता से कह देवर जी मुझे व्याहना चाहते थे, तेरे बाबू जी का जब तक उन से परिचय भी नहीं हुआ था तेरे बाबू जी और मैं बचन बद्ध हो चुके थे।

इन्होंने मेरे पिता जी से विवाह के लिए कहा—मारे भय के पिता जी कांप उठे बोले "अब कुछ नहीं हो सकता - तुम जमना दास नहीं को जानते ! " उस समय तुम्हारे परदादा जीवित थे, उन ही का नाम ले बोले - वह हम लोगो को जीने नही देंगे।"

तेरे बाबू जी बोले-'वाह कैसे नहीं जीने देंगे ऐसा क्या गद्दर मचा है पुलिस क्या है नहीं।'

पिता जी बोले, "है भाई पर इन लोगों के लिए नहीं है, छहों भाई वसूली करने गए थे, लाला ने पैसे न दे कड़वी बात बोल दी, फिर क्या था, मार काट कर जमना में फैंक दिया—थानेदार आया, अभागा-कहीं गाली दे बैठा —गर्दन पकड़ एक भाई ने धरती पर रगड़ना आरम्भ कर दिया दूसरे ने लातें मारीं। फिर भी कोई कुछ न कर सका ...सब से छोटे का नाम है चन्द्र भान जिसे लोग दियासलाई कहते है। डिप्टी कमिशनर से बोला - "तुझे ब्रह्मण कौन कहता है, तू तो कसाई की संतान है कसाई की"

इन्होंने पूछा डिप्टी कमिशनर ने जेल नहीं भेज दिया"

भेजता कैसे भाई — सरकार की ओर से बूचड़ खाना खोला जा रहा था जमना दास ने अपने लड़के को बुला कर कहा, "थू है तुम लोगो पर, तुम्हारे रहते बूचड़ खाना खुले, डूब कर नहीं मरा जाता तुम से ?

नहीं खुलेगा बापू ! कह छहों उठ खड़े हुए, जिले भर में परवाने चले गए, जमना दास का कहना टालने का साहस किसी मे नहीं था, गड़ासे ले ले कर लोग जा पहुंचे, रेल के टिकट बंद हो गए, समालखे का टिकट पचास रुपय में भी नहीं मिलता था, परन्तु रुका कौन था ? मैंने अपनी आंखों से देखा है दसों हजार लोग इकठे हो गए, मन्दिर में कड़ाहे चढ़ गए, फौज बुलाई गई ' परन्तु कोई मारा नहीं, डिप्टी

कमिश्नर से किसी ने कह दिया "इस सारे रोग की जड़ चन्द्रभान है।" उसे बुलाया गया, डिप्टी कमिश्नर ने लाल पीली आंखे कर कहा "चन्द्र भान तुम अपने आप को गिरफ्तार समझो।

"क्यों हजूर ?" उसने पूछा —

"तुम बूचड़खाना जो नहीं खुलने देते।"

"मैं ब्रह्मण हूं मेरे सामने गाय नहीं कट सकती।"

"मैं भी तो ब्रह्मण हूं।"

"तुझे ब्रह्मण कौन कह सकता है, तू तो कस्साई का बीज है।" कह कर चन्द्रभान तो चला गया, डिप्टी कमिश्नर ने थानेदार को बुला कर आज्ञा दी, "चन्द्रभान को पकड़ लो।"

थानेदार कांप गया, बोला "अनर्थ हो जाएगा हजूर !"

"बको मत जो कहा है करो।"

"थानेदार ने पेटी उतार कर रख दी" नौकरी के लिए जान नहीं दे सकता हजूर, उसे पकड़ लेने पर आप भी जीवित नहीं लौट सकेंगे।"

"मै सब का भून कर रख दूंगा।"

वह आप कर सकते हैं, तीस चालीस हजार को भून डालने पर भी आप नहीं बचेंगे, यह जमना दास के लड़के हैं, जमना दास के।" सच जानो बेटा, फिर कुछ भी करने का साहस डिप्टी कमिश्नर को नहीं हुआ बूचड़ खाना नहीं खुलना था नहीं खुला।" पिता की बात सुन मे सिहर गई। तेरे परदादाओं का जहां इतना रोब था, वहां उनकी दया की भी कम विख्यात नहीं थी, जिस ने जब कभी कुछ मांगा उन्हों ने मना नहीं किया —इसी आशा से एक चद्दर ओड़े तेरे दादा से मैं मिल

ने गई, परन्तु मिल गए तेरे पिता, उन्हें बच कर जाते देख राह रोक कर मैं खड़ी हो गई" वे बोले "मुझ से कुछ काम है।"
हां ?" चादर से मैं ने मुंह ढांप रखा था, उसी कारण वह पहचान नहीं पाये थे, मुंह से चादर हटा बोली "कुछ मांगने आई हूँ।"

"आश्चर्य में पड़ कर वे बोले "कौन ? पार्वती ? क्या चाहिए?"

"तुम दे सको तो बता दो नहीं तो मैं तुम्हारे पिता के पास चली जाती हूँ।" तेरे पिता ने छाती फुला कर कहा —" पास रहने पर जमना दास का वंशज ना नहीं कहता. निस्संकोच मांगो।"

" तब ठीक है "एक ही स्वांश मे कह गई " मैं तुम से विवाह करना नहीं करना चाहती।'

मारे क्रोध से तेरे पिता के कान तक लाल हो गए, तू क्या मेरा अपमान करने आई है, तुम लोगों के टुकड़े-टुकड़े कर कुत्तों के आगे फेंक दूंगा, जानती है।,

वह करने पर भी मुझ से विवाह न करने पाओगे। रही तुम्हारे अपमान करने की बात, वह मैं नहीं करना चाहती —"मैं वचन बद्ध हूँ, एक बार पति रूप में जिसे चुन लिया है, उसके अतिरिक्त और किसी से विवाह नहीं कर सकती, सम्भवतः तुम भी नहीं यह चाहोगे।"

मेरी बात सुन तेरे पिता दो क्षण को चुप हो गए...फिर बोले... "दूसरों की पत्नी आदरणीय होती है इस लिए तुम्हारा नाम भी नहीं-लूंगा तुम निश्चित हो जा सकती हो। सचमुच विश्वास नहीं हुआ, आंखे भर आई झट झुक कर उनके पांव छूने चाहे, छी, छी कहते वह पीछे हट गए बोले............

"जिस से विवाह करने जा रही हो उसका नाम क्या है, नहीं बता सकेगी"। मेरे मन में संशय उत्पन्न हुआ बोली-क्यों? वह मेरे मनकी बात ताड़ गए, बोले डर गई ! एक बार देने पर लौटा लेने वाला मैं नहीं हूँ बताना न चाहो तो रहने दो। तेरे बाबूजी का नाम बता दिया। तेरे पिता अपने पिता के पास जा पहुँचे, उनके सामने बैठने का साहस नहीं हुआ, खड़े—खड़े. बोले, मैं विवाह नहीं करूंगा।

इतने बड़े आश्चर्य की बात उनके लिए दूसरी कोई नहीं हो सकती थी। उनकी आज्ञा की अवहेलना कोई नहीं कर पाता था। लड़के की उद्दंडता पूर्ण बात सुन आँखें उठा कर एक बार लड़के के मुख पर डाली "जानता है किस से क्या कह रहा है ?"

"जानता हूँ पिता जी ! परन्तु पराई स्त्री से मैं विवह कैसे कर सकता हूँ।"

"कह क्या रहा है—जानते हुए भी गोपाल ने ......

"उन्हें इसका पता नहीं है पिता जी यह दोनों बचन बद्ध हैं, यही बात आज पार्वती देवी स्वयं मुझ से कह गई हैं।

"और तूने क्या कहा।"

"मैं क्या कहता-- आज तक जमना दास के परिवार से निराश कोई नहीं लौटा"

उन्होंने उठ कर बेटे की पीठ थप-थपाई बोले—अरे तो फिर डरता काहे को है-और देखिओ ! तू गोपाल के यहां चला जाइयो, उससे कहियो हमें यह विवाह नहीं करना।"

"परन्तु उनकी बदनामी!"

"तू भी निरा पागल है, कौन बदनामी कर सकता है, किस की माँ ने इतना दूध पिलाया है।"

"अच्छा तू रहने दे, तुझ से कुछ न होगा, मैं ही चला जाऊंगा।"

दूसरे दिन तेरे दादा पिता जी से घर आकर बोले_गोपाल यह विवाह नहीं होगा।

पिताजी बिगड़ उठे—"शम्भू तुम्हारी ही आन है यह बात नहीं है हमारी भी इज्ज़त है।

"अरे तो टेढ़ा क्यों हो रहा है-तेरी बेटी का विवाह मैं स्वयं करूंगा, वह जैसे तेरी बेटी वैसे मेरी बेटी-दयाल को बुला उसके हाथ पीले करदे।"

उसके पश्चात क्या हुआ, क्या नहीं, जानती नहीं भाई परन्तु तेरे बाबू जी से विवाह हो गया, तुम्हारे कुल की छत्र छाया होने पर किसी का एक भी शब्द नहीं सुनना पड़ा।

अपने पूर्वजों की बात सुन कर एक प्रकार के गर्व का अनुभव कान्त को हुआ, पिता के मुख से एक दिन उसने सुना था कि उसकी परदादी ने, उसके किसी एक दादा का बीस वर्ष तक मुंह नहीं देखा उसी घटना का उल्लेख कर उसने पूछा—"अच्छा मां! परदादी ने किसी दादा का बीस वर्ष तक मुख नहीं देखा, यह क्या ठीक है।"

"ठीक ही तो है बेटा! तेरे दादा थे धनपाल, तेरे दादा ने केवल इतना कह दिया था—मां तू खुद भी पिली रहती है दूसरों को भी काम में जोते रखती है।"

बस फिर क्या था बोली—"काम करते करते ही इस उमर को पहुंची हूं, आज तू मुझे सिखाने चला है यदि आदमी है तो अब कभी अपना मुह मुझे मत दिखाइयो।"

तेरे दादा सटपटा गए बोले —तू तो बिगड़ गई मां ! तुझे छोड़ कर कहीं जा सकता हूँ भला ! बोली-"ठीक है जाने को मैं नहीं कह रही परन्तु अब से तू मेरा मुख नहीं देख सकेगा ।" और साथ ही पल्ला खींच कर उन्होंने मुहं ढक लिया ।

सचमुच तेरे दादा उनका मुख फिर किसी दिन नहीं देख पाये जब उनकी मृत्यु हो गई तब मुहं का कपड़ा उठा तेरे दादा बिलख-बिलख कर रोये नहीं बेटा ! तेरे कुल के लोग.........बाप रे उन से भगवान बचाये तेरी एक और मां थी, वह कहीं तेरी ताई के मना करने पर भी अपने भाई की मृत्यु पर घर चली गई-तेरी ताई ने सात दिनों में तेरे पिता का विवाह करने की बात कही थी, और सच जानना कान्त, लड़के समेत उसे छोड़ दिया और सात दिनों के भीतर ही देवर का विवाह कर दिया, वह बिचारी लड़के को लिये एक बार जो गई फिर तेरे पिता की चोखट नहीं चढ़पाई । उसके बाप और भाई ने लाख सिर पटका परन्तु तेरी ताई तिल भर भी नहीं पसीजी ।"

"यह तो अन्याय है मां"

अन्याय तो है ही बेटा—तेरे पिता से मैने भी एक दिन यही बात कही थी बोले—"भाभी बड़ों की आज्ञा पालन करना मेरा कर्तव्य है, रही अन्याय की बात, वह तो उनका कर्तव्य है कि वह देखें, उनकी आज्ञा के कारण किसी पर अन्याय तो नहीं हो रहा ।

मैं चुप हो गई, कहती भी क्या ?

पिता पितामह की बातें सुनते सुनते कान्त को ऐसा लगा मानों जिन लोगों की बातें उसने सुनी हैं उनका उस से कोई सम्बन्ध न हो, उसके ठीक विपरीत किसी बीते हुए युग की बातें सुन रही हो, एक ऐसे युग की बात जिसमें मनुष्य न रहकर दैत्य रहते हों, जिनकी हर वस्तु आज के युग से कहीं बढ़ी हुई हो, बल साहस ही नहीं उदारता,

क्रूरता न्याय—अन्याय सब ही महान हो, जिनको किसी भी बात की कोई चाह नहीं। चन्द्र कान्त के अतिरिक्त एक और श्रोता चुपचाप वह सब सुन रहा था, बल पूर्वक रोकी गई निश्वांस एक छुट जाने के कारण दोनों ही उस ओर देख उठे। विस्मय से जड़ी हुई सुमित्रा को खड़ा देख स्नेह से पार्वती ने कहा "क्या बात है सुमित्रा !" तुम्हारे पांव पड़ती हूं मां ! उनकी उस अभागिन मां का पता मुझे बता दो मैं चाहे बच्चे पढ़ाऊं चाहे भीख मांगू परन्तु उन्हें और दुःख पाने नहीं दे सकती"।

"तुझे कुछ नहीं करना होगा री पगली. देवर जी हर मास मेरे पास रूपये भेजते रहते थे। मैं उन दोनों के पास पहुँचवा दिया करती थी। वे कहा करते थे देखो भाभी ! वह हत भागनी मेरे ही द्वार पर तो नहीं आ सकती। यदि उसका बेटा चाहे तो अपनी मां को रख सकता है ....

कह पार्वती ने दीर्घ निश्वास छोड़दी।

ठीक है मां ! तुम मुझे बता दो मैं कल ही उन्हें लिवा लाता हूं।"

"यही तो तुम्हें शोभा देता है भाई।"

"अच्छा मां अब चलूं।"

"तू गांव कब जा रहा है। "

मैं परसों जाऊंगा — और हां शचि अब तू अधिक क्रोध मत कर, और फिर गांव में चले जाने पर भी तुम लोगों से दूर नहीं जा पाऊंगा " " तुम लोग मनुष्य थोड़े ही हो जो तुम पर क्रोध किया जाये राक्षस हो राक्षस"। आवेश में पांव पटकती सुचित्रा लौट गई, मन्द मुस्कान मुस्काता कान्त भी विदा होगया।

विमाता की ओर देखते ही विस्मय से चन्द्रकान्त अवाक रह गया, उन्नत ललाट, तोते की भांति तीखी नाक, गहन गम्भीर, बड़े बड़े नेत्र उनके नीचे सूक्षम सी कालिमा के अतिरिक्त मानो शरीर का कोई भी अंग इतने बड़े सहे गए अत्याचार के विरुद्ध प्रतिकार न ले पाया हो, मुख मंडल पर खलती सहज मुस्कान देखने से लगता था, मानो उस नारी के स्नेह की थाह नहीं, परन्तु न जाने क्यों चन्द्र कान्त के मन में एक बात समा गई कि स्नेह, ममता, दुलार के साथ ही उसमें कुछ और भी है, जिस के कारण उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती, कान्त ने अपनी बीस वर्ष की आयु में ऐसे प्रचंड तेज वाली नारी कभी नहीं देखी थी, वैसे सुमित्रा की मां के अतिरिक्त और किसी को निकट से देखने का अवकाश भी उसे नही मिला था, तो भी उन दोनों नारियों में एक भिन्नता उसे स्पष्ट दिखाई पड़ी कि विमाता को पाना सहज है, परन्तु एक बार खोने के पश्चात फिर उसे कदापि नही पाया जा सकता।

भीतर सूचना कर देने से सुखदेई चली आई थी, आगुन्तक कौन है ? किस कारण वह उससे मिलना चाहता है, इसमें से किसी बात का पता उसे नहीं था। परन्तु जब कान्त ने उसके पांव छू कहा "मैं तुम्हारा छोटा लड़का हूं मां !' तब सुखदेई को समझते समय नहीं लगा।

कान्त की पीठ पर हाथ फेर कर बोली "इतने दिनों पश्चात मां की सुध ली बेटा।'

"जान नहीं पाया था, जानते ही दौड़ता चला आया हूँ।'

"ठीक ही है, बेटा, यदि तुम लोग चिंता नहीं करोगे तो और कौन करेगा।'

"एक विनती है मां ! तुम्हारे इस लड़के के कंधो पर पिता जी

न जाने क्या क्या लाद गए हैं, तुम्हें अपने इस लड़के के साथ चलना होगा।'

"लेने तो आ गए हो, परन्तु तुम्हारी ताई ने यदि फिर बाहर निकाल खड़ा किया तो ?"

मेरे घर से तुम्हे निकालने का साहस किसी में नहीं होगा मां? यदि निकाल भी दिया तो तुम्हारा यह बेटा भी तुम्हारे साथ चला आएगा, मुड़ कर एक बार भी उस ओर देखेगा नहीं। '

"जानती हूं रे ? परन्तु मेरे कारण तू क्यों इस जंजाल में फंसना चाहता है, बता तो ?

"पहिले कभी तुम्हे देखा नहीं था। आज देखते ही पहचान गया हूँ मेरी मां-सी कोई नारी इस संसार में नहीं। उनको पा जाने के लिए संसार भर के जंजाल सिर लिए जा सकते हैं। फिर यह तो कोई जंजाल भी नहीं है।"

कान्त की बात सुन कर सुखदेई गम्भीर हो गई "उस द्वार पर जाना तुम्हारी माँ का नहीं हो सकेगा ......"

बीच में ही कान्त बोल पड़ा " ठीक है मां ? उस द्वार पर तुम्हें जाना नहीं पड़ेगा, तुम जाओगी अपने लड़के के घर।"

"नहीं फिर भी मेरा जाना नहीं हो सकता, वह सब धन सम्पति तुम्हारे पूर्वजों की है, उसमें से तो एक पैसा भी नहीं ले पाऊंगी दूसरों के टुकड़ों पर तुम्हारी यह मां नहीं जी पाएगी। "

बात सुन कर कान्त की आंखें भर आईं. गले में पड़ी चादर के सिरे से आंखें पोंछ कर वह उठ खड़ा हुआ ... द्वार तक पहुंच, वह पलट पड़ा।

अपने इन दुर्दिनों में तुम्हें अपने पास रख अपना भार कुछ हलका कर सकूंगा यही सोचा था, सोचता था मां है, नहीं कैसे आयेंगी, पावं पर गिर, सिर पटक-पटक कर उन्हें ले आऊंगा। परन्तु देखता हूं अभी मां की क्षमा मुझे नहीं मिली। ,,

सुखदेई का मन ममता से भर आया. आज उसका अपना लड़का उसके द्वार से निराश हो कर लौट रहा है. क्या हुआ वह बिमाता है. फिर भी जो लड़का अपनी कोख से जन्में लड़के से अधिक स्नेह की आशा से उसके पास चला आया, जिस ने एक बार भी नहीं सोचा कि विमाता को मां कह देने से ही पल्ले का बहुत कुछ देना पड़ेगा। उसे क्या सवेरे के लिए खोया जा सकता है? सहसा उसे कान्त के दुर्दिनों की बात स्मरण पड़ी बोली "कैसे दुर्दिन आ गए हैं अभागे मुंह खोल कर बताएगा भी, या यूं ही अनाप शनाप बकता रहेगा।"

'अभागे' शब्द सुन कर कान्त को पुनः आशा हो चली बोला "इससे बड़े दुर्दिन क्या होंगे मां, पिता जी चल बसे, सिर पर पन्द्रह बीस हजार का ऋण छोड़ गए हैं, तीन चार मुकदमे पीछे लगे हैं, मन्दिर हैं, उस ओर कोई आंख उठा कर नहीं देखता, वह भी गिरता जा रहा है, टूटा फूटा मकान है, सराए की दुकानों पर बनियों ने अधिकार जमा लिया है।" एक ही श्वांस में कान्त सब पर कुछ कह गया।

पति के स्वर्गवासी होने की बात सुन कर सुख देई के मन को धक्का सा लगा, बोली — कब सिधारे ?"

"तीन मास पहले ।"

दीर्घ निश्वास छोड़ बोली — " आज के दिन ठहरना होगा भाई, कल चलगें ।"

कान्त की छाती पर से मानों कोई बहुत बड़ा बोझ उतर गया हो —बोला — "बड़े भईया कहां हैं मां, दिखाई नही पड़ता !

उत्तर देते समय सुखदेई का स्वर अत्यंत कठोर हो उठा बोली— "वह यहां नहीं है, दिल्ली है !"

"देखता हूँ एक बार फिर दिल्ली जाना होगा, उनसे भी क्षमा मांगनी है ।"

"नहीं कान्त उसके पास जाने की तुझे आवश्कता नहीं और देख उस लड़के का नाम भी मैं सुनना नहीं चाहती ।"

सुखदेई के अपने लड़के विमल ने वकालत पास की थी—पति की भेजी एक एक पाई सुखदेई ने उसकी शिक्षा पर व्यय कर दी थी, उसी लड़के ने जब पिता के धन से प्राप्त शिक्षा का सदुपयोग पिता पर मुकदमा चलाने के लिए करना चाहा तब सुखदेई ने लड़के को समझाया "पिता से मुकदमे बाजी करेगा, यह मति तुझे किसने दी ।'

"मति कौन देता है मां ? मां पर किये गये अत्याचार का प्रतिकार लेना होता है, यह भी कोई सिखाने की बात है।"

"वह बात मेरी उनकी है, इसमें तुझे पड़ने की आवश्यकता नहीं ।"

"ठीक है मां तुम्हारे उन के बीच मे नहीं पड़ता परन्तु पूर्वजों की सम्पति पर जितना औरों का अधिकार है उतना मेरा भी है,तुम्हारे कहने पर भी मै मान नहीं सकूंगा मां, यह मै बताए देता हूँ ।

"विस्मय से सुखदेई उस के मुख की ओर देखती रह गई" ठीक है तेरे

मन में जो आये सो कर, मैं तुझे रोकने नहीं जाऊंगी, परन्तु अपनी यह कीर्ति मुझे मत सुना।"

"तुम तो पागल हो गई हो मां। कम से कम लाख डेढ़ लाख की सम्पत्ति है।"

"हां पागल ही तो हूं, जिस समय तेरे पिता के यहां से आ उस समय तू केवल साल भर का था तेरे पिता के दूसरे विवाह की बात सुन भैया आग बबूला हो गए और बोले "व लोग अपने को क्या समझते हैं कोर्ट में नहीं घसीटूं मेरा नाम भी गंगा चरण नहीं।"

मैंने समझाना चाहा 'नहीं भैया उन्होंने बुरा किया, इसी से क्या हम भी बुरे हो जायें'

भैया चिढ़ गये—बोले—तू अपनी बकवास रहने दे, यह सब बीज तेरे ही बोए हुए हैं।

उस दिन मैंने भैया को वह कहा जो कभी नहीं कहा" देखती हूं"तुम उन्हें कैसे अदालतो में घसीटोगे. मेरे सुख-दुःख से बढ़ कर उस घर की आबरू है. अपने दादमरे के नाम पर कीचड़ नहीं उछलने दूंगी —यदि मैं तुम पर भारी हो गई हूं तो बता दो मैं कहीं भी निकल जाऊंगी।"

उस दिन के पश्चात, भैया ने कभी एक शब्द भी नहीं कहा, और तू आज मुझे पागल कहता है, अब तू बड़ा होगया है, छोटा रहने पर तेरी यह मां अपने हाथों तेरा यह गला घोंट देती—और एक बात का ध्यान रखना विमल, आज भी वह करने की शक्ति तेरी मां में है, मैं उस घर की बहू हूं जिस घर में उद्दंडता के कारण मां ने बीस वर्ष तक लड़के को मुख नहीं दिखाया।"

"परन्तु मां!". विमल ने कुछ कहना चाहा उसे बीच में ही रोक सुखदेई बोली —"बस अब एक शब्द भी और नहीं सुन सकूंगी-

मेरे पास एक भी पाई मत भेजना किसी प्रकार भी मैं ले नहीं पाऊंगी, आने पर फाड़ कर फैंक दूंगी।,,

विमल मां से परीचित था, इसी कारण सिर झुकाए चला गया—उस दिन के पश्चात कई बार मां से मिलना चाहा, परन्तु सुखदेई ने उसे घर के भीतर पांव भी नहीं रखने दिया, भाई के कहने पर बोली एक घर में एक ही रह सकता है, भैया, भानजा या बहिन जिसे चाहो रख लो, कहो तो मैं निकल जाती हूँ।

"उसकी बहिन किस विचित्र मिट्टी की बनी है, यह उस से छिपा नहीं था बोला —"तू हम सब को नाथना चाहती है, मेरा क्या है, अपने आप भूखी मरेगी, कल उस लड़के को भी मारेगी, मार दे, मेरा क्या है, आज मेरा कल दूसरा दिन तेरे नक्षत्र ही ऐसे हैं। बाहर निकल कर भी बड़बड़ाता रहा। अच्छा है, यह लड़की कहीं की कलक्टर नहीं लगी वरना यह तो सब को सूली चढ़वा देती, हम सब डरते हैं इसी से तो धमकाती है मैं भी यदि कड़ा पड़ जाऊं तो.........

बाहर आकर सुखदेई ने भाई पर कड़ी दृष्टि डाली —"मैं कहती हूँ भैया व्यर्थ में राड़ मत बढ़ाओ, मैं आपे मे नहीं हूँ, न जाने क्या अनर्थ हो जाएगा —"

क्या अनर्थ करेगी चंडालनी ......"परन्तु बहिन की ओर देख और कुछ कहने का साहस उस का नहीं पड़ा ,चुप चाप चादर कंधे पर डाल कर बाहर चला गया।"

आयु में सुखदेई उस से छोटी थी, बाल्यकाल से अपनी इस छोटी बहिन को छाती से लगा कर उसे इतना बड़ा किया था, उसी के सुख दुःख का विचार कर विवाह भी नहीं किया। उसकी उसी बहिन ने न जाने कितना कड़वा पानी उस की आंखों से गिरवाया है, बहनोई के

छोड़ देने पर जीवन की आशा त्याग वह लाठी ले उस से जूझ पड़ा था सिर फुड़वा अधमरा होकर वह लौटा था, भाई की दशा देख सुखदेई रो पड़ी बोली—"यदि तुम उन से लड़ने जाओ तो मेरा मांस खाओ।' तब वह बिगड खड़ा हुआ—बोला "हां हां तू तो उनकी ही बात सोचे गी, मेरा सिर जो फूटा है, वह क्या तू देखेगी।

"सुखदेई हंस दी—"पागल नहीं बनते भैया। मेरे लिए तुम्हारे प्राणों पर आ बने मैं यह नहीं चाहती।

"उसकी वही बहिन जब तक उसे घर छोड़ कर चली जाने की धमकी दे बैठती तब वह सह नहीं पाता —इसी कारण उस दिन एकांत में बैठ उसने मन की भड़ास निकाली —"चली जायेगी तो चली जाये मैंने कौन सा बांध रखा है, दो रोटी पोनी पड़ती हैं उसी से धौंस दिखा ती है, मैं क्या दो रोटी नहीं डाल सकता, कोई पूछे, जब छोटी थी, तब कौन रोटी थापता था पर वह थोड़े सोचे गी।" मन की भड़ास निकाल वह डरता डरता घर पहुंचा था —सुखदेई ने भोजन करने को कहा तो मुंह फुला कर बोला —"मैं नहीं खाता।"

दुखी कंठ से सुखदेई बोली,, —"अच्छा भैया मुझ दुखिया से रूठना क्या तुम्हें शोभा देता है। बहिन की बात वह सह नहीं पाया उस का सिर वक्ष में भर लिया—धत पगली तु दुखिया क्यों होने लगी चल रोटी परोस दे, भूख लगी है, मुंह जली आप कुढ़ेगी मुझे जलाए गी—चल।"

कान्त के साथ चले चलने की हां तो सुखदेई ने भर दी, अपना दूसरा लड़का पा जाने से, लड़के की बात भी उसे ध्यान नहीं आई परन्तु जिस भाई ने मां और बाप दोनों का स्थान ग्रहण कर पहाड़ से उस के दिन निकाले हैं उसे आखों से ओझल नहीं होने दिया जा सकता

यही सोच कान्त से कहा —तू कहे तो तेरे माथा भी साथ चलें बेटा। उनकी देख भाल करने वाला.. ......

झट से कान्त ने माँ के पांव छू लिए - "तुम्हारी दुहाई है मां अपने इस लड़के से तुम इस प्रकार की बातें मत करो, केवल आज्ञा दो, तुम्हारा यह लड़का भूल कर सकता है, परन्तु तुम्हारी आज्ञा की अवहेलना नहीं कर सकता। मुझ पर क्या तुम्हे इतना भी विश्वास नहीं।"

"है क्यों नहीं रे। है तभी तो तेरे साथ जा रही हूँ।" कह कर सुख देई ने बीस वर्षीय कान्त का सिर वक्ष में भर लिया।

सायें को भोजन करते कान्त ने फिर विमल की बात छेड़ी, शान्त गम्भीर स्वर में सुखदेई बोली देख कान्त तेरे उस बड़े भैया को यदि कोई शाप नहीं दे पाई तो केवल इस कारण कि माँ अपने लड़के के अमंगल की बात नहीं कहती, सोच भी नहीं पाती, बार बार उस का उल्लेख कर उस का अनिष्ट तू मत कर।"

"इस में बड़े भैया का क्या दोष है, उनके स्थान पर मैं होता तो मैं भी यही करता।"

"नहीं तुम नहीं करते कान्त। धन सम्पति के लिये बाप दादा का नाम उछालने की बात तुम नहीं सोच पाते।"

"परन्तु माँ तुम्हारा अपमान!"

"बेटा अपमान हुआ है, इसी से क्या पूरे कुल को दंड भुकतना होता है।"

"एक बार मुझे उन के दर्शन कर आने की आज्ञा दे दो।"

मैं तुम्हे नहीं रोकूँगी परन्तु एक बात समझ लो मुकदमा उठाए बिना मेरे घर में आना उसका नहीं हो सकता।"

"तुम देखो तो मां! हंस कर कान्त ने उत्तर दिया।"

उसी समय गंगा चरण खेत पर से आया था, कान्त को देख कर प्रश्न भरी दृष्टि से वह बहिन की ओर देख उठा—"पहचाना नही भैया मेरा लड़का कान्त है।"

"ओह', कह वह चुप हो गया।

सुखदेई बोली —"कान्त मुझे लेने आया है।"

रूखे स्वर में गंगा चरण बोले—"तेरा जो मन करेगा, करेगी तो वही, पर मैं पूछता हूँ, जाना था तो तब क्यों नही गई थी, जब इस की मां मरने पर जय पाल लेने आया था"

"तुम भी पागल हो भैया, पति पर मान गर्व किया जाता है, लड़के से नहीं, फिर लड़ाई है तो तुम्हारे जीजा जी से थी, अपने लड़के से लड़ूं ऐसी पागल नहीं हूं।"

"तो जाओ मुझसे क्या पूछ रही हो ?" तुनक कर गंगाचरण ने कहा—साथ ही लौट कर वह बाहर जाने लगा...............

"चले कहां भोजन कर लो -और हां तुम्हें भी मेरे साथ चलना पड़ेगा"

जाता जाता गंगाचरण रुक गया "मैं क्यों जाने लगा, घर बार को ताला मुझ से नहीं डाला जाएगा।"

भाई का क्रोध देख सुखदेई हंस दी "घर वार को ताला क्यों लगाओगे विमल देख—भाल करता रहेगा।"

"यह भी क्यों उसे दे रही हो दे—दो अपने लड़के को।"
"देखो भैया मेरे इस लड़के को कुछ मत कहना, दूसरे के अधिकारों

को पी जाने वाला यह नहीं है। तुम्हारा मन चाहे जिसे दो परन्तु मेरे इस लड़के पर लांछन मत लगाओ।"

"तो मैं क्या कह रहा हूँ तुम और तुम्हारा लड़का सुख से रहो मुझ से क्या मतलब, मुझे क्यों घसीटते हो।"

उसी समय कान्त ने एक विचित्र बात कर दी मामा के पांव पकड़ कर बोला "बड़े भैया के ही मामा तुम नहीं हो मेरे भी हो, देखता हूँ तुम कैसे नहीं चलोगे, बड़े भैया को रुपया पैसा दे दो परन्तु मैं तुम्हें नहीं छोड़ूंगा, यदि चाहो तो अपने इस भानजे के सिर पर ठोकर मार कर चले जाओ, वैसे नहीं।"

कान्त का आचरण देख गंगा चरण पिघल गए —बोले "अरे छोड़ चंडाल, साथ ही सुखदेई को सम्बोधित कर कहा "तेरा यह लड़का बड़ा पाजी है, जानता है, मामा के पांव पकड़ने से मामा फसीज जायेंगे, तुम दोनों ने मेरे पीछे यही ताना—बाना बुना होगा —मेरा क्या है चला चलूंगा —दो रोटी यहां खाता हूँ सो वहां खालूंगा, परन्तु एक बात पहिले से ही कहे देता हूँ, अपने इस बूढ़े मामा को फिर निकाल नहीं सकोगे।"

न जाने क्यों कान्त की आंखें भर आईं ,पिता के चले जाने के पश्चात ऐसी माँ और मामा का सहारा उसे मिलेगा यह उस ने सोचा भी नहीं था। बोला—तुमने मुझे उबार लिया मामा।'

"बहुत हुआ रे पागल! मेरा क्या है मैं तो अभी तेरे साथ चल सकता हूँ मेरे आगे पीछे कौन रोने वाला बैठा है।"

भाई की बात सुन सुखदेई बोली थी,—"भैया ऐसी बात नहीं बोलते।"

खड़ा खड़ा गंगा चरण हंस दिया—"तेरा यह लड़का तो जादू जानता है। सुखदेई।"

३

जर्मनी से लौटते ही चन्द्र कान्त को इस सब बखड़े में पड़ना होगा, इस की आशा उसे नहीं थी। पिता की मृत्यु के तीसरे दिन जब उसे विमल का नोटिस मिला उस समय उसने समझा था कि विमल नाम का कोई व्यक्ति उस के पिता पर झूठा आरोप लगा सम्पति हड़पना चाहता है, इसी कारण प्रति उत्तर में उसे न्यायालय में सिद्ध करने की बात उसने लिख दी थी, एक बार विमल ने उस से मिलना भी चाहा था, परन्तु ऐसे नीचे प्रकृति के मनुष्य से उसका मिलना नहीं हुआ परन्तु जब सब बातें उसे पता चलीं तब वह सब उसे न्याय संगत लगा।

इसी कारण मां और मामा को गांव में छोड़ संध्या को ही वह दिल्ली लौट आया था। पिता जो धन सम्पति छोड़ गए थे वह विशेष कुछ नहीं थी, जो तीस चालीस हजार की सम्पति शेष थी उस पर भी इतना ऋण था कि सारी सम्पति बेच डालने पर भी उसे निपटाया नहीं जा सकता था, यह बात दूसरी है कि उस ऋण की लिखित पड़त नहीं थी, लेने वाले भी विशेष उतावले नहीं दीख पड़ते थे, पिता का भी आदेश वह सब ऋण शीघ्रातिशीघ्र उतार देने का था।

कान्त के पिता जयपाल की गणना लखपतियों में की जाती थी अपने पिता से लाखों रुपये का लेन देन उन्हे मिला था सम्पति के नाम दो बाग, दो सौ बीघे जमीन, मंडी की दो दुकानें, आधी सराय, दो मकान मिले थे, बड़े भाई की मृत्यु के पश्चात्—उसकी यह सम्पति दूनी हो गई थी, परन्तु जयपाल के हाथ में छेक था, जहां उन के क्रोध की भी सीमा

नहीं थी,वहां दान कीभी कमी नहीं थी. गांव की भाषा में वे "राजा कर्ण" के नाम से विख्यात थे। उन में एक विशेषता और थी, लिखा पढ़ी में उन का विश्वास न था. रुपया देते समय भी उन का यही नियम था, जो नहीं दे पाता, वह भी छुटकारा पाने का सरल उपाय प्रयोग में लाते "दादा थारे सहारे से महारे दिन निकल रहे हैं, थारा उपकार हम से उत्तरे है माची कहूं मेरे पास से नहीं।"

जय पाल पूछते —"अरे पर कभी होंगे भी!"

"दादा थारे पैसे रखूंगा। थारा पैसा खाना तो ऐसा है जैसा गौ का मांस खा लिया! और फिर विनीत स्वर में कह देता "होते ही पहुंचा दूंगा दादा।" उस के पश्चात जय पाल कभी पैसे के लिए तकाजा नहीं करते।

इतना सब कुछ होने पर भी उन्होंने कान्त को अंधकार में नहीं रखा था— सारीस्थिति अक्षरश: लिख गए थे — लेने का ब्यौरा लाखों में था, परन्तु कान्त जानता था आज के युग में बिना लिखा पढ़ी के कोई एक पैसा भी नहीं देता, एक बार जा कर तकाज़ा तक करने की बात उस ने सोची नहीं थी —परन्तु जिस बात का ज्ञान जयपाल अपने पुत्र को करा गए थे उस का पता और किसी को नहीं था।

कान्त के सामने सब से बड़ी समस्या थी तो यह कि वह बड़े भाई को इस का विश्वास क्यों कर दिलाएगा। इसी समस्या के लिए वह दयाल बाबू के घर पहुंचा, उसे देखते पार्वती खिल उठी "घर से कब आए बेटा"

"अभी तो आ रहा हूं मां! तुम्हारे पास एक बात का समाधान करने आया हूं।"

"क्यों क्या कोई नई बात हो गई, सुखदेई नहीं मानी क्या"

"नही मां वह बात नही है. वह तो देवी है. मैं बड़े भैया की बात सोच रहा हूँ।"

"क्यों विमल ने क्या किया"

"कुछ नहीं. उन के स्थान पर मैं होता तो सम्भवत: मैं भी वही करता उन्होंने मुझ पर मुकदमा कर दिया है"

"देवर जी तो बटवारा कर गए थे ।"

कान्त सोच में पड़ गया —बोला—"पिता जी ने क्या कुछ लिखा पढ़ी की थी।"

"तेरे पिता ने क्या कभी लिखा पढ़ी की है. जो अब करते. बस दाखिल खारिज करा दिया था। मेरे कहने पर बोले "—नहीं भाभी मेरा लड़का अन्याय नहीं कर सकता ।"

उसी समय सुमित्रा बाहर से आई थी—"तुम्हारा कौन कौन लड़का अन्याय नहीं कर सकता मां" । साथ ही कान्त को देख बोली—"क्यों गांव में मन नहीं लगा कान्त बाबू!"

"मैं कान्त बाबू कब से हो गया सच्ची !" फिर उसकी बात का उत्तर देते हुए बोला—"गांव में तो मन ठीक से लग गया है, यहां केवल काम से आया हूँ।" साथ ही बड़े भैया के मुकदमे की बात उसने बता दी।

सायं को सुमित्रा को साथ ले कान्त विमल से मिलने गया । उस समय विमल घर पर नहीं था—जिस बालक ने द्वार खोले थे, उसका हाथ पकड़ कान्त भीतर चला गया—एक कुर्सी पर बैठ बालक को उसने घुटनों पर बैठा लिया—"तुम्हारा नाम क्या है ।" बालक ने तुरंत उत्तर दिया-"श्री कमल कुमार पाराशर ! और तुम"

"हम, हम! है तुम्हारे चाचा जी, चन्द्र कान्त पाराशर !"

सुमित्रा की ओर संकेत कर कमल बोला-"और यह चाची! है न"

बालक की बात सुन सुमित्रा लजा गई बोली-"ठहर जा बदमाश।" और उस बदमाश शब्द ने मानो कमल को छूट दे दी हो—वह बोला-" चाची तो हो ही!" और साथ ही—"मां,मां चाची आई! चाचा आये!" पुकारता भीतर भागा! जिस स्त्री का हाथ पकड़ कर वह बाहर आया उस की आयु सत्ताईस वर्ष के लगभग होगी, कहीं भी देखने से उसे पहचाना जा सकता है, रंग अधिक उजला न रहने पर भी सुन्दर कहा जा सकता है, मुख की ओर देख लेने पर उस की सहज रूप से अवहेलना नहीं की जा सकती। एक प्रकार से कमल उसे खींच कर लाया था— दो अपरिचितों को बैठा देख, संकोच से वह सुकड़ गई—बोली-"छोड़ पाजी!" कान्त ने उसे आगे बोलने का अवसर नहीं दिया उठ कर भाभी के पांव छू बोला-"मैं तुम्हारा देवर चन्द्र कान्त हूँ भाभी!"

"अरे लाला जी!" कह कुर्सी खींच वह बैठ गई—"बाहर से दो सप्ताह हो गए आज आए हो भाभी से मिलने!"

"तुम लोगों ने मुझे इतना पराया जो समझ रखा था भाभी! और फिर पता थोड़ा ही था सम्भवतः मां ना बताती तो मैं जान भी नहीं पाता कि मेरे सिर पर भी बड़े भैया हैं, भाभी हैं, मैं निश्चित हो बैठ सकता हूँ! कल पता चला है इसी कारण भागा चला आया हूँ कि सब कुछ बड़े भैया पर डाल इस जंजाल से छुट्टी पा जाऊं।"

देवर की बात सुन वह कुछ उदास सी होगई —"नहीं लाला जी अपने बड़े भैया को तुम नही मना पाओगे, वह तो तुम्हें दर दर का भिखारी बनाने पर तुले हैं।"

"अरे तुम देखो तो भाभी! वह मानेंगे कैसे नहीं, पांव पकड़ कर छोड़ूंगा नहीं, रही भिखारी बनने की बात सो उस की चिन्ता मुझे नहीं, जब कभी भूखा मरूंगा आ जाऊँगा अपनी अन्नपूर्णा भाभी के पास. कहूंगा, "भाभी अपने भिखारी देवर को भोजन करा दो फिर घर से बाहर निकालने का साहस, तो बड़े भैया में भी नहीं हो सकता।"

"देवर की बात सुन सलोचना को विचित्र प्रकार का अनुभव हुआ, पति परिवार का जितना कुछ इतिहास सुना था, उस के आधार पर अथवा पति के क्रोधि स्वभाव को देख, देवर के भी अति क्रोधि, हटी स्वभाव का होने की कल्पना उस ने की थी—इसी कारण जब विमल ने मुकदमा चलाने की बात सलोचना को बताई तब और जब मना करने पर भी वह नहीं माने तब अपने दुर्दिन आने का विश्वास उसे हो गया था परन्तु देवर किस प्रकार दूसरों के मन पर अधिकार जमा कर बैठ जाता है, यह देख उसे कुछ आशा हुई? तभी सुमित्रा के शब्द उस के कान में पड़े—"बाते बना लोगों को छलने में यह प्रकांड पंडित है—जीजी! तनिक संभल कर रहना। बड़े भैया को भी सावधान रहने को कह दीजिए।"

"किसे छला है मैंने" कान्त ने पूछा।

"मैंने अभी तक तालिका नहीं बनाई, जब बना लूंगी तब पूछ लेना।"

"सुमित्रा का उत्तर सुन कान्त ने भाभी से अपील की "देख लो भाभी! यह मुझ पर झूठा आरोप लगा रही है, सच जानों भाभी! तुम हो मां है बड़े भैया हैं, मुझे दो कौर खाने भर को दे देना, और मुझे कुछ नहीं चाहिए।"

झट से सुमित्रा बोल पड़ी —"चलो मंजूर है, पर परिश्रम कड़ा करना पड़ेगा।"

दोनों की बात सुन सलोचना हँस दी—"मेरे लाला जी से परिश्रम करने का अधिकार प्राप्त कर ले बहिन! फिर मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी साथ ही कान्त को सम्बोधित कर बोली 'मां से मिले थे।"

कान्त ने उत्तर दिया -"मिला था! कल ही तो उन्हें गांव छोड़ कर आया हूँ!

"देखो लाला जी—तुम अपने भैया को मना देखो परन्तु मुझे तो आशा नहीं है, परन्तु अपने भैया के कारण भाभी से मत रूठ जाना।"

तुमसे भी कहीं रूठा जा सकता है! सचमुच भाभी मुझसे बड़ा भाग्यवान कौन होगा, मां मिली तुम मिले और मिले बड़े भैया।"

सुमित्रा की ओर लक्ष्य कर सलोचना बोली—"मेरी इस छोटी बहिन को तो भूल गए लाला जी!"

सलोचना की बात सुन सुमित्रा के कान तक लाल हो गए—वह कुछ कहने को ही जा रही थी तब ही कमल के, पिता जी आ गए। पिता जी आगए का शोर सुनाई दिया।

आंख उठा कर देखने से ही कान्त को पता लग गया कि उस का बड़ा भाई कहाने वाले व्यक्ति को सहज में डिगाया नहीं जा सकता, उन्नत ललाट, तीखी तलवार की भांति तीखी नाक, ऊपरले होंठ पर तराशी गई छोटी पतलीमूछें, उन सब के बीच, कठोर गहरी आंखे, गंदमी रंग, उन में कहां दृढ़ निश्चय छुपा है, कहीं कठोरता मौनता धारण करके बैठी है, यह सरलता से जाना नहीं जा सकता, परन्तु एक और बात का अनुभव कान्त को हुआ, कि जिस प्रकार मां की कठोरता हर मृदुलता में छुपी उस के विपरीत, उस के बड़े भाई की कठोरता समूचे शरीर से टपकती है, उसे लगा मानो उस मनुष्य की

मुस्कान भी कम कठोर नहीं होगी, पांव पकड़ उसे नहीं मनाया जा सकता है, मोर्चा लेने पर विपक्षी की पीठ वह ठोक सकता है परन्तु अपने स्थान से एक पग भी नहीं हट सकता।

आते ही अपरीचितों के बारे में वे कुछ पूछें इस से पहले ही, कान्त ने उठ कर बड़े भाई के पांव छू लिए "मैं तुम्हारा छोटा भाई चन्द्र कान्त हूँ, बड़े भैया!" ओह! कह चुपचाप विमल कपड़े उतारने लगा।

"कान्त जिस सरलता से मां और भाभी से बात चला सका था उतनी ही कठिनाई उसे भाई से बात प्रारम्भ करने में हुई तब ही विमल का भारी स्वर सुनाई पड़ा —"क्यों मुझसे कुछ काम है"

"कान्त को लगा मानों उस की वाचालता लोप हो गई हो फिर भी साहस कर मुकदमा उठा लेने की बात कहने आया था।"

"देखो कान्त मैं तुम्हें किसी अंधकार में नहीं रखना चाहता, हम दोनों में से किसी एक को भिखारी बनना पड़ेगा।"

विमल के सामने कान्त अपने भिखारी बन जाने की बात स्वीकार नहीं कर सका बोला "इस के अतिरिक्त क्या कोई और मार्ग नहीं है।"

"नहीं! होगा भी तो में मानूंगा नहीं।"

"बड़े भैया।..............."

"ठहरो एक बात समझलो, मुझे बड़े छोटे भैया कहने की आवश्यकता नहीं है, विमल कहना ही प्रयाप्त होगा।"

"मैं क्या कह कर पुकारूं यह आदेश देने का अधिकार आप को नहीं रह जाता, और एक बात है, यदि भिखारी बनना मैं नहीं चाहूं तो'

"तो मुझे बना दो।"

विमल का उत्तर सुन सलोचना अपने को नहीं रोक सकी बोली 'तो बन जाओ न भिखारी लाला जी तुम्हें रोकने नहीं आयेंगे ! देखती हूँ तुम इन्हें कैसे भिखारी बनाओगे।"

पत्नी की ओर दृष्टि फेंक विमल ने उत्तर दिया—"तुम्हारे लाला जी यदि रोकना भी चाहेंगे तो जिस प्रकार रोकने मैं नहीं दे सकता उसी प्रकार रुक भी नहीं सकुगा सलोचना।" मां पर किए गए अन्याय का प्रतिकार लिए बिना मेरा डिगना कठिन है, हां जिस दिन इसे द्वार द्वार मांगने से भी रोटी नहीं मिले उस दिन आ जाएगा तब......

"तब रोटी दे दोगे यही न तुम अपने आप को समझते क्या हो, तुम्हारे जैसे दस विमल खरीदने की शक्ति इनमें है, और एक बात जान लीजिए, विमल बाबू कठोर बात आपके अतिरिक्त और भी कर सकते हैं' सुमित्रा को क्रोध चढ़ा देख सलोचना और कान्त को आश्चर्य हुआ परन्तु उस की चिंता किये बिना वह कहती गई—"मां का नाम ले अपने मन का पाप उनके मत्थे मत मढ़ो! रही तुम्हारे भाग की बात सो चाचा जी तुम्हें दे गए हैं, और इनसे कहीं अधिक दे गये हैं।"

सुमित्रा पर कठोर दृष्टि फेंक विमल बोला—"इस का प्रमाण।"

"प्रमाण हैं तुम्हारी आत्मा और मैं ! "सलोचना बीच में ही बोल पड़ी। सुमित्रा ने भी उसी समय कहा—"नहीं देने से पूर्वजों की सम्पति तुम्हारे नाम नहीं आ सकती।"

"हो सकता है मैंने खरीदी हो।"

विमल की बात सुन सुमित्रा अपने क्रोध को नहीं संभाल सकी बोला "जो व्यक्ति इस प्रकार मृतक पिता का अपमान कर सकता है, उस का मुंह देखना पाप है ।" और साथ ही कान्त पर बिगड़ उठी—" न जाने दूसरों से जूते खाने में तुम्हें क्या स्वाद मिलता है, चलो "

कान्त ने गम्भीर स्वर में भाई को लक्ष्य कर कहा—"आपसे मुझे ऐसी आशा नही थी, खैर जैसी आप की इच्छा, परन्तु एक बात का ध्यान रखिये जिन के वंशज आप हैं, उन्हीं का मैं भी हूं, आप जितनी हट मैं भी है ।" भाई के पांव छू भाभी के पांव छूते हुए बोला—"अब चलूंगा हम दोनों भाईयों की लड़ाई में तुम मत पड़ना भाभी ।"

देवर के सिर पर हाथ रख कर सुलोचना बोली-"नहीं लाला जी, इतनी नीच मैं नहीं हूँ"

"तुम मेरी साक्षी हो भाभी कह "सुमित्रा का हाथ पकड़ कान्त बाहर आ गया ।"

सुमित्रा का क्रोध कम नहीं हुआ था—गाड़ी में बैठते ही वह फिर से कान्त पर बरस पड़ी "मैं पूछती हूं, इस प्रकार लोगों के पांव पकड़ गिड़गिड़ाते तुम्हें लाज नहीं—आती ।"

"तुम नहीं जानती सुमित्रा! इस सब मुकदमे बाजी में क्या कम झंझट है, और फिर रुपया भी तो चाहिए ।"

"कितना चाहिये चलो तुम्हें पिता जी से दिलाये देती हूँ, विमल का उल्लेख कर कहने लगी "और कहता किस शान से है, भिखारी बना दूंगा, जैसे संसार इसी के हाथ में हो...........''न जाने सुमित्रा आगे क्या कहती उसे बीच में ही रोक कान्त बोला "सच्ची वे मेरे बड़े भाई हैं!

सुमित्रा ने व्यंग किया—"ओह क्षमा कीजिए मुझे पता नहीं था ।"

रात्रि को भोजन उपरान्त दयाल बाबू तथा पार्वती से भी कान्त ने परामर्श किया। कान्त की पूरी बात सुन दीर्घ निश्वांश छोड़ दयाल बाबू ने कहा—"फिर तो मुकदमे के अतिरिक्त और कोई मार्ग ही नहीं बचा।

उत्साहित हो सुमित्रा बोल पड़ी—"हां पिता जी! इनकी ओर से मुकदमा आप लड़िये, एक एक पाई लगा दीजिए, देखते हैं भिखारी यह बनते हैं, अथवा वे।"

लड़की की बात सुन पार्वती बोली—"तू चुप रह लड़की! यह भी क्या बच्चों का तमाशा है, प्रति को सम्बोधित कर बोली—"तुम एक बार विमल को क्यों नहीं समझाते।"

"तुम क्या समझती हो मैंने समझाया ही नहीं, परन्तु वह क्या मानता है, अरे वह तो मान भी जाय यदि लोग मानने दें तो, इनके परिवार वाले दूसरे जो हैं, जगन्नाथ, उपेन्द्र, नरेन्द्र,, तीनों ने उसे चढ़ाया हुआ है।"

"उसे क्या अपना घर दिखाई नही देता।"

"वही तो दिखाई नहीं देता, पिछले दिनों ही मेरे समझाने पर जब नहीं माना तो मैंने भी कह दिया" अच्छा तो उसकी ओर से मैं लड़ूगा, देखता हूं तुम लोग उस का क्या बिगाड़ लोगे।"

दयाल बाबू की बात सुन कान्त बोला -"परन्तु बाबू जी मैं तो यह नहीं चाहता, न ही मैं आप को यह सब करने दूंगा, बड़े भैया मुझे भिखारी बना देना चाहते हैं ना, तो बना दें, काला मुंह कर मैं कहीं निकल जाऊंगा।"

"हां हां तुम क्यों चाहोगे दूसरों के तलवे चाटने की आदत तुम्हें पड़ गई है, भिखारी ही बनना चाहते हो तो आये क्या करने हो, जर्मनी

में ही बन गए होते वहां क्या तुम्हें कोई कुछ कहने आता।"

सुमित्राका क्रोध देख कान्त हंस दिया—"वहां भिखारियों को कुछ मिलता जो नहीं, यहां कम से कम भूख लगने पर सच्ची रानी, दया करके दो रोटी तो दे ही देंगी।"

"तुम्हें तो एक टुकड़ा भी देना पाप है।"

सच्ची की बात का उत्तर किसी ने नही दिया, कान्त की पीठ पर हाथ रख पार्वती बोली..."तुम इस से मत बोलो बेटा, यह तो पागल है भगवान सब ठीक करेंगे।"

"तुम्हारे भगवान ने आज तक कुछ ठीक किया है जो आज करेंगे।' सुमित्रा का पारा चढ़ा देख पार्वती को भी क्रोध आ गया, लडकी को झिड़क कर बोली—"तू यदि चुप नहीं बैठ सकती, तो उठ कर चली जा।" पांव पटकती सुमित्रा चली गई_तब पति को सम्बोधित कर बोली—" तुम्हारे लाड प्यार ने इस लड़की को एक दम से बिगाड़ दिया है, यह तो कान्त है, जो सह जाता है, और कोई होता दो थप्पड़ मार सीधा करदे बोलो बड़ों के बीच में गाल बजाना किस ने बताया है।"

रात्रि के दस बजे तक परामर्श करते रहने पर भी भगवान भरोसे छोड़ देने का निर्णय उन लोगों का हुआ।"

दूसरे दिन भाई से हुई सारी वार्ता कान्त ने मां को बता दी—दो क्षण चुप रह सुखदेई बोली—"तो तू काहे को डरता है।"

परन्तु मां बडे भाई से मुकदमे बाजी मुझ से नहीं होगी, जो कुछ भी है, कुल उन्हें सौंप दूंगा।"

"सौंप कैसे देगा, मैं सौंपने दूंगी जब न, तू नहीं लड़ेगा, तो मैं लड़ूंगी, उसे छटी का दूध याद नहीं दिलाया तो कहना।"

"नहीं मां ! वह मैं नहीं करने दूंगा ।"

तू करने देने वाला कौन होता है, मैं तेरी बँधेल नहीं हूं ।"

"बुरा मत मानो मां ! अपने लड़के को यही करने की आज्ञा तुम मत दो ।"

"ठीक है तुम्हें कुछ भी करने को नहीं कहूंगी, परन्तु तू भी एक बात स्मरण रखना......

उसे बीच में ही रोक कान्त बोल पड़ा—"तुम्हारी दुहाई है मां, क्रोध कर कोई भी सौगन्ध मत खा बैठना, अन्यौथा तुम्हारा यह बेटा भी कुएं तालाब में जा डूबेगा ।"

कान्त का उतावलापन देख सुखदेई हंस दी—"नहीं रे तुझसे लड़के पर मैं क्रोध करूं इतनी पागल मैं नहीं हूं, सचमुच कान्त तू लड़का न रह लड़की होता तो अच्छा था, कहीं कोई इतना डरता है ।"

"नहीं मां, तुम्हारा यह बेटा डरपोक नहीं है, परन्तु बड़े भाई के विरुद्ध यह सब करते अच्छा नहीं लगता ।"

"लगना भी नहीं चाहिए कान्त ! परन्तु जब उस ऊंट में इतनी बुद्धि नहीं है तो चारा क्या है, और देख तुझे भी ये बताये देती हूं, अब इस बारे में तू मुझसे कुछ मत कहियो ।"

४

कान्त ने सोचा था, भाई का क्रोध अथवा दो चार दिन में शान्त हो जायेगा न भी हुआ तो, दयाल बाबू अथवा मां के कहने पर उसे विशेष चिता की आवश्कता नहीं। विमाता से बात करने के पश्चात् एक प्रकार की मुक्ति की श्वांस उसने ली थी. परन्तु दूसरे ही दिन उसे अपनी भूल का अनुभव हो गया, गांव में आते ही मानो संसार भर के झंझटों ने उसे घेर लिया हो, पिता ऐसी स्थिति में आंख मूंद लेंगे, इसकी कल्पना भी उसने नहीं की थी, इन सब के बीच फंस कर उसकी क्या गति होगी, इतना बड़ा ऋण वह छोटे से गांव में रह कर कैसे उतारेगा, और विशेष कर ऐसे गांव मे जहां चराहों और शत्रुओं के अतिरिक्त और कुछ उसे दिखाई नहीं पड़ता। टूटे फूटे उस मकान में सिर छुपाने की भी सुविधा नहीं थी, उधर मन्दिर की दशा भी टूट फूट कर धराशय होने योग्य हो गई थी, परन्तु वह भी उसके पूर्वजों के गौरव की भांति मानो संसार भर केविरोध के पश्चात् भी सिर उठाये खड़ा हो मानों संसार का कोई आडम्बर कोई परिवर्तन उसे छूकर नहीं जा सकता है, विध्वंस कर मिटा देने की क्षमता समस्त युग की पर्वतकों में भी न हो।

कान्त की आर्थिक स्थिति का ज्ञान किसी को नहीं था, पुजारी भी उससे एक दम अनिभिज्ञ था, इसी कारण पहिले दिन ही उस ने मन्दिर की छत टपकने, दीवारों के पलस्तर गिर जाने की तालिका के साथ, अपने छः मास के वेतन की बात भी उसने कह दी पुजारी की बात शान्तासे सुन कान्त ने उत्तर दिया—"इस मे से मुझे कितना देना होगा पुजारी जी।"

"कान्त की बात सुन पुजारी को आश्चर्य हुआ-"कितना क्या सब तुम्हें ही देना होगा—उपेन्द्र, नरेन्द्र, जगन्नाथ ने तो बहुत पहिले से देना बंद कर दिया था, अब राम चन्द्र ने भी देना बंद कर दिया।"

"तो मैं क्या करूं पुजारी जी। उन लोगों से क्यों नहीं कहते!"

तुम क्या समझते हो मैंने नहीं कहा, पर वह लोग क्या मेरी सुनते हैं, कहते हैं हमारे पास नहीं है, रहा सहा तुम्हारे बाप ने खो दिया, मैं कहता तो कह देना—"तो क्या हुआ, पुजारी जी! उनके न देने से मन्दिर गिर नहीं जाएगा मैं जो हूँ।" न जाने कैसे ठाकुर जी को भोग लगाता हूँ।

परन्तु भाई मुरमत तो मैं नहीं कर सकता।"

कान्त कुछ कहने जा रहा था कि एक वृद्ध बीच में बोल पड़ा-" बाप दादा की एक यही तो निशानी बची है दादा! और करोगे इसी आशा से क्या उसे नष्ट होने दोगे"

"तब ही सुखदेई का स्वर सुनाई दिया..." कितना लग जायगा पुजारी जी।

उत्तर दिया उसी वृद्ध ने—"लगेगा कितना दादी! यही दो सौ तीन सौ में काम चल जायेगा, दीना और मुलू से कह दूंगा वह दिन भर घर पड़े रहते हैं, यहां आकर काम करेंगे तो कम से कम भगवान की सेवा तो हो जायगी।"

उसकी बात का समर्थन किया पुजारी ने—"हां बदलू! भगवान का काम है, इसमें लाज क्या"

मां के बीच में पड़ते ही कान्त समझ गया कि मन्दिर की मुरमत कराने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं, पढ़ाई के दिनों जो पांच सात सौ रुपये उस ने बचाये, उन की रक्षा अब नहीं हो सकती, यह ठीक है

विमाता ने वह आदेश अपने भरोसे पर दिया है, परन्तु उनके पसे किसी भी कारण नहीं लगवाये जा सकते, न जाने कब कौन इसी बात को ले क्या क्या बातें कह दे, दीर्घ निश्वास छोड़ पुजारी से बोला—"अच्छा पुजारी जी ! कल आदमी ठीक कर लो, मुरमत हो जायगी।"

सुखदेई ने कान्त की बात का उत्तर नहीं दिया बोली पुजारी से "पुजारी जी ! यह मन्दिर के कोट में जो इतनी भूमि पड़ी है इसमें क्या बगीचा नहीं लग सकता है।"

"लग क्यों नहीं सकता।" पुजारी ने उदासीन स्वर में कहना प्रारम्भ किया, परन्तु लगाए कौन ?"

"लगायेगा कौन ? लगाओगे तुम और कौन ? दिन भर इधर उधर चिलम फूकते फिरते हो, यहां तनिक परिश्रम करो तो तुम्हारे मन्दिर का खर्चा निकल सकता है, न सही खर्चा परन्तु साग भाजी का काम चल सकता है, दो चार लोग आ कर बैठ सकते हैं ? देखती हूँ मन्दिर में दो चार ही व्यक्ति आते हैं, केवल इसी कारण कि दो क्षण को भी यहां बैठने को स्थान नहीं।"

विमाता के कोमल आवर्ण के भीतर इतनी सत्ता कहां छुपि पड़ी थी इस का निर्णय कान्त नहीं कर पाया, स्वयं पुजारी ने इतने अधिकार पूर्ण आदेश को, उस घर के इतने लोगों के साथ काम करने पर भी नहीं सुना था— इसी—कारण रोष प्रकट करता हुआ बोला-" मैं ठाकुर जी की सेवा करने के लिये आया हूँ, माली का काम करने नहीं... .. ...

"ठीक है, फिर कल से तुम्हें मन्दिर में ठहरने की आवश्यकता नहीं है, तुम्हारे कुल कितने रुपये हुए ....."

कहते कहते पल्ले से बंधे तीस रु० खोल उस के हाथ पर रखते

हुए बोली—"इस से अधिक नहीं हो सकते—"चलो कान्त" आश्चर्य में पड़ा कान्त मां का प्रताप देख रहा था, बोला—"चलो मां !"

परन्तु बूढ़े बदलू ने पुजारी के हाथ से रुपये छीन मुखदेई को लौटा दिए उसे धमकाते हुए बोला—"तुम क्या पागल हो गए हो पुजारी जी ! मन्दिर का बगीचा ठीक करने से कोई माली नहीं बन जाता, तुम से नहीं होता तो मैं कर लूंगा।" मुख देई को सम्बोधित कर बोला—'1 दादी तू कुछ बुरा मत मानियो, यह तो बावला है।"

"ठीक है बदलू इन से कह देना यदि इन्होंने यहां रहना है तो, यह सब करना होगा।"

करेगा कैसे नहीं, यह यूं ही बावलापन की बात कर रहा है—और फिर मैं भी तो हूं, दिन भर निठल्ला बैठा रहता हूं, दो घड़ी भगवान की सेवा करूंगा, परलोक सुधर जायेगा।"

"तुम क्यों करोगे ?" बदलू की बात सुन कान्त बोल पड़ा—"यह तो पुजारी का काम है।"

"मैं क्यों करूंगा दादा ? अब तुझे क्या बताऊं, मुझ से क्या पूछ है पूछ अपने दादा से, अपने बाप से वह होते तो बताते बदलू की खाल की जूती भी काम थारे में आवे तो भी कम नहीं मेरे घर में क्या कुछ था, दो जून रोटी भी नहीं मिलती थी, भाईयों ने किसी काम का नहीं छोड़ा था, तेरे दादा के पास गया, धन्य है उसे एक बार मुनीम को आज्ञा दे दी—' मुनीमजी बदलू को जितने पैसे चाहिए दे दो'।

"मैं कुछ झिझका बोला—पर दादा मैं शीघ्र लौटा नहीं पाऊंगा।"

"बोले तो मर काहे को रहा है हो जाय तो दे दियो न हों तो न सही।"

उसे मेरे भाईयों की बात पता थी, दूसरे दिन दोनों की मुंडी (गर्दन) पकड़ ले आये, मेरी जमीन दिला दी, घर दिला दिया—तेरा बाप भी क्या कम था, जब मैंने जा कर कहा, 'दादा थारा रुपया अभी नहीं दे सकूंगा ।"

बोला "जा मत दियो ।" रहने दो भाई ! तुम लोगों की क्या होड़ की जा सकती है ।"

बूढ़े बदलू की भाषा में तू, तेरा, थारा, अशिष्ट शब्दों की बोहतात थी, परन्तु न जाने क्यों कान्त को लगा प्रपंचों से शून्य उन शब्दों में ममत्व श्रद्धा, आदर—भक्ति कूट कूट कर भरी हो।

कान्त का जन्म गांव में हुआ था परन्तु उसका लालन पालन नगर के सभ्य एवम शिष्ट वायु मंडल में हुआ था पर आरम्भ में ताऊ के यहां गोद चले जानेके कारण, उन के अपना पुत्र होने के पश्चात शिक्षा के अभिप्राय से बाबू दीन दयाल के यहां उस का रहना सहना हुआ, इसी कारण यह शब्द उस के कानों को अपरिचित अवश्य प्रतीत हुए परन्तु अशिष्ट शब्दों में भी भावना पूर्ण ढंग से, बिना किसी विडंम्बना के कोई व्यक्ति किसी के प्रति श्रद्धा व्यक्त कर सकता है, इस का विश्वास सुनने केपश्चात भी उसे नहीं हो रहा था, बोला-"अच्छा बदलू चाचा ! तुम जी भर मन्दिर की सेवा कर लेना ।"

बदलू ने कुछ विनीत स्वर में कहा—"दादी ! मेरी एक विनती है ।" बदलू की बात समाप्त हो इससे पहले ही सुखदेई बोली-"तू चिन्ता मत कर बदलू, वह जो कुछ कह गए है उस में तनिक भी बदल नहीं होगी, रुपयों की बात है न जब सुविधा हो दे देना ।"

"सच जानियों दादी । राम सिंह से यही बात मैंने कही थी—परन्तु वह माना ही नहीं बोला—"काका ! तुम्हारा समय कुछ और था, आज कल के छोकरे इन बातों को नहीं मानते, इसी से कहता हूं

कि वह तीन पांच करे तो तुम मुकर जाना, कौनसी लिखा पढ़ी हुई है।" मैंने कह दिया-"वह जानें उन का धर्म जाने मैं मुकरूँगा नहीं राम सिंह! न होगा जेल भेज देंगे।"

बदलू की बात सुन सुखदेई हंस दी—"बदलू तूने तो मेरा दादसरा देखा है, उन्होंने क्या कभी किसी पर अत्याचार किया है, फिर उन की संतान कैसे कर सकती है बता तो ?"

"नहीं कर सकती दादी ! कतई नहीं कर सकती, मैं क्या पागल हूँ जो इतना भी नहीं समझूं दादी ! तेरा बड़ा बेटा आया था मुझसे रुपये का तकाज़ा करने—मैंने कह दिया—"देना है दादा थारा एक एक पैसा देना है, होते ही दे दूंगा।"

"वह बोला मैं कुछ नहीं जानता महीने के भीतर पहुंच जाना चाहिए।"

राम सिंह वहीं था बोला-"हम ने लिया ही नहीं।"

वह भी बिगड़ गया बोला-"अदालत में बदलू गंगाजली उठा ले मैं छोड़ दूंगा।"

मैंने कह दिया-"दादा ! गंगा जली उठाने की जरूरत नहीं पड़ेगी तुम से मेरा वास्ता नहीं ! जय पाल मुझ से कह गया था-"देख बदलू ! चन्द्र बाहर गया हुआ है, वह आये तो उसे समझा दियो वह तुझे तंग करने वाला लड़का नहीं है, बड़ा ही सीधा है, अरे हां देखियो विमल का मुझे भरोसा नहीं है, वह शायद कान्त को तंग करे ! अब तुम से क्या कहूं, मेरे पश्चात तुम लोग ही उसके सिर पर हो, एक बार अपनी दादी के पास चला जाइयो उससे कहियो तेरी लड़ाई मुझ से है, तेरे अपने लड़के से नहीं कान्त को मैं तुझे सौंप कर जा रहा हूं और दादी मैं तेरे पास आया था-"पर विमल ने मिलने ही नहीं दिया।"

ने मिलने ही नहीं दिया।"

बदलू की बात सुन सुखदई ने आंखे मूंद मन ही मन पति को सिर नवाया, जीवन भर विछोह की ज्वाला में जला मानों आज उसके मन की दारूण व्यथा को सोख, उसके समस्त अंत: करण को उन्होंने अतुल्य सुख से भर दिया हो, सहसा उसे विछोह के पश्चात प्रथम भेंट स्मरण हो आई। क्रोधित भाई ने उन्हे भीतर नहीं आने दिया था, निराशा से सिर लटका वह जाने लगे थे, तब भाई के पास आ उसने कहा था—"बुला लो भैया ! जो कुछ कहना चाहते है सुन लूं।"

भैया ने कहा "तू बावली हुई है। अब हमारा उसका नाता ही क्या रह गया है।"

"यह नाता जुड़ जाता है परन्तु टूटता नहीं।"

धन्य है लड़की वह मेरे मुहं पर चपेट मारे और मैं उसे अपने घर बुलाऊं ! नहीं बाबा नहीं यह मुझ से नहीं होगा।

"ठीक है फिर मैं घर से बाहार जाकर मिल लेती हूं।"

"मिल कैसे लेगी तेरा सिर नहीं काट कर फेंक दूंगा।"

देखो भैया। तुम्हारी नाक कटाने योग्य कोई बात मैं नहीं करूंगी ! तुम्हारी बहिन ऐसे नहीं है, घर आये हुए का अपमान भी तो नहीं करना चाहिये।"

बड़ी कठिनाई से वह भाई को मना पाई थी।

आते ही "बोले–सुखो मै तुझे लेने आया हूं।" प्यार से वह उसे सुखी कहा करते थे, उस नाम की मधुरता से एक बार फिर से वह पुलकित हो उठी परन्तु उस दिन मानों उसी नाम ने उसकी नस नस मे विष भरा दिया हो तड़प कर पूछ बैठी थी किस अधिकार से लेने आये हो सुनूं तो ?"

सहज भाव से मुस्का दिये थे- " तुझपर से मेरा अधिकार क्या कभी उठ सकता है । "

"इस भूल में मत रहो, तुम्हारे बहकाये में आने वाली सुखदेई नहीं है । "

सुनकर वे गम्भीर हो गए थे- " देख सुखो ! जो कुछ भी हुआ है, इसमें मेरा दोष केवल इतना है कि मैंने बड़ों की आज्ञा मानी है । "

" और तुम्हारी उस आज्ञा मानने का दंड भोगना पड़ा मुझे ।"

" भोगना तो मुझे भी कम नहीं पड़ा । "

" तुम यही कहने आये थे तो समझ लो मैं एक से हजार बार नहीं जाऊंगी । "

"तो फिर ठीक है । "कह वे चले गए थे उसके पश्चात् आये थे इसी कान्त को लेकर- "सुखो इसकी छोटी मां मर गयी है, इसी कारण बड़ी मां को उसका लड़का सौंपने आया हूँ । "ओर यह पाजी भी कितना सुन्दर लगता था, उसकी ओर देख हंस दिया, दोनों नन्हें नन्हें हाथ फैला गोद में आने को मचलने लगे, परन्तु उस दिन मन करने पर भी उसने लिया नहीं, बोली— " यह अपने परपंच रहने दो, लड़के का भार नहीं संभाला जाता तो किसी अनाथालय में करा दो । "

"तू क्या पागल हो गई है सुखो मां के होते हुए उसका लड़का अनाथालय में जायगा ।"

आज तुम्हें लड़के की मां की सुध आई है, सुध भी होती तो कोई बात थी, लड़के को पालने के लिये धाय रखनी पड़ती है उसके खर्चे से बच जाओगे यही सोचा समझा होगा, दो मीठी बातें कह सुखदेई को राजी कर लिया जाये तो पैसे बच जायें ।'

"क्यों व्यर्थ में कड़वी बात कर मन को खराब कर रही, पैसों का लालची मैं नहीं हूँ, यह तुम जानती हो, और फिर पैसों से बच्चे को धाय मिल सकती है माँ नहीं।"

ठीक है फिर और विवाह कर लो।"

"नहीं और विवाह नहीं करूंगा मेरे भाग्य में विवाह का सुख नहीं है, जब दो से सुख नहीं मिला, तो तीसरी से क्या मिलेगा।" पति के सजल नेत्र देख पसीज कर उसने कहा "यह —भी तो तुम्हारा ही दोष है।"

"दोष न रहने भुगतना थोड़े ही पड़ता है—खैर छोड़ो, कल इसके कपड़े लत्ते भिजवादूंगा।"

मारे क्रोध के वह जल—भुन गई थी— "तुमनें क्या मुझे लोंड़ी-बांदी समझ रखा है कि आज्ञा होने पर माननी ही पड़ेगी।

अपनी छाती पर सौत का लडका रख सांप मैं नहीं पाल सकती।"

उसके वह शब्द मानों पति की छाती बींध गए हो— " मुझे तुमसे ऐसी आशा नहीं थी।" कह वह चले गए थे उसके पश्चात भी कितनी बार वह आये। कई बार उसने कान्त को ले आने को कहा, अपने पास छोड़ देने को कहा, परन्तु वे माने नहीं सर्वदा टाल दिया, कई कई बार छिप कर वह कान्त को देख आई थी और इसी कान्त को मरते समय उसकी झोली में पटक गए मानों कह गए हों, फेंक सको, तो फेंक दो, परन्तु फेंक देने पर तम्हारे ही दुख की थाह नहीं रहेगी।" भावावेश में कान्त का सिर उसने छाती में भर लिया-प्रयत्न करने पर भी वह अपने आंसू न रोक पाई-आश्चर्य में पड़ कान्त बोल पड़ा-"क्या बात है मां।"

"कुछ नहीं है रे ! अपने लड़के को छाती से लगाना भी क्या पाप है।" कहते कहते वह मुस्का दी।

"नहीं मां पाप नहीं है सच मां यदि पहले जानता तो...

"तो मुझे छोड़ कर कहीं नहीं जाता, है न पागल कहीं का।" सहसा गम्भीर हो बोली "तू चिंता मत करियो, संसार भर के शत्रु हो जाने पर भी तेरी यह मां तुझे नहीं छोड़ेगी।" सहसा उसे अन्य लोगों के होने का ध्यान हो आया बोली--"बुरा मत मानना भाई ! बहुत दिनों से लड़के को गले नहीं लगाया था--और पुजारी जी तुम चिंता मत करो, मेरे कान्त के होते कुछ चिंता नहीं है सब ठीक हो जाएगा।"

और आधा घंटा उन लोगों में इधर उधर की बात चीत चलती रही।

५

विमल मां का स्वभाव भली प्रकार जानता था। जब तक वह कान्त के साथ नहीं गई थी तब तक उसके चुप साध लेने की आशा उसे थी परन्तु उस के वहां चले जाने पर वह क्या करेगी, कही उस का बना बनाया खेल बिगाड़ कर न रख दे, यही देखने के लिये उसने मां के पास जाने का निश्चय किया था, यह ठीक है उसके सम्मुख दुहाई देना पत्थर के सामने सिर पटकने के अतिरिक्त और कुछ नही होगा फिर भी एक बार कर देखने में कोई हरज़ा नही यही सब सोच दो तीन ग्वाहों को ठीक करने का काम निपटा चार पांच दिन पश्चात उसने पत्नी को बुला कर कहा, सलोचना मैं गांव जा रहा हूँ, मां के पास सम्भवतः आज लौट न पाऊं।"

"देखो तुम जो समझ कर मां के पास जा रहे हो वह उसे मानेंगी नहीं उन्हें मैं तुम से अधिक जानती हूँ"।

"न सही परन्तु एक बार कह देखने में क्या हर्ज है ?"

"हर्ज की बात तुम जानो। अच्छा मैं एक बात तुम से पूछती हूँ यह सब उत्पात क्या तुम बन्द नही कर सकते।"

"नहीं।"

"उस का उपयोग तो कुछ होगा नहीं दोनों वकीलों का पेट भर स्वंय भूखे नंगे हो जाओ गे।"

पत्नी की बात पर विमल हँस दिया—"मुझे तो वकील को एक पैसा भी नहीं देना पड़ेगा।"

"जानती हूँ तुम ने वकालत की है ! खैर अपनी बात छोड़ो लाल जी के पास क्या रखा है, तुम्हारी मुकदमे बाज़ी के लिए कहां से पायेंगे।"

"न पाये ! मुझे इस से क्या ! और फिर मैं भी तो यही चाहता हूँ।"

पति को समझा किसी प्रकार राह पर लाना सम्भव नहीं सोच बात पलट कर बोली—"जब तुम मां के पास जा रहे हो तो मुझे भी ले चलो, बहुत दिनों से उन्हें देखा नहीं।"

सलोचना के साथ चलने की बात ने उस के मन में एक और बात उपजा दी मां के न मानने की उसे पूर्ण आशा थी, परन्तु बहू तथा पोते के मोह के कारण उसे अपने पास ले आ सकता है, आने पर उस के निष्पक्ष हो चुप बैठे रहने की बात कुछ सम्भव: थी—बोला—"चलना चाहती हो मां भी पोते और बहू को देख प्रसन्न हो जायेंगी।"

पति के मनोभाव समझ सलोचना मन ही मन मुस्का दी।

जिस समय वे लोग पहुंचे उस समय सुखदेई भोजन बना रही थी, कमल की बड़ी अम्मा ! बड़ी अम्मां की पुकार सुन कर वह चौंक पड़ी

"कौन कमल ! आ बेटा ! विमल आया है क्या ?"

"हां हाँ छोटी मां भी आई है।"

कान्त भीतर कुछ लिखने में व्यस्त था, कमल का स्वर सुन बाहर आ कमल को गोद में उठा लिया—नीचे उतरने का प्रयत्न करता कमल बोला—"अरे छोड़ो न चाचा जी ! तुम क्या इतना भी नहीं जानते — पहले छोटों को पावं छूने देना चाहिए।,, उसकी बात पर दोनों हंस दिये, विक्षिप्त सा हो कमल बोला, "इसमें हंसने की क्याबात है, छोटी मां ठीक कहती थी, तुम बिल्कुल बावले हो"

कान्त उसकी बात का उत्तर दे इससे पहले ही सुखदेई बोली "अरे हां कान्त ! बाहर तेरे बड़े भैया और भाभी खड़ी हैं।"

मां की बात का उत्तर न दे कमल को गोद में ही लिये कान्त बाहर चला गया। भाई भावज के पांव छू बोला—"बाहर कैसे खड़े रह गए भीतर आइये न।"

तभी कमल बोल पड़ा—"देखा छोटी मां ! चाचा जी ने मुझे तो पांव छूने नही दिये और स्वंय तुम्हारे पांव छू लिये।"

लड़के की बात सुन सलोचना हंस दी—"तेरे चाचा जी ऐसे ही हैं और हां लाला जी ! तुम्हारे भैया जी भीतर नहीं जायेंगे, अपनी भाभी से कहो तो वह अवश्य जा सकती है।"

जायेंगी कैसे नही भाभी। मैं बलपूर्वक ले जाऊंगा।"

कान्त के आग्रह के उत्तर में—"मैं नहीं जाऊंगा।" कह विमल ने चुप साध ली।"

कान्त का प्रसन्न मुख एक दम से लाल हो गया—"देखो बड़े भैया ! मेरी तुम्हारी लड़ाई न्यायालय तक सीमित है।"

"नही हर क्षेत्र में है।"

"ठीक है परन्तु यह तो मां का घर है मेरा नहीं।"

"मैं तो इसे तेरा ही समझता हूँ।"

"मेरा ही सही देखो बड़े भैया ! तुम्हें मुझ से लड़ने का अधिकार है, परन्तु मेरा अपमान करने का कोई अधिकार नहीं।"

तेरे मान अपमान से मुझे कोई सम्बंध नही है।"

देखता हूँ कैसे नहीं है" कह गोद से कमल को उतार विमल को उठा कंधे पर डाल लिया, विमल साधारण लोगों से कुछ अधिक

बलिष्ट तथा भारी था परन्तु प्रयत्न करने पर भी वह कान्त की पकड़ से छूट नहीं पाया, उस की दशा देख सलोचना हंस दी—"देखा तुम ने यदि लाला जी शत्रुता पर आजायें तो तुम्हें इसी प्रकार कहीं भी फेंक कर आ सकते हैं।"

भाभी की बात सुन कान्त बोला—"छी छी? भाभी? ऐसी बात भी कहीं सोचते हैं।"

उन सब बातों से अनभिज्ञ कमल तालियां बजाता अपनी बड़ी अम्मा के पास जा पहुचा—"बड़ी अम्मा, चाचा जी बिल्कुल पागल कहीं कोई अपने से बड़ों को गोद में उठाता है।"

सुखदेई आशंकित हो उठी..."अरे बात तो बता या यूं ही हंसता रहेगा।"

"बात क्या होती पिता जी भीतर नहीं आ रहे थे चाचा जी गोद में उठा उन्हें भीतर ला रहे हैं।"

संतोष की श्वास छोड़ सुखदेई चुपचाप बैठी रही, तभी बाहर से कान्त का स्वर सुनाई पड़ा। "मां तुम्हारे बड़े बेटे को हरण कर लाया हूं।" और लाकर विमल को पास ही बिछी बोरी पर बैठा दिया।

विमल का मुख लज्जा, क्रोध अथवा शारीरिक कष्ट से लाल हो उठा लज्जा पश्चाताप अपने दुर्बल होने की थी अथवा कान्त के सफल होने की यह कोई नहीं जान पाया

सास के पांव छू, सलोचना बोली—"आज लाल जी ने तुम्हारे बली बेटे का गर्व चूर्ण कर दिया है मां?"

"गर्व क्या किसी का टिका रहा है बहू! जो इस का टिके।"

सुखदेई की बात से विमल तिलमिला उठा, कहने लगा—"देखो मां मैं इन सब बातों की विवेचना करने नहीं आया, आया हूं तुम्हें लिवाने।"

"अभी तो नहीं जा सकूंगी विमल ! यहां बहुत कुछ अस्त व्यस्त पड़ा है, यहां का काम ठीक हो जाय फिर दो चार दिन को चली आऊंगी।" मां की बात सुन विमल को कुछ धैर्य हुआ, कहने लगा–"दो चार दिन की बात नहीं कह रहा मां, सर्वदा के लिए तुम्हें मेरे पास रहना होगा यहां तुम्हें दूसरों के टुकड़ों पर पड़ा रहने मैं नहीं दे सकता।"

विमल की बात सुन मारे क्रोध के कान्त के कान तक लाल हो गए, परन्तु वह कुछ बोला नहीं-

गम्भीर स्वर में उत्तर सुखदेई ने ही दिया-"देख विमल ! आज एक बात भली भांति समझ ले, कान्त को छोड़ मेरा जाना और कहीं नहीं हो सकता, और एक बात है, कान्त पर जो तू मुकदमा चला रहा है उसे लडूंगी मैं, यह तू भी समझता है मेरे लड़ने से क्या परिणाम निकलेगा, हां जिस दिन पेट भरने को तुझे दो मुट्ठी अन्न भी नहीं जुटेगा, उस दिन तेरी बात सोचूंगी।"

सलोचना के मुख से अनायास ही निकल गया, "तुम्हारी दुहाई है मां, यह शाप मत दो।"

"नहीं शाप नहीं दे रही हूं बहू ? केवल यह बात कह कर इसे यह दिखाना चाहती हूं जिसे यह देखना नहीं चाहता समझना भी नहीं चाहता।"

"तो मैं यह समझ लूं कि तुम अपने पुत्र का पक्ष न ले सौतेले लड़के का पक्ष लोगी।" विमल ने अपना अन्तिम वान छोड़ा।

"सौतेला केवल गर्भ न धारण करने से ही नहीं हो जाता, होता है व्यवहार से।" सुखदेई ने उत्तर दिया।

"मैंने ही ऐसा कौन सा व्यवहार कर दिया है मां !" स्वर विनीत कर विमल ने कहा।

"सुखदेई बोली-आज तू नहीं समझेगा, पर अब और अधिक नष्ट करने को समय मेरे पास नहीं है।"

"ठीक है।" कह विमल उठ खड़ा हुआ दो-चार पग चल पलट कर बोला"-एक बात तुम भी समझ लेना माँ ? तुम्हारे कहने पर भी इस का सर्वनाश किए बिना मैं नहीं छोड़ूंगा।"

"तो मेरी भी एक बात सुन जा, मेरी दादस ने मेरे एक ताईसरे..." झपट कर कान्त ने माँ के मुख पर हाथ रख दिया-"तुम्हें सौगंध है माँ नहीं, नहीं, मन से भी नहीं ?" साथ ही लपक कर बड़े भाई को जा लिया —"विमल।" कान्त के मुख से विमल का नाम सुन सब चौंक उठे—"मैं सम्भवतः तुम्हारे कुछ भी करने से तुम्हें अन्य नहीं समझता परन्तु जिस प्रकार तुम माँ का अनादर कर रहे हो उस प्रकार किसी दूसरे के करने पर वह जीवित लौट नहीं पाता।" इस घर का एक नियम और रहा है शत्रु भी इस घर से बिना खाये नहीं जा पाता, इसी बात को ले दादा ने एक जाट मार दिया था, इस का पता तुम्हें भी होगा।"

"तो घर आये को इस प्रकार बल का प्रदर्शन कर डराने का नियम भी क्या तुम्हारे परिवार का है ?"

विमल की—"तुम्हारे परिवार" की बात सुन कान्त काठ की भाँति हो गया, सहज सरल स्वभाव के कान्त की आँखों को दहकते हुए अंगारों की भाँति लाल हुआ देख सब सिहर उठे—परन्तु कान्त ने धीमे स्वर में उत्तर दिया—"ठीक है इस परिवार से खींच कर जब तुमने अने को स्वयं ही अलग कर लिया है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं हो सकती! इस परिवार का नियम बाहरीय व्यक्ति समझ, समझाए देता हूँ जहाँ घर आये मनुष्य का अनादर हम लोग नहीं करते वहां दूसरों से अपमान कराते भी नहीं।"

विमल ने कुछ कहना चाहा, उसे बीच में ही रोक बोला—"मैं कुछ भी सुनना नहीं चाहता, मां को सम्बोधित कर बोला—"माँ इसे एक गिलास पानी दे दो।"

पानी किसी भांति गले से नीचे उतार विमल वहां से चला गया, उस के जाते ही भाभी को सम्बोधित कर कान्त बोला—"तुम मुझ पर क्रोध नहीं कर सकेगी भाभी ? शत्रुता विमल की और मेरी है। तुम से इसका कोई सम्बंध नहीं।"

"नहीं लाला जी ! तुम ने मेरा क्या बिगाड़ा है जो शत्रुता निभाने चलूं।"

कहने को तो सलोचना ने कह दिया परन्तु एक बात वह स्पष्ट समझ गई कि देवर कहा जाने वाला व्यक्ति अब जीवन भर उस के पति को न तो बड़ा भाई समझ कर चलेगा न ही कहेगा, इसी कारण अन्य समझने पर उसकी शत्रुता का परिणाम क्या निकलेगा ? वह पति को भी पहचानती थी, एक बार किसी भी धुन के मन में समा जाने पर किसी के कहने पर भी वे मानते नहीं, चारों ओर देखने पर उसे विनाश के अतिरिक्त और कुछ सुझाई नहीं पड़ा, सास से बोली—"अब क्या होगा माँ ?"

"कुछ नहीं होगा री ! और जो कुछ होगा हो जाय, तुझे चिंता करने की आवश्यकता नहीं, मैं जो बैठी हूं।"

उसकी चिंता कांत से छिपी नहीं रही, मुस्का कर बोला—"बस डर गई भाभी ! तुम्हें स्मरण होगा प्रथम भेंट के दिन तुमने कहा था तुम्हारी भाभी इतनी नीच नहीं है। वही बात आज मैं कहता हूं तुम्हारा देवर भी नीच नहीं है भाभी ! विश्वास करो वह अपने बचाव के अतिरिक्त और कुछ नहीं करेगा, मेरे इस बचाव से तनिक भी क्षति

उन्हें पहुंचती होगी तो वह भी नहीं करूंगा। तुम नहीं जानती भाभी बाल्यकाल से किसी को मां नहीं कह पाया, देख भी तो नहीं पाया। पूंजी के लोभ के कारण मां और मां तुल्य भाभी को खो देने की सामर्थ मुझ में नहीं है।"

तुम क्या हो लाला जी यह तो मैं पहले दिन ही समझ गई थी, तुमसेकोई भय मुझे नहीं है, भय है तो तुम्हारे भैया से।"

कान्त ने उत्तर दिया—"उन्हें नाम लेकर पुकार सका, इसीसे तुम अशान्त मत हो जाओ, यह ठीक है, उस समय अपमान की गहनता के कारण क्रोध आ गया था, परन्तु सच जानो भाभी अब भी मेरे लिये वह आदरणीय बड़े भाई ही हैं।"

सुखदेई बीच में ही बोली—"क्यों रे! उस दिन से रट लगा रखी थी भाभी को बुला भेजो, भाभी को बुला भेजो, अब आ गई है तो कहते हुए लजाता क्यों है।"

मुस्का कर सलोचना ने कहा—"क्या बात हैं लाला जी, कुछ दाल में काला तो नहीं ?"

"तुम्हारे पांव पड़ता हूं भाभी! भगवान के लिए मुझे क्षमा कर दो, हंसी दिल्लगी करने वाला तुम्हारा यह देवर नहीं है।"

कान्त की लज्जा सलोचना से छिपी नहीं रही बोली—"तो देवर जी मैं हंसी दिल्लगी कब कर रही हूं, कर रही है तुम्हारी भाभी।"

"नहीं तुम भी नहीं!"

"वाह अपना अधिकार मैं कैसे छोड़ दूं।"

"तो कहती रहो किस से कहोगी मैं उठ कर चला जाता हूं।

बात सुन सलोचना हंस दी—कमल को गोद में उठाये कान्त

भीतर चला गया. वहां से एक बड़ा सा डब्बा उठाये दोनों बाहर आये कमल बोला--"छोटी अम्मां चाचा जी मेरे लिये खिलौने लाए हैं।" कहते--कहते कमल ने डब्बा सलोचना के हाथ में सौंप दिया--सलोचना उसे खोलने लगी तो कान्त ने कहा—"तुम क्या करोगी भाभी इसे खोल कर यह तो कमल के हैं।"

सलोचना से पहिले ही सुखदेई बोली—"अरे तू इस में लजाता काहे को है, वह इस में..................."झट से कान्त ने मां के मुख पर हाथ रख दिया—"तुम्हे मेरी सौगन्ध है मां।"

"वाह लाला जी वाह ! कसम तो तुम औरतों की भांति खिलाते हो सचमुच लड़की होते तो किसी का घर तो बस जाता। अब तक चार बच्चों की मां हो जाते।"

कान्त का समस्त मुख मंडल आरक्त हो उठा वह कुछ कहे इससे पहले ही डिब्बा खोल कर सलोचना ने सेंडल बाहर निकाल लिए—

"अच्छा तो लक्ष्मण जति......" उस की बात पूरी होने से पूर्व कान्त बाहर निकल गया।

हँस कर सुखदेई बोली—"बड़ा ही पागल लड़का है

संध्या को मन्दिर जाना सुखदेई का नित्यकर्म हो गया था, इसी कारण, सब लोगों सहित उस दिन भी वह मन्दिर पहुंची, वहां विमल बूढ़े पुजारी से झगड़ रहा था—"हरामज़ादे ! मन्दिर की सारी धरती खोद दी क्या यह तेरे बाप की है।"

"मैंने क्या आप से खोद दी, मुझे आज्ञा मिली बगीचा लगाना है नहीं तो अपना रास्ता नापो, क्या करता पेट तो भरना ही था, माली-पना भी करने लगा।"

"उस लफंगे ने तुझ से कहा होगा।"

सुखदेई के विरुद्ध कुछ कहना ठीक न समझ उस ने भी अपना नज़ला कांत पर ही ढाला—"मेरा क्या है, जैसा मालिक तू है वैसा ही वो !"

उसका अन्तिम शब्द कंठ में अटका ही रह गया, कारण कि विमल ने झट से थप्पड़ जड़ दिया—"इतनी सभ्यता भी नहीं, तू कहता है।"

बूढ़े पुजारी के थप्पड़ लगते देख कान्त से नहीं रहा गया, विमल के पास जा कर बोला—"छी बड़े भैया ! अपनों से बड़ों पर भी कोई इस प्रकार हाथ छोड़ता है।"

खा जाने वाली दृष्टि से कान्त की ओर देख विमल बोला—"मुझे अपने से छोटों से शिक्षा नहीं लेनी।"

"ठीक है बड़ों से तो लेनी है।" मां का स्वर सुन विमल चौंक उठा, सुखदेई कहती गई—"देख विमल प्रातः से ही तेरा बहुत उत्पात मैंने सहा है अब नहीं सह पाऊंगी और पुजारी जी तुम्हें मालीपना करने की आवश्यकता नहीं।"

उत्तर न दे पुजारी पूजा के बर्तन भीतर ले जाने लगा।

"इन्हें यहीं रहने दो।"

"पूजा............" पुजारी ने आशंकित स्वर में कहा।

"हो जायेगी ! तुम्हें चिंता करने की आवश्यकता नहीं है, लौटते समय मेरे साथ चलना अपना हिसाब ले लेना... .... नहीं, नहीं ! रहने दो कुछ भी सुनना मैं नहीं चाहती।" साथ ही कान्त से बोलीं, चल कांत हाथ मूंह धो ले मैं आरती बताती जाऊंगी "आज के दिन ठाकुर जी की सेवा तुझे करनी होगी।"

उस पराक्रमीस्त्री के सम्मुख एक शब्द भी कहने का साहस किसी को नहीं पड़ा।

शान्ति से पूजा समाप्त कर एक बार पुनः वह विमल की ओर पलट पड़ी—"तू यह मत समझना कोख से जन्म देने के कारण ही तेरे अन्याय सहता हूँ, सहती हूँ केवल इस कारण कि मनुष्य को संभलने का पूर्ण अवसर देना उचित होता है। तू दिल्ली कब जायेगा।"

"कल!"

"कल क्यों आज क्यों नहीं!—तू जो उत्पात खड़ा करने आये है वह मैं नहीं समझती यही यदि तुम्हारी धारना है तो एक बात समझ लो यह तुम्हारी भूल है।"

"पर मां तुम्हारी आज्ञा के......" विमल समस्त साहस बटोर कुछ कहना चाहा था परन्तु मां की खा जाने वाली दृष्टि एवं उसकी बात ने उसे बात पूर्ण नहीं करने दी—"मेरी आज्ञा के बिना भी गांव में रहा जा सकता है, यही कहना तुम चाहते हो, अन्य लोग भी मेरी आज्ञा के बिना रहते हैं उन से मेरी शत्रुता नहीं है, शत्रुता है तुझ से और तू भली प्रकार जानता है, अपने पिता के जिन लठैतों के कारण तू पच्चीस वर्ष तक चुस्का तक नहीं, आज भी वह है, और निश्चय, ही वह मेरी बात टालेंगे नहीं।"

मां को टोक कान्त बोला—"क्या कह रही हो मां?"

"तू चुप रह कान्त! यह न जाने अपने को क्या समझता है।"

विमल कान्त पर गुर्राया—"अच्छा तो अब लठैतों से ही बात होगी कांत बाबू!"

"उस से क्या कहता है, हरामजादे, कह मुझ से, तेरी मां ने मेरी मां से अधिक दूध नहीं पिलाया है—भला चाहता है, तो इसी समय गांव छोड़ कर चला जा, एक क्षण भी ठहरना नहीं! अन्यथा तो तू मुझे समझता है, फिर कहीं मुझे दोष दे।"

विमल, कमल और सलोचना की ओर बढ़ा—

"खबरदार जो उन में से किसी को छुआ तो, वह तेरे बाप की जायदाद नहीं है।"

विना कुछ कहे मन ही मन कुढ़ता विमल चला गया।

"यह अच्छा नहीं हुआ मां ?" धीमे से कान्त ने कहा।

"ठीक ही हुआ है बेटा ! मैंने जो कुछ भी किया है वह भावावेश में नहीं किया, खूब सोच समझ कर किया है।" सलोचना को सम्बोधित कर बोली—"चलो बहू।"

रास्तेभर कान्त सोचता रहा, उस का वह मां किस धातु से बनी है, विमल को दो क्षण पहले लताड़ने में जिस क्रोध की गंध मिली थी उस का लेश मात्र भी प्रभाव, स्वर में तनिक सी भी उष्णता उसे अपने से सम्बोधन में नहीं मिली, उस की वह बात केवल धमकी भी नहीं थी, उसकी सत्यता पर किसी प्रकार भी अविश्वास नहीं किया जा सकता ।

दूसरे दिन उसके विचार की पुष्टि भी हो गई । प्रातः ही किसी के हाथ सुखदेई ने बदलू और उस के द्वारा दूसरे दस पांच व्यक्तियों को बुलवाया था। दुपहर को जिस समय वह उनसे चर्चा कर रही थी उसी समय खेतों पर से कान्त लौटा था—भीतर पहुंचते ही सलोचना ने उस का हाथ पकड़ कातर स्वर में कहा—"लाला जी मां को मनाओ अन्यथा तो न जाने क्या अनंथ हो जायेगा।" तुरन्त ही मां के पास जा कान्त ने मां से पूछा—

"बात क्या है मां ! यह लोग कौन हैं ?"

एक बार भी आंख उठा सुखदेई ने कान्त की ओर नहीं देखा, न ही उसके प्रश्न का उत्तर दिया, "बोली सामने बैठे व्यक्ति से—देख रामदीन नमक हरामी न होने पाये।"

दांतों बीच जिव्हा दबाते हुए राम दीन बोला—"मैंने क्या नरक में जाना है। भाई की तरफ कोई आंख उठा के देखे तो यही दोनों दीदे (आंखें) काढ लूं।"

"ठीक है रामदीन।" फिर दूसरे व्यक्ति को सम्बोधित कर बोली—"और तू छलिया! तू क्या कहता है?"

"कहूँगा के दसों ने तो मैं अकेला बहुत।" छलिया ने कुछ ऐसे ढंग मे उत्तर दिया कि कान्त खड़ा-खड़ा कांप गया। बोला—"मां खड़े-खड़े तुम्हारी योजनाएं सुनने का धैर्य मुझ में नहीं है. भगवान के लिए खोल कर बताओ यह सब उत्पात है किस लिए।"

फिर भी सुखदेई ने उसकी बात का उत्तर नहीं दिया उन लोगों से बोली—"अच्छा अब तुम लोग जाओ १रसों अदालत में पेशी है ध्यान रखना।"

"अच्छा दादी राम राम!" कह वह लोग जाने को उठ खड़े हुए तो द्वार रोक कान्त खड़ा हो गया। कड़क कर बोला—"ठहर जाओ! बात बताए बिना किसी का जाना नहीं हो सकता।"

आश्चर्य में पड़ कर सब लोग उसका मुख ताकने लगे—सुखदेई तो शान्त बनी रही, गम्भीर स्वर में बोली—"बात बताऊंगी मैं, इन्हें जाने दे।"

"परन्तु मां बड़े भैया का अनिष्ट!......

"धत रे पागल! बहू से दिये गए तेरे बचन का ख्याल मुझे है।" सुखदेई की बात सुन कर वह द्वार छोड़ खड़ा हो गया—"फिर ठीक है। तब यह लोग जा सकते हैं?"

परन्तु भीतर पहुंचने तक का भी धैर्य कान्त को नहीं हुआ बोला—"तुम्हारी दुहाई है मां! बात क्या है बता दो, तुम्हारे जितना धैर्यवान मैं नहीं!"

"सच रे लड़के, तेरे मारे तो नाक में दम हो गया है, तेरे बड़े भैया के लिए कुछ नहीं है केवल उसके छोटे भैया को बचाने का उपाय है।"

दो क्षण पहले की मां में वात्सल्य का यह स्रोत कहां छुपा था, ढूंढकर भी इस नारी के समान दूसरी नारी उसे दिखाई नहीं पड़ी। संसार में कठोर नारियां नहीं हों सो बात नहीं। कोमल, सहृदय एवं स्नेह से ओत-प्रोत नारियां भी देखने सुनने में आई हैं, बुद्धि मती-नारियों की भी संसार में कमी नहीं, स्वयं सुमित्रा की मां के स्नेह ममत्व की थाह नहीं ! परन्तु उसका विमाता-सी नारी उसे कहीं भी देखने सुनने को नहीं मिली। कितने ही उपन्यास उसने पढ़े हैं, उन में अत्यंत कठोर सरल हृदय नारियां पढ़ने को मिली हैं, परन्तु वहां भी उसे ऐसी कोई एक नारी नहीं मिली जो इस प्रकार बहु-मुखी हो, एक ही समय में जो पत्थर के समान कठोर अथवा स्नेह से ओत-प्रोत भी हो। भावावेश में उसने झुक कर मां के चरण छू लिए —

"भूल हुई मां ! तुम्हारे हाथों कभी कोई अन्याय नहीं हो सकता—मेरे लिए चिंता करने की भी आवश्यकता तुम्हें नहीं है, तुम बुरा मत मानना मां !तुम्हारे यह पुत्र पचास पर भी भारी हैं, यह विश्वास तुम निस्संकोच कर सकती हो।"

"सो तो तेरे कहने से पहले ही मुझे है, पर यह अकारण पांव छूने की क्या तुक है। और देख, तुझे एक काम करना होगा, दो तीन दिन में बहू और कमल को छोड़ आना।"

"कमल को क्या कुछ दिन और नहीं रख सकतीं।"

"रख क्यों नहीं सकूंगी ! अच्छा बहू को छोड़ आना।"

६

गांव में रहते कान्त को डेढ़ वर्ष बीत गया था। यह ठीक है इन डेढ़ वर्षों में बड़े भाई से वह पराजित नही हुआ परन्तु अपनी और मां की एक-एक पाई वकीलों की जेबों, कोर्ट फीसों एवं गवाहों में व्यय कर देने के पश्चात मां के आभूषण तक भी उसकी भेंट चढ़ गए, परन्तु फिर भी वह मां को मनवा न सका। दुर्भाग्य से महायुद्ध को छिड़े एक वर्ष बीतने के कारण महंगाई की ऊष्णता बढ़ चली थी, पचास बीघे भूमि भी उसने बेच दी थी इस कारण शेष बची पच्चीस बीघे जमीन में निवाह भी कठिनता से होता था। उस पर यह जानलेवा मुकदमा।

कई बार बाबू दीनदयाल ने उसे पैसे देने चाहे, पर वह किसी प्रकार भी स्वीकार न कर सका। इसी बात को ले एक दिन उस घर में भी जाना उसका बन्द हो गया, बात यह थी, दुखी हो बाबू दीन दयाल ने कहा—"तू हमें इतना पराया क्यों समझता है, यह भी तो तेरा ही है।"

"ठीक है बाबू जी परन्तु अपने ऐश्वर्य के लिए सुमित्रा को भिखारी नहीं बना सकता।"

"यह क्या ऐश्वर्य होता है बेटा, जब गले आ पड़ा है तो भुगतना तो होगा ही।"

"नहीं बाबू जी आप की इस बात से मैं सहमत नहीं हूं, मुकदमे—बाजी ऐश्वर्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं होती, आप तो जानते ही है कि लोगों से जो लेना है उस की लिखत-पढ़त न होने से कोई देगा

नहीं, जिनका देना है, उन की पाई-पाई चुकाने का पिता जी का आदेश है, फिर आप ही बतायें इस मुकदमे में रुपया पानी की तरह बहाना, क्या रुपया कूएं में फेंक देना नहीं है ?"

"नहीं है कान्त ! आज भी गांव के लोगों में धर्म कर्म है पैसा होते ही वह स्वयं लौटा दें गे।"

"यदि न भी लौटायें तो क्या हुआ। कुल की मर्यादा बहुत बड़ी बात होती है।"

उसी समय सुमित्रा बाहर से लौटी थी, पिता की अन्तिम बात उस के कान में पड़ गई थी बोली—"बाबू जी, कुल मर्यादा पर मैंने "हार्डी" का एक उपन्यास पढ़ा था उसका नाम था टेस..."

"जानता हूं सची तुम क्या कहना चाहती हो उस कुल के विनाश का कारण कुल मर्यादा नहीं थी, थी अकर्मणयता।"

शुष्क स्वर में सुमित्रा ने उत्तर दिया—"वह अकर्मणयता आई कहां से, केवल नाईट के वंशज होने के ज्ञान से नहीं बेटी ! वह तो उनमें विद्यमान थी, वंशज की बात तो केवल बहाना मात्र थी।"

कान्त बीच में ही बोल पड़ा "बाबू जी मैं भी तो वहां रह कर अकमणीय होता जा रहा हूं।"

दयाल बाबू ने धीमे स्वर से उत्तर दिया—"यह तो तुम्हारी भूल है बेटे ! तुम्हारे पिता ने गांव में रहने की आज्ञा दी थी, अकमणीय बनने की नहीं।"

सुमित्रा ने झट व्यंग कसा, "हां कान्त ! एक हथोड़ा ले लो ! पत्थर तुम्हारे गांव मे बहुत मिल जाते हैं, फोड़ा करो देखो, कितना आनन्द आता है।"

लड़की की बात पर दयाल बाबू हंस दिये—"तू झूठ नहीं कहती सची ! तेरे इस पिता ने यह काम खूब किया है, इसी काम से पढ़ पाया हूँ, या फिर जयपाल की कृपा से ! पिता दसवीं करा समझ बैठे थे बेटा खा कमयेगा, परन्तु बेटे के भाग्य में रोटी नहीं बदी थी, छोटी-सी नौकरी मिली, तेरी मां ने विवाह कर लिया, एक दिन बड़े बाबू धमका रहे थे आ पहुंचा जयपाल । बड़े बाबू की नाक तो बनी रही परन्तु उस के भीतर का समूचा रक्त बाहर आ रहा, मेरा हाथ पकड़ जयपाल बाहर ले आया।—बाहर आ मैंने कहा—"नौकरी चली जायगी जयपाल ।"

"बोला "चली जाने दे !"

"मैं बोला-"पर निर्वाह कैसे होगा ।"

छाती पर हाथ मार बोला—"अभी जयपाल मरा नहीं है ।" मैं चुप हो गया दूसरे दिन मुझे कालिज में भरती करा दिया, रुपये उसने कहां से पाये मुझे पता नहीं चला, पांच छः मास पश्चात पता चला रात्रि को रोड़ियां कूट जयपाल प्रातः चार बजे आठ आने ले आता था, मुझ से रहा नहीं गया, उसी दिन रात्रि को उस के पीछे पीछे जा रोड़ियां कूटते उसे पकड़ लिया मुझे देखते ही बोला-"अब जान गया है तो आ तू भी मेरा हाथ बटा ।"

पूछना चाहा—"अपने पिता से रुपये नहीं पाते क्या ?" परन्तु पूछा नहीं वह स्वयं ही बोला—"देख दयाल तू सोचता होगा मैं पिता जी से रुपये क्यों नहीं मांगता तुझे ही बताता हूँ, जिस दिन तेरे दफतर गया उस दिन पिता जी आये थे, मुझे पैसों की आवश्यकता थी मांगने पर बिगड़ गए । पैसे देते हुए बोले-"बाप के सिर पर खर्चा कर रहे हो, इस कारण पैसे का मुल्य नहीं समझते जिस दिन कमा कर खर्चोगे उस दिन पता चलेगा ।" मैंने पिता के पैसे तुरंत लौटा दिये, कहा—

"बापू तुम्हारा ऋण कभी चुका नहीं सकता, परन्तु पांच सात

वर्ष तुम्हारी कही बात करे देखता हूं। पिता जी कुछ बोले नहीं चुप-चाप मन ही मन पश्चाताप करते चले गए, बस उस दिन से दो ट्यूशन और यह सब कर निर्वाह करता हूं।"

"आश्चर्य में पड़ मैंने पूछा, "पर तू ट्यूशन भी तो करता है।"

"बोला—हाँ करता हूं फिर भी तो क्या काम चल पाता है।"

आगे कुछ नहीं पूछा। उस दिन के पश्चात हम दोनों ने और चार मास रोड़ियां कूटीं। सच बेटी वह आनन्द तो कभी नहीं आया।

सुमित्रा पिता की बातों के बीच में ही आकर उन की कुर्सी के हाथों पर बैठ गई थी। अज्ञात प्रेरणा के वशीभूत पिता का हाथ पकड़ मुट्ठी में भर उसे दबा बैठी मानों उन्हें अभी चोट लगी हो—"बाबू जी! आप को चाचा जी की सभी बातें स्मरण हैं?"

मित्र का उल्लेख सुन दयाल बाबू की आंख भर आई, "अरे वह कोई आदमी था, देवता था। कहीं पहले दिन मैंने उसे भाई साहब कह दिया चट से मेरे गाल पर तमाचा जड़ दिया सच सची! चक्करा कर मैं धरती पर बैठ गया बोला—"देख दयाल तू मुझ से बड़ा है, और फिर मित्र साहब नहीं होते, भाई नहीं होते, होते हैं दयाल और जयपाल।"

दयाल बाबू की बात सुन कान्त बोल पड़ा—"वाह बाबू जी, यह भी कोई बात हुई।"

दयाल बाबू ने चश्मा उतार रुमाल से आंखें पोछी बोले—"अरे तुम लोग क्या जानो इन बातों को, तुम लोगों की—सी कृत्रिमता हम लोगों के समय में कहां थी उस से क्या कम पिटा हूं। वकील होते ही मैंने कहीं मूंछें मुंडवा दीं थी, दो चार हाथ भाई ने ऐसे मारे कि नाक से खून आ गया बोला-"तू क्या लुगाई है जो मूंछें मुंडवा दी।" और मजे की बात तो यह है तेरी मां खूब हंसी, बोली! 'ठीक है देवर यह इसी

योग्य है !' और वह हजरत था कि जब तक मूछें फिर से उतनी नहीं हो गई घर आकर झांका तक नहीं।"

दयाल बाबू अपनी बातों से स्वयं रस पाते न जाने कितने समय तक मित्र का बखान करते रहते कि पार्वती ने आकर कहा—"दिन

हड़बड़ा कर दयाल बाबू उठ बैठे—"अरे हां, वह तो मैं भूल गाये चलो बेटा भोजन कर लें।"

दयाल बाबू की हड़बड़ाहट देख सुमित्रा और कान्त दोनों ही खिलखिला कर हंस दिये, कांत बोला—"यही तो तुम्हारा अन्याय है मां ! अभी तुम्हारे भोजन में कम से कम तीन घंटे की देरी है अभी कुल साढ़े तीन बजे हैं।"

"पर भाई ! इन्हें इस प्रकार न कहती तो आज क्या इन की बातें समाप्त होतीं।"

दयाल बाबू बोले—"हां कान्त यह मुझ में बड़ी कमी है, कहता जाता हूँ, दूसरे की सुनता भी नहीं, और कान्त ! तुम कुछ करो भाई ! खाली बैठने से काम कैसे चलेगा।"

"करूं क्या बाबू जी ! यही बात समझ नहीं पड़ती।"

उत्तर दिया पार्वती ने—"देखो कान्त तुम्हारी मां को मैं भली प्रकार जानती हूँ, इस बारे में उनसे परामर्श कर देखो—और हां मैं भी तुम्हारी मां से एक बार मिलना चाहती हूँ, सोचती हूँ, तुम लोगों के विवाह की बात पक्की कर आऊं।"

मां की बात सुन सुमित्रा चुप न रह सकी बोली—"देखो मां तुम्हारी आज्ञा मैं कभी नहीं टालती, परन्तु जब तक कान्त बाबू गांव नहीं छोड़ेंगे तब तक मैं विवाह नहीं करूंगी, मेरी इस बात पर तनिक भी अविश्वास तुम मत करना।"

सुमित्रा के स्वर की दृढ़ता से लगभग सब ही चकित रह गए, कान्त कहने लगा—"रहने दो मां !"

"तुझे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है बेटा ! मैं ही कहे देती हूँ।" लड़की को लक्ष्य कर बोली—"सची तेरी बात का अविश्वास मैं नहीं करूंगी, जानती हूँ बाप ने तुझे सिर चढ़ा रखा है, परन्तु तू भी मेरी एक बात में तनिक भी संशय मत रखना, कान्त के गांव छोड़ देने पर मैं तुझे इस से नहीं ब्याह पाऊंगी।"

वेदना एवं दुख से कान्त का मुख म्लान हो उठा—"सची तू मुझे जानती है बलपूर्वक किसी पर अधिकार जमा बैठना मेरा स्वभाव नहीं है, इसी कारण जब दूसरे लोग बल के आधार पर मुझ पर अधिकार जमा लेना चाहते हैं तो मैं सह भी नहीं पाता।"

विवाह को लेकर बात इतनी लम्बी खिच जायेगी इस की आशा सुमित्रा को नहीं थी, उस के कारण कम लज्जा का अनुभव भी उसे नहीं हो रहा था, इसी कारण क्रोध में बोली—"तो कान खोल कर सुन लो, कान्त बाबू ! तुम्हारे लिये उतावली मैं नहीं हो रही हूँ, तुम्हारे लिए रो-रो कर प्राण त्याग दूंगी इस बात को तुम भी अपने मन से निकाल दो।"

दयाल बाबू बात बिगड़ते देख सटपटा कर बोले—"यह तुम लोगों को क्या हो गया है। आज न सही; विवाह की बात फिर कभी हो सकती है।"

सची अपने को नियंत्रित नहीं कर पा रही थी बोली—"नहीं बाबू जी! और कभी इतना बड़ा अपमान सहने का अवकाश मुझे नहीं होगा। कान्त बाबू समझते हैं इन के बिना मेरा जीना नहीं हो सकता, इन्हें समझा दो कि ऐसे सौ कान्त फिरते हैं ! मुझे उनकी तनिक भी चिंता

नहीं है, रत्ती भर भी नहीं !" साथ ही आवेश में भर वेग से पग धरते हुए उसने कमरे से बाहर निकल जाना चाहा।

दोनों हाथों से द्वार रोक कान्त खड़ा हो गया—"सची.. ..."

रोष भरे स्वर में सुमित्रा बोली—"मेरा नाम सुमित्रा पाराशर है, सची कहने का अधिकार केवल आत्मीय, स्वजनों को है, आपको नही।"

कान्त हंस दिया बोला-"तुम......"

"तुम नहीं ! आप कहिये।" सुमित्रा कड़ी पड़ बोली।

कान्त ने अभी भी संयम नहीं खोया था...बोला—"अच्छा सुमित्रा देवी पाराशर जी ! हां तो देवी जी! मैं कह रहा था, तुम, ओह भूल हुई! आप! इस समय रोष में हैं, यह तो आप की बातों से जान गया।" धीरे धीरे कान्त के स्वर में कठोरता आती गई—"परन्तु कान्त बाबू, सुमित्रा कहने और कहलवाने से यदि तुम, नहीं आप ! मुझे पराया समझना चाहती हैं तो केवल इस शब्द आडम्बर से ही वह नहीं हो सकता।"

"इस शब्द आडम्बर को क्यों दोष दे रहे हो वह तो तुम ने प्रारम्भ किया है, पिता जी से पैसे न ले भूखे पड़े रहना अपना समझना नहीं होता कांत बाबू।"

सची की बात में अपनत्व की झलक पा कांत नम्र हो गया।

"नही होता, सची रानी कदापि नहीं होता, परन्तु अभी भूखा मरने की बात जो नहीं आई। जब आयेगी तो बाबू जी के अतिरिक्त और किसी के समक्ष हाथ नहीं पसारूंगा।"

आश्चर्य मिश्रित भय से दयाल बाबू बड़बड़ाते रहे—"सब लोग पागल हो गए हैं पागल !" परन्तु उन की बातें बिना सुने ही पार्वती उठकर भीतर चली गई।

सुमित्रा को चुप देख कर कान्त ने पूछा—"सच सची, तू क्या मुझे इतना पराया समझती है !"

सुमित्रा कान्त से असीम कहा जाने वाला प्यार करती थी, कान्त के स्नेह का भी उसे ज्ञान था, इसी कारण गांव न रहने की पख लगा वह उसे गांव के गंवार वातावर्ण से निकाल पायेगी, जिससे उसका भविष्य उज्जवल हो जायगा, मां बीच में आ कूदेगी इस का आशा उसे नहीं थी, इसी कारण मां की बात से क्रोधित हो वह कांत पर बिगड़ पड़ी, परन्तु उस के मुख पर विषाद की रेखाएं उभरती देख वह पसीज गई थी, जब कान्त ने द्वार रोका तब तक उसका क्रोध पूर्णतः उतरा नहीं था, परन्तु कान्त के—'सुमित्रा देवी पाराशर जी !' देवी जी, सची रानी, तुम नहीं- नहीं आप, 'कहने के ढंग ने उसका रोष हर लिया था, फिर भी कृत्रिम रोष प्रकट करते हुए बोली—"पराया ! मैं तो तुम से घृणा करती हूँ, तुम्हारा मुंह भी देखना नहीं चाहती ।"

लड़की की बात सुन दयाल बाबू वहीं से बोले—"यह क्या कह रही हो बेटी क्रोध को थूक दो ! अधिक क्रोध करने से मन मुटाव बढ़ता है।"

सची कुछ बोले इस से पहले ही कांत बोला—"ठीक है सची तुम मुझ से घृणा करती हो, मैं नहीं करता, फिर भी जो मेरा मुंह नहीं देखना चाहते उन्हें मुंह दिखाने की धृष्टता नहीं कर सकता।" साथ ही दयाल बाबू को सम्बोधित कर बोला—"आप दुखी मत होना बाबू जी। अब यहां आना मेरा नहीं होगा, आप लोगों से रुष्ट होकर मैं नहीं जा रहा, आप लोग मेरे पास आते रहेंगें, इस का विश्वास मुझे है, मां से मेरा प्रणाम कह दीजिए—अच्छा सची नमस्ते !" उन दोनों

को उलझा देख पार्वती उठ कर भीतर चली गई थी मन में उमड़ते अनुताप के कारण एक क्षण भी आगे ठहरना कांत के लिए असम्भव हो उठा था इसी कारण बिना मुड़ कर देखे ही वह बाहर निकल गया।

उस की बात का अर्थ कान्त यह लेगा यह उस ने सोचा भी नहीं था. असहनीय वेदना एवं अपमान से उस की आंखें भर आई. दयाल बाबू की ओर पलट कर बोली—"देख लिया बाबू जी ! मेरा कितना बड़ा अपमान कर गए हैं।"

लड़की का सिर वक्ष में भर छोटे बालक की भांति उस का सिर थपथपा दयाल बाबू बोले—"तूने भी तो क्रोध में कम उल्टी सीधी बातें नही सुनाई ।"

सुमित्रा अपने मन की बात मां से नहीं कह पाती थी। उसके विपरीत पिता की छाती से सट मां की घुड़कियों से बची है, मनका अनुताप बाप के वक्ष पर सिर रख गलाया है, उस दिन भी पिता की छाती पर सिर रखते ही वह उमड़ती रुलाई रोक नहीं पाई। लड़की का सिर थपथपाते दयाल बाबू बोले—"अरे तू रोती क्यों है पागल !"

"रोऊं नहीं बाबू जी। मैंने अनाप शनाप बका था, तो क्या कान पकड़ कर दो थप्पड़ नहीं मार सकते थे. धमका नहीं सकते थे, जर्मनी जाने से पहले नहीं मारते थे क्या ? परन्तु तब मै पराई थोड़े ही थी, आज मैं पराई हो गई, हां-हां पराई तो हो ही गई हूँ। अन्यथा तो क्या इस प्रकार भोजन छोड़ भूखे चले जाते ।"

"अरे तो क्या हुआ इस में दुख पाने की कौन सी बात है. कल ही कान से पकड़ कर ले आऊंगा. तू चिंता मत कर अभी तो तेरे बाबू जी जीवित हैं।"

उस दिन उस घर में खाना पीना किसी का नहीं हो सका !

उस घटना के पश्चात वास्तव में कान्त का दयाल बाबू के यहां जाना नहीं हुआ था। वह केवल हट के कारण नहीं, कारण कि कह आने पर भी एक बार सुमित्रा मे उस का स्पष्टीकरण वह करना चाहता था। मन ही मन उसे विश्वास था क्रोध शान्त होने पर वह स्वयं ही अपनी भूल स्वीकार कर लेगी।

पांच सात मुकदमों के चक्कर में फंसे रहने के कारण उसका जाना नहीं हो सका, उस बीच सुमित्रा के न जाने के कारण उसका मन खिन्न हो उठा। और फिर उस की उलझनें दिन-बदिन जटिल होती गई, लाला का मुकदमा, बड़े भाई का मुकदमा, उस पर घर का खर्चा चलाने की धुन ने उसे एक दम से बौखला दिया था। साथ ही मां ने मंदिर में पाठशाला खोल उसके सिर पर एक और झंझट खड़ा कर दिया था। नित्य प्रति बच्चों में लड़ाई होती उस के कारण लोग आपस में लड़-झगड़ बैठने और आकर उस मे कहने—"सच जानियो दादा ! सारे झगड़े की जड़ थारा स्कूल से।" तब कई बार उसका मन सिर फोड़ लेने को करता, कई बार मन ही मन कह बैठता—"मां ने न जाने किस झंझट में फंसा दिया है," अथवा,—"यह लोग शिक्षा के मूल्य को जाने कब पहचानेंगे।

इस सब से कुंठित हो दो दिन डरते डरते उस ने मां से बात छेड़ दी—"मां पहले से ही कहे देता हूं तू मेरी बात का बुरा नही न मान सकेगी ?"

"सचमुच कान्त तू मुझे चक्कर में डाल देता है, मैं क्या कभी तुम पर क्रोध करती हूं।"

"नहीं मां नहीं करती हो, परन्तु यह बात ही कुछ ऐसी है।"

"बहुत हुआ रे ! सीधे बात क्यों नहीं बताता।"

"मैं सोच रही हूँ, यह सब बड़े भैया को दें; तुम्हें ले कर कहीं और चला जाऊं।"

सुखदेई गम्भीर हो उठी—"देख कान्त ! इस प्रकार जी छोटा करने से काम नहीं चलेगा—और हां तुझे एक बात बताऊं, तेरे पिता के छोड़ देने पर अध्यापिका बनने का विचार किया था, इसी कारण दसवीं पास भी कर ली थी, परन्तु तुम्हारे कुल की मर्यादा के कारण पढ़ा नहीं पाई, आज भी नहीं पढ़ा पाऊंगी न ही तू चाहेगा, मैंने उन पुस्तकों में पढ़ा था, इंजीनियर बड़े बड़े कार्य कर सकते हैं, तू क्या ऐसा कोई ही काम नहीं कर सकता ?"

मां की पढ़ाई की बात सुन जो आश्चर्य कान्त को हुआ था, वह अपने काम का उल्लेख सुन लुप्त हो गया, बोला—"मां इस छोटे से गांव में वह काम नहीं हो सकते , कारखाने होते तो बात दूसरी है।"

"परन्तु कान्त लोहार बढ़ई तो यहां भी हैं।"

"मां इन छोटे-छोटे कामों में इंजीनियर क्या करेंगे ?"

"एक बात समझ लो कान्त ! जो छोटे काम नहीं कर सकते वो बड़े कार्य सम्पन्न नहीं कर सकते।"

सुखदेई की बात न जाने कान्त के मन में कहां जा बैठी। मां की बात में उसे सत्यता की झलक दिखाई दी ! जर्मनी के गांवों में घूम फिर कर उसने वहां बहुत कुछ बनते देखा था उन के पास पूंजी भी विशेष नहीं होती थी कितने ही पत्र—पत्रिकाओं में उसने पढ़ा था कि जापान के कारखानों का काम केवल छोटे छोटे पुर्जों को एकत्रित कर उन्हें मशीन का आकार देना मात्र है, अन्यथा वह सब वहां के जन साधारण अपने बचे समय का उपयोग कर निर्माण करते हैं।"

रात भर वह इसी बात पर विचार करता रहा, जिस कारखाने

में उस ने प्रथम वर्ष शिक्षा ली थी, वहां सिलाई की मशीनें बनती थी, साधारण से निरीक्षण के कारण वह सुन्दर सुदृढ़ मशीनें बनवा सकता है, दूसरे दिन से मन लगा इस काम को करने का उसने दृढ़ निश्चय कर लिया ।

दूसरे दिन दो तीन लोहारों को बुला उन्हें समझा-बुझा कर सहमत कर लिया—"उन सब का साधारण उत्तर था, हमें तो दो रोटियां चाहिएं दादा ! जो चाहे करवाओ ।" उन की सम्मति पा कर वह मां के पास आया—"मां तुम्हारे पास कुछ पैसे होंगे ?"

कान्त के मुख की ओर देख बोली—"अरे तेरी मां के पास पैसे कब नहीं रहते हैं, कितने चाहियें बोल ?"

"कुछ अधिक नहीं चाहियें मां यही कोई दो एक हजार !"

"इतने पैसे तो नहीं कर पाऊंगी । क्यों बात क्या है बेटा ?"

"कुछ नहीं मां ।" कान्त ने कुछ ऐसे निराश स्वर में कहा कि सुखदेई आशंकित हो उठी—"बोली क्या बात है बता तो ।"

"मैंने रात भर तुम्हारी बात पर विचार किया, सोचा सिलाई की मशीनें बनवाना आरम्भ कर दूं ।"

"यही तो, सचमुच कान्त तुझ सा बेटा बड़े भाग्य से मिलता है, तू चिंता मत कर दो चार दिन में प्रबंध हो जाएगा ।"

मां की बात सुन कान्त हंस दिया—"और तुम जैसी मां उस से भी बड़े भाग्य से मिलती है । अच्छा मां तुम्हारी गोद में पड़ सकता हूं ।"

"फूट गए भाग । तू क्या अभी दूध पीता बच्चा है ।" कह लड़के का सिर स्वयं खींच सुखदेई ने गोद में डाल लिया, कान्त को गोद में डाल सुखदेई की आंख भर आई, 'एक दिन पहले भी इसी प्रकार

मेरी गोद में आने को मचल पड़ा था परन्तु उस दिन मुझे भाग जली ने नहीं लिया। उस के पश्चात कितने दिन तुझे गोद में खिलाने को तरसी हूँ: एक दिन तो तेरे पिता के सामने गिड़गिड़ाई पर मानने वाले वह जीव नहीं थे, और आज देख वह हार गए और तेरी यह माँ जीत गई।"

दो चार दिन कान्त ने पाठशाला में बिताने की बात सोची परन्तु वहां पंडित जी को ऊंघते पा वह बिगड़ उठा, उन्हें ठीक से पढ़ाने का आदेश दिया, समय बिताने के विचार से वह बगीचा ठीक करने मे लग गया, परन्तु उसका मस्तिष्क स्कूल में उलझा रहा, यदि वह इस पाठशाला में छोटे छोटे काम कराता रहे तो बहुत कुछ बनाया जा सकता है, दरी, चद्दर, खेस, टोकरी, गलीचा, कालीन मेज़ कुर्सी खेल खिलौने, इत्यादि।

दो दिन तक यही विचार उस के मसितष्क में पकते रहे, एक दिन अनायास ही घर में पड़ी टीन ले, अपना टूल बकस निकाल अपनी पुस्तक में से मोटर का ब्योरा देख उसे गणना अनुसार घटा, छोटी सी मोटर उसने बना ली उस पर केवल रंग की आवश्यकता रह गई थी—उसी दिन से उसने बालकों को सिखाना प्रारम्भ कर दिया, एक जुलाहे को कुछ मासिक वेतन दे दरी इत्यादि का काम सिखाने को रख लिया। महीना भर तो बहुत कुछ व्यर्थ में नष्ट हुआ परन्तु धीरे धीरे बालकों के हाथ साफ होने लगे, पाठशाला का समय भी चार घंटे प्रात: ग्याहर बजे तक—तथा सायं की तीन से छ: तक कर दिया गया।

तीन चार मास बीतते बीतते स्कूल में खसारे के स्थान पर लाभ दिखाई पड़ने लगा, स्कूल की एक पाई भी कान्त अपने घर व्यय नहीं करना चाहता था, इसी कारण अध्यापकों का वेतन निकाल शेष धन लड़कों में बांटने की घोषणा कर दी गई, दो मास और बीतने पर

प्रत्येक लड़का दस-दस रुपये कमाने योग्य हो गया, इस सब के कारण कान्त का उत्साह और बढ़ चला और वह पूर्ण रूप से पाठशाला में जुट गया।

इस बीच वह अपनी मशीन वाली बात नहीं भूला था, सुखदेई भी नहीं भूली थी। दूसरे दिन उसने जमीन बेच पैसे जुटाने की बात कही तो कांत ने मना कर दिया, बोला—"नहीं माँ भूमि मत बेचो यहाँ मेरा विचार पाठशाला खोलने का है।"

प्रसन्न हो सुखदेई ने उत्तर दिया—"यही तो बेटा ! थोड़ा सा कष्ट उठाने से ही सुख मिलता है।"

कान्त प्रातः चार बजे उठकर पाठशाला चला जाता था और बाहर-एक बजे तक लौटता था इसी कारण मां का घर चले आने का आदेश सुन उसे आश्चर्य हुआ। "पंडित जी ! मैं घर जा रहा हूं, अब संध्या को ही आ पाऊंगा।" कह वह घर की ओर चल दिया। वहां बैठे जिन दो आदमियों ने उठ कर उसे "राम-राम" करी उन में से एक आवश्यकता से अधिक बूढ़ा था, और दूसरा केवल किशोर कहा जा सकता था—"कहिए क्या मुझ से कोई काम है !"

"हां दादा थारे पास ही तो आया हूं, तनिक देख कर बता दो हम पर थारे कितने रुपये है।"

"अभी देखता हूं आपका शुभ नाम !,,

"नाम तो भगवान का हो से, मन्ने गंगाराम कहवें सें।"

पिता जी जो ब्योरा छोड़ गए थे उसमें कहीं भी गंगाराम का नाम कान्त को नहीं मिला "अभी आया!" कह वह सुखदेई के पास पहुंचा—"मां तुझे पता है गंगाराम पर हमारा कितना रुपया चाहिये ?"

"यही बारह सौ रुपया है।"

"पिता जी ने तो कहीं लिखा नहीं।"

"बात यह थी उन दिनों गंगाराम के घर रोटी भी नहीं बनती थी, तेरे पिता ने कह दिया—"कोई बात नहीं गंगा मेरा रुपया भर पाया। ले मैंने काट दिया—और हां कुछ और चाहिये तो बता दियो। तेरे पास हों तो दे दिये वरना रहने दियो और देख छोटी का ब्याह कर दे पैसे मैं लगा दूंगा, जैसी तेरी बेटी वैसी मेरी !"

मन ही मन पिता की महानता को सुन कान्त कि छाती गर्व मे फूल उठी पिता का वह देवता रुप उससे अब तक न जाने कैसे छिपा रहा—बाहर आकर गंगाराम से बोला-" देखिये मां कहती है बारह सौ है !"

"राम राम ! दादा को भी बेरा कोनी म्हारे हिसाब से तो तीस सैंकड़े हों सें।"

"कोई बात नहीं, आप जब सरलता से दे सकें दे दीजिए।"

"देने ही आया हूँ दादा !" कह अंटी से पूरे चार हज़ार के नोट निकाल गंगाचरण ने कान्त के हाथ पर रख दिये।

रुपये गिन कान्त बोला—"यह तो चालीस सैंकड़े हैं।"

"चालीस बरस का ब्याज के बैठा मन्ने बेरा नहीं। न ही जयपाल ने खोला था।"

"जी नहीं मैंने कम होने की बात नहीं कही, ब्याज मैं नहीं लेता किसी की आत्मा दुखा पैसा बटोरना मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"राम-राम थारा कुल कहीं आत्मा दुखा सके और दादा यू तो लेना होगा, थारा रुपया तो दे सकूं पर थारा उपकार के चुकाया जा सके—अच्छा दादा राम-राम, अब चलूंगा दुपहरी हो चली।"

"यह नहीं होगा, दुपहरी में जाने मैं नहीं दूंगा, भोजन कर, थोड़ा सुस्ता, धूप ढल जाने पर चले जाईये।"

"अच्छा फिर जैसी तेरी इच्छा।"

रुपये ले जा कर कान्त ने मां के हाथ पर रख दिये—"मां इन लोगों का भोजन बनाना होगा।"

"तू चिन्ता मत कर, भोजन मैंने बना दिया है, तू हाथ धो उन्हें खिलादे, दो खाट बाहर नीम तले डाल दे और देखियो गंगा से पूछ लियो

लड़के पढ़ाना चाहे तो पाठशाला में छोड़ जावेगा।"

अच्छा "मां कह कर कान्त चला गया।"

संध्या को मन्दिर जाते समय मुखदेई बोली—"रुपये लेकर कल अपनी मशीन इत्यादि ले आना।"

"नहीं मां पहले पाटशाला बनवानी होगी पाठशाला के लिए तेल का इंजन लाना होगा। उसके पश्चात मशीन की बात सोची जायेगी।"

"नहीं बेटा पाठशाला पूर्णतया अपने पांव पर खड़ी हो गई है, आज नही तो कल अपने ही पैसे से वह सब कुछ बनाने में समर्थ होगी। पाठशाला के पैसों से तो तुझे कुछ चाहिए नहीं, तेरे अपने लिये भी तो चाहिये!"

"जैसी तुम्हारी इच्छा हा मां वैसे दो-तीन लोहार काम करने को प्रस्तुत हैं।"

सुखदेई ने बात पलट दी —"क्यों रे अब तू अपने मुकदमे की बात मुझ से नहीं बताता।"

"क्या बताऊं मां। मेरे हाथों से एक अनर्थ हो गया? यदि मुझे पता होता वह कभी करता भी नहीं!"

"मैं भी तो सुनूं क्या अनर्थ हो गया।"

"कुछ नहीं मां! बड़े भैया ने थानेदार से मिल डाका डलवा मुझे उस में लपेटने का प्रयत्न किया था, कहीं मुझे पता चल गया, मैं जाकर डिप्टी कमिश्नर से मिला, जिस समय डकैती पड़नी थी उस समय तक मुझे उन्होंने अपने पास रखा, उस समय दो तीन, मेजिस्ट्रेट और बुला लिए गये थे। निश्चित समय के पूरे पांच घंटे पश्चात मुझे विदा दी, तुम्हे ध्यान होगा आज से छः मास पूर्व किसी कार्यवश करनाल ही

ठहरने की बात कह कर मैं घर से गया था—दूसरे दिन पाठशाला से मुझे थानेदार पकड़ कर ले गया। ग्वाहों में बड़े भैया के साथ तीन और भी थे, मुकदमा पेश होने तक मेरी बात का पता किसी को नहीं था, इसी कारण जब अदालत में वह सब रहस्य खुला तो सब बौखला गये, पांचों गिरफ्तार कर लिए गए, भैया की वकालत के पत्र छीन लिए गए, थानेदार की नौकरी जाती रही, वहां से जमानत से छुड़ा दिया, परन्तु सरकारी मुकदमा होने के कारण कुछ भी करने में असमर्थ रहा, इसी मुकदमे को लेकर भैया ने दिल्ली का एक मकान बेच दिया, रहने का घर भी गिरवी पड़ा है, दोनों दुकानें भी बिक गई।"

"दीर्घ निश्वास छोड़ सुखदेई बोली "देखती हूं वह लड़का अपना सर्वनाश करने पर तुला है।"

"मेरी बात मानों मां ...

"कान्त तेरे मन में क्या है मैं समझती हूं। एक बार कहने के—पश्चात दूसरी बार आवश्यकता मुझे नहीं पड़ती।"

दूसरे दिन कान्त मां से ढाई हजार रुपये ले, इंजन तथा खराद लेने दिल्ली चला आया, दुकानें खुलने में देरी होने के कारण वह भाभी से मिलने बड़े भाई के घर जा पहुंचा, उसे देखते ही सलोचना खिल गई—"आओ लाला जी ! बड़े दिनों पश्चात भाभी की सुध ली।"

"आना ही नहीं हुआ भाभी ! भैया क्या कहीं बाहर चले गये हैं ?"

म्लान सी मुस्कान मुस्का बोली—"और कहां जायेंगे घर बिगाड़ने गए हैं।"

"क्यों क्या बात है ?"

"रुपया ऋण लेने गये हैं।"

"ऋण किस कारण ।"

"वही जान लेवा मुकदमा ! तीन साल का दंड मिला था. ऊपर अपील की है ।"

"तुम उन्हें समझाती क्यों नहीं भाभी ।"

"क्या समझाऊं भाई समझाते समझाते हार गई परन्तु वह हैं कि मानते ही नहीं । अब तुम से क्या छुपाऊं. मेरे गहने मांग रहे थे मैंने कह दिया—"देखो मां की आज्ञा बिना एक छल्ला भी मैं नहीं दे सकती ।"

"बोले मुझे जेल हो जायगी ।"

जली तो मैं बैठी ही थी बोली—"जो दूसरों को जेल भिजवाने का षड्यन्त्र करता है. वह जेल नहीं जायगा तो क्या मैं जाऊंगी ।"

क्रोध में फुंकारते चले गए, अब तुम बताओ भाई जिस घर में तीन दिन से चूल्हा न जले, उसे मुकदमा लड़ने की क्या आवश्यकता पड़ी है, यह तो वही हुआ आ बैल मुझे मार ।"

"कमल कहां है ?"

"भूख से बिलबिला रहा था. बाहर भेज दिया ।" कहते कहते सलोचना की आंखे भर आई ।

दीर्घ निश्वास छोड़ कान्त बोला—"तुम मुझे इतना पराया समझती हो भाभी ! पता नहीं था "

आंखों का जल पूंछ सलोचन हंस दी—"कहा मैं तुम्हें पराया कब समझती हूं देवर जी "

"नहीं समझती न तब तो फिर ठीक है, यह लो इस समय मुझे इन की आवश्यकता नहीं है ।" कहते कहते जेब से ढाई हजार रुपए निकाल भाभी की गोद में डाल दिये ।

"तुम क्या बावले हुए हो लाला जी! जो अपने ही विरुद्ध मुकदमा करने को ईंधन जुटा रहे हो।"

"वह देखना भैया का काम है मेरा नहीं।"

"नहीं भाई मैं नहीं ले सकती।"

"क्यों नहीं ले सकती हो कैसे नहीं लोगी—और फिर मैं यह तो नहीं कहता तुम यह रुपया मेरे विरुद्ध मुकदमे के लिए भैया को दो, यह मुकदमा मेरे से थोड़ा है, है सरकार से, सच जानो भाभी! तुम यह न समझना मैं झूठ बोल रहा हूं, यदि भैया को जेल हो गई तो तुम्हारा यह देवर कहीं भी जा कर डूब मरेगा।"

कान्त की बात सुन सलोचना हंस दी—"सच लाला जी यदि लड़की होते तो तीन बच्चों की मां हो जाते, औरतों की भांति डूब मरने, फांसी खाने की बात कह भाभी को डरा देना चाहते हो।"

"डराना नहीं चाहता भाभी! सच जानना.........."

"सच तो जान गई हूं भाई। पर मुझे एक बात बताओ अपनी भाभी के सिर पर इतना ऋण क्यों चढ़ा देना चाहते हो बताओ तो!"

"देखो भाभी तुम तो जानती हो तुम्हें मां के स्थान पर मैं समझता हूं, फिर मेरा भी तो कर्तव्य है, मेरे जीते तुम और कमल भूखे रहें, नहीं-नहीं भाभी! यह तो मुझ से मरने पर भी नहीं हो सकता।" भाभी की झोली में से सौ रुपया उठा बोला—"देखो भाभी मैं भी कुछ खाकर घर से नहीं चला भूख भी लगी है, तुम तनिक अंगीठी सुलगा लो मैं भाजी लेकर अभी आया। और हां! कमल को बुला लेना।"

आधे घंटे पश्चात ही मिठाई फल भाजी एवं साड़ियों से लदा कान्त आ उपस्थित हुआ—"वाह लाला जी, वाह! भाभी के लिये साड़ियाँ ला उस को बहका लेना चाहते हो"

"देखो फिर तुमने हंसी की ।"

"भाभी जो हूं फिर हंसी नहीं करूंगी तो क्या करूंगी ? अच्छा एक बात पूछूं ! इस प्रकार रुपये फूंक आने को तुम्हें किस ने कहा"

"कहता कौन ?"

भोजन उपरान्त कान्त गांव लौट आया—घर आ मां के सम्मुख अपराधी की भांति आकर खड़ा हो गया—"मां ! आज – तुम्हारा बेटा तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन कर आया ।"

"कौन सी आज्ञा का उल्लंघन कर आया, बताये बिना समझ सके इतनी पारदर्शी तेरी मां नही है ।"

"मैं मशीनें नही लाया ।"

"क्यों ?"

"रुपए भाभी को दे आया ।"

"कह क्या रहा है रे ?"

"मुझे क्षमा करना मां दो दिन उस घर में चूल्हा नहीं जला, मेरी और भाभी की एक बात पक्की हो गई थी कि मैं और बड़े भैया कितने ही लड़ें पर....... "

"ओ रे पाजी । तू क्या मुझे पागल समझता है ।"

"तुम्हारी दुहाई है मां । मिथ्या आरोप मत लगाओ । तुम ही बताओ अपनी आंखों से भाभी और कमल को भूखों मरता कैसे देख सकता हूं ।"

"नहीं रे ! तु कुछ नहीं देख सकता, चिड़िया जैसा दिल है तेरा! अब कुछ नहीं कहती फिर ऐसा नहीं होना चाहिए समझा ।"

"फिर की फिर देखी जायेगी ।" कह हंसता हुआ कान्त बाहर चला गया ।

८

कान्त की पाठशाला पक्की बन गई थी। उस में छोटी छोटी वस्तुओं के साथ बड़ी बड़ी वस्तुएं बननी आरम्भ हो गई थी, सिलाई की मशीनें, बिजली के पाईप, साईकिल की कीलें, पेच, फर्नीचर, गलीचे, कालीन जूते अथवा चमड़े का अन्य सामान इत्यादि वहीं बनता था, इन सब के भिन्न भिन्न-विभाग खुल गए थे, उन के काम के लिए दिल्ली, अमृतसर लखनऊ कलकत्ता बम्बई में दुकाने ले लीं गई थी। संयोजक के नाते लाभ का पांच प्रतिशत कान्त को मिलता था उसी पांच प्रतिशत से उस की आय तीन हजार साढ़े तीन हजार हो गई थी, पाठशाला में पांच हजार से ऊपर विद्यार्थी हो गए थे, इसी कारण विवश हो उसे पाठशाला में प्रवेश केवल जिले के लड़कों के लिए सीमित करना पड़ा था—पाठशाला को मान्य विश्वविद्यालय का रूप देने के लिए बात चीत चल रही थी।

इन सब बखेड़ों के साथ उसने एक और बखेड़ा सिर ले लिया था—बरसात में गांव के कच्चे रास्ते पानी से भर जाते वहाँ पक्की सड़कें निकालने का उसका विचार था, शरीरिक योग के अतिरिक्त लोग—बाग पैसे देने में संकोच कर रहे थे। उसी को लेकर उसने गांव के सज्जनों को मन्दिर में आमंत्रित किया था। वहां सब का, सब से बड़ा एतराज यह था कि जब वह लोग कर देते हैं तो यह काम तो सरकार का है उनका नहीं। कान्त ने समझाने की चेष्टा की हरखू चौधरी सरकार का नहीं। काम है हमारा।"

"फिर हम टैक्स के करण ने मरें से।"

"बात यह है चौधरी जी। हम लोगों ने यह काम सरकार पर छोड़ दिये हैं इसी कारण हमें कर देने पड़ते हैं।"

"न दादा यू बात न है। बात यू से, बड़े बड़े अफसरों की मोटी मोटी तनखाहों के खातिर टैक्स लगें से एक दूसरे चौधरी ने कहा।

राम दियाल ने जिसने आठवीं कक्षा तक शिक्षा पा, पी. डब्लयू डी में कुछ वर्ष काम किया था, बात का समर्थन कर कहा—"मन्ने सब बेरा से दादा। हम टैक्स न देवें तो अफसर क्या कर खावें इंजीनियर, ठेकेदारों के घर क्योंकर भरें।"

"तुम्हारी बात ठीक है राम दियाल। परन्तु उन्हें खाने का अवकाश केवल इसी कारण मिलता है कि हम अपना काम छोड़ देते हैं सरकार पर, और सरकार अफसरों पर छोड़ देती है, तुम लोग तनिक सोचो तो यदि हम अपना सारा काम खुद करें तो सरकार कर लेकर क्या करेगी, इसी कारण तो कहता हूं कि आप अपना काम सरकार पर मत छोड़ो।"

एक और ने कहा—"सच पूछे तो दादा? महारी समझ में कुछ भी कोनी आया।"

"मैं आप लोगों को समझाए देता हूं।" कान्त ने उत्तर दिया—"यदि सरकार तुम्हारे इस गांव में बिजली लगवादे तो तुम से पैसे मांगेगी' यदि तुम लोग सब मिल कर बिजली बनाने की मशीन लगा लो तो, गाँव के दो चार लोगों को काम भी मिलेगा और जो कुछ खर्च आये आपस में बट जायेगा मैं एक और बात बताता हूं, अनाज तुम लोग बोते हो, आड़ती उसे बेचता है, वह तुम से आढ़त लेता है, लाभ लेता है, यदि आप लोग स्वंय बेचें तो आप के वह पैसे बच जाये।"

हरखू ने पूछा—"बच तो जावें पर यह सब टंटा करे कौन।"

करेगा कौन, तुम लाग करोगे और कौन करता. आप लोगों में से दस दस घरों में से एक एक आदमी भी निकल आये तो सौ आदमी निकल आये. फिर आप का काम तो दस बीस से चल सकता है, पैसे तो बचते ही हैं, अनाज की चोरी भी नहीं हो पायेगी, और तुम लोगों को अधिक पैसे पड़ेंगे, आढ़ती का परिवार, उस के मुनीमों का परिवार तुम्हारे पैसों पर पलता है, ठीक इसी भांति सरकार और सरकारी कर्मचारियों का परिवार—तुम पर पलता है, बनिये की तिजोरी जैसे भर जाती है, वैसे सरकार, अफसरों और ठेकेदारों की जेबें भरती हैं, यह ठीक है, आरम्भ में आप लोगों को कर भी देना होगा और काम भी करना होगा, परन्तु तुम्हारी भांति ही यदि दूसरे गांव वाले भी यह करेंगे तो कर में बहुत बड़ी कमी हो जायगी।

"जब दूसरे करेंगे, हम भी कर लेंगे।" सुखू चौधरी ने हांक लगाई।

हरखू बोला—"हमने दूसरों का ठेका से भाई! लाभ हो से तो कर लो।"

"लाभ क्यों नहीं होगा हरखू चौधरी आवश्यक होगा, और कुछ नहीं तो हमारा गांव सुथरा होगा, कीड़े कांटे से बचेंगे। मैं तो यह चाहता हूँ, इस गांव में हर एक का पक्का घर हो बिजली हो, यदि पानी का नल हो, यदि आप लोग चाहें तो बस हो सकता है।"

"हो तो सब सके पर पीसा कितते आवेगा ?"

"पैसे की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी जैसे गांव में कुम्हार है, उसे भी पक्का घर बनवाना है" बढ़ई ने भी, लोहार ने भी और तुम्हें भी, कुम्हार ने इंटें दे दीं, बढ़ई ने दरवाजे बना दिये, लोहार ने अपना अपना काम कर दिया, तुमने उन्हें उतने दिन का अनाज दे दिया; सामान ला दिया, बस सब के मकान बन गए।"

हरखू बोला—"देख दादा महारे से मोटी अकल, तेरी समझ में जो आवे सो कर. हमने तो जो कहेगा कर देंगे, आगे तू जाने, तेरा काम जाने ? क्यों सुखू ठीक से न !"

"के मन्ना करूं सूं, जो पंचों की इच्छा सो मेरी।"

हरखू की बात का समर्थन करते सुखू ने उत्तर दिया।

आधा पौना घंटा और इन बातों में बीत गया कि यह सब प्रारम्भ किस ओर से किया जाये। अन्त में उसका निर्णय कान्त पर छोड़ बैठक कर समाप्त हुई।

बैठक की समाप्ति के पश्चात कान्त को स्वयं अपनी बात पर आश्चर्य हुआ। कभी इस ओर उसने ध्यान नहीं दिया था, उसके अवचेतन मस्तिष्क से वह सब बातें निकल स्वयं स्पष्ट होती गई उसके वंशजों का वह गांव किस प्रकार आदर्श हो सकता है। उसका अपना गांव ही नहीं बल्कि अन्य गांव भी इसका अनुकरण कर लाभ उठा सकते हैं। उसकी गणना अनुसार वर्ष भर के भीतर सारा गांव पक्का हो सकता है ; रही बिजली की बात, सो अपने गांव के तीस चालीस विद्यार्थी भी उपार्जित धन राशी उसमें लगा उन्हें साझीदार बना बिजली घर भी बन सकता है। क्या हुआ लाभ की मात्रा ही तो निश्चित करनी पड़ेगी।

उस दिन नये उत्साह से कान्त घर गया।

दूसरे दिन गांव के कुम्हारों को बुला उसने भट्ठा लगाने की बात कह उनको सहमत कर लिया, अवश्यक लिखा पढ़ी कर उन लोगों को साझीदार बना सहयोगी संस्था का नाम करण कर दिया। सारे गांव वालों को बुला प्रसाद बांट उसका नाम भी प्रारम्भ कर दिया। कुम्हारों को कच्ची ईंटें बनाने को कह वह जिले कार्यालय में उस संस्था को रजिस्टर कराने एवं कोयले का परमिट लेने वह करनाल चल दिया।

रजिस्ट्रेशन के काम में देरी लग जाने के कारण कचहरी में डिप्टी कमिश्नर से मिलना उसका नहीं हो सका था. इसी कारण उसकी कोठी पर मिलने वह चला गया— चपरासी का कड़वा उत्तर—"साहब बंगले पर सरकारी काम से नही मिलते।" सुन वह लौटने लगा था। उसी समय किसी कारण से डी० सी० बाहर आये। उसे बैठे देख बोले—"कहिये ?"

पलट कर ज्यूंही कान्त ने उनकी ओर देखा तब डी० सी० एक प्रकार से चीख पड़ा –"अबे तू कब आया ?"

कान्त को भी अपने पुराने मित्र गिरी सक्सेना को पहचानने में समय नहीं लगा, "चलो छुट्टी हुई। तू यहां है फिर मुझे कोई कष्ट नहीं होगा।"

"भाग साले ! मैं तेरा नौकर हूं जो कष्ट निवारण करता फिरूं।" साथ ही उसका हाथ पकड़ भीतर घसीटता ले चला। "देख लिया किरण गधा बकता है, कष्ट नही होगा, और मैं कहता हूं भाई को वह छटी का दूध याद कराऊं कि कभी भूले नहीं।"

किरण कपड़े बदल रही थी, अर्धनग्न अवस्था में होने के कारण वहीं से बोली—"बाहर ही रहना मैं अभी आती हूं।"

द्वार पर रुक गरीश बोला—"अब देख बेटे, तेरी वह हजामत बनवाता हूं, कि कभी भूले नहीं। क्यों बे, जर्मनी से आये तो दो ढाई वर्ष हो चले होंगे। फिर मिलने क्या नहीं आया जाता था।"

"गया तो था परन्तु पता चला, गधे के पर लग गए हैं, और वह उड़ गया। फिर वता मिलता कैसे !"

कान्त की पीठ पर धौल जमाते हुए गिरीश बोला—"अच्छा बे अब हम गधे हो गए।"

"अबे तो था कब नहीं नहीं !"

तब तक किरण बाहर निकल आई थी।

यहां तनिक उन दोनों का परिचय देना आवश्यक है, गिरीश और किरण दोनों कान्त के बी० एस० सी० तक सहपाठी रहे थे, कांत और गिरीश की मित्रता सारी विश्वविद्यालय में विख्यात थी। किरण कान्त का सर्वदा से आदर करती आई थी। सदा उसे भाई जी ही कहा करती थी। बाहर आते ही बोली-"बड़े दिनों पश्चात दर्शन हुए, भाई जी लगभग नौ वर्ष बीत गए होंगे।"

"हां भाभी !"

यही नहीं होगा भाई जी। मुझे तो आप नाम लेकर ही पुकारिये। किरण ने आपत्ति की।

"चलो नाम ही ले लिया करूंगा। परन्तु आप लोगों ने कहां जाने का प्रोग्राम बना रखा है।"

"यूं ही तनिक पिक्चर देखने का विचार है"' गिरीश ने उत्तर दिया।

"तो भाई। तुम लोग जाओ, मैं गांव जाऊंगा केवल मेरा यह प्रार्थना पत्र कोयले के लिए रख लो"

गिरीश ने प्रार्थना पत्र फाड़ कर फेंक दिया—" बस ! और देखता हूं तू गांव कैसे जायगा"

"नहीं गिरीश मुझे जाना ही होगा। मेरे बिना मां भोजन नहीं करेंगी।"

"कौन सुमित्रा की मां भाई जी।" किरण ने पूछा।

"नहीं किरण मेरी अपनी मां।"

"अवे तेरी माँ ! तेरी माँ तो मर गई थी न।"

"हां मेरी पहली मां। जिसे लोग सोतीली मां कहते हैं ये वही हैं।"

"अच्छा मुझे तो पता ही नहीं था।"

मुझे भी पता नहीं था गिरीश, पिता जी के देहांत के पश्चात पता चला।"

"पिता जी का देहांत हो गया ! कब ?"

"जर्मनी से लौटने के बाद उनके दर्शन नहीं हुए।"

"अरे हां। जर्मनी से लौट गांव में क्या घास खोद रहा है। कान्त अच्छा वह बातें फिर होंगी।" कह ड्राईवर को बुला उसे कान्त के गांव न आने की सूचना भिजवा दी।

सिनेमा से लौट कान्त ने जर्मनी से लौटने के पश्चात की सारी घटनाएं सुना दीं। बात सुन गिरीश बोला "यह बात है, तो मैं तेरे उस बड़े भैया को बन्द कराये देता हूं।"

"देख गिरीश तेरे कारण मेरी उलझनें बढ़नी नहीं चाहियें। मैं चाहता हूं बड़े भैया पर से यह मुकदमा उठ जाये।"

"क्यों भाई जी ऐसी प्रकृति के व्यक्ति को दंड तो मिलना चाहिये।"

"नहीं किरण। उन पर जो अन्याय हुआ है उसके होने पर बहुत लोग ऐसा ही करते, और देख गिरीश-तुझे यह काम करना होगा।"

"मैं कुछ नहीं करूंगा।"

"वह तो तेरा पुराना स्वभाव है। मना करता रहेगा और

करेगा। तुमने सुना होगा किरण एक जानवर होता है जो बिना पिटे अपने स्थान से टस से मस नहीं होता।"

"अच्छा तो ले।" कह गिरीश उछल कर मेज के दूसरी पार कान्त को पकड़ने के लिए बढ़ा, कान्त भी उठकर भाग लिए, मेज के दो तीन चक्कर काट थककर गिरीश बोला—"अच्छा साले कब तक बचेगा।"

उधर किरण बोली—"बाप रे—आप लोग भोजन तो शान्ती से कर लो, यह धमा चौकड़ी फिर मचा लेना।"

"तुम्ही बताओ किरण कोई भी सज्जन पुरुष दुलत्ती सह सकता है।"

"दुलत्ती।" गिरीश बोला।

"जी हां दुलत्ती श्रीमान।" कान्त ने आगे झुक कहा, परन्तु अन्तिम शब्द के साथ—"गधा पाजी।" भी निकल आया कारण कि गिरीश के गिलास का सारा पानी उस के कपड़ों पर आ रहा, थोड़ा पानी किरण पर भी आ पड़ा—"बापरे। तुम लोग जब मिलते हो तब तीसरे का बैठना भी दूभर हो जाता है।"

आस पास खड़े नौकर-चाकर यह सब देख दबे रूप में हंस रहे थे। उनका वह हंगाम्मा रात्री के बारह बजे तक चलता रहा। गिरीश ने कान्त को बिछोने पर दबा लिया—"अब बोल साले! क्या कहा था तूने दुलती मारता हूं न।"

वहीं से कान्त ने दुहाई मचाई —"किरण तुम्हारी दुहाई। जो न बोले तो कसाई!" यह उन तीनो के बीच नौ वर्ष पहले भी होता था आकर किरण ने कान्त को छुड़ा दिया—कान्त छुटते ही बोला —"तुम्हीं बताओ मैं ने इसे गधा कब कहा? तुम चाहे इसे गधा कहो पाजी,

मुअर कुछ भी कहो, पर मैं नही कह सकता, मेरा तो यह पालतू है ना ।"

"अच्छा तो मानेगा नहीं ।"

"तुम्हें पता है किरण ! जर्मनी से दो लाया था एक थानेदार ने मांग लिया, दूसरा तुमने । वैसे यह है बड़े काम का जीव । बम्बई में रखा गया तो दो आने टिकट रख, जू वालों ने लाखों कमायें थे ।" गिरीश किरण से बोला —"देख किरोण अब तू मत बोलना बीच में ।" मैं आज इसकी हड्डी-पसली तोड़ दूंगा ।"

"अच्छा बाबा कान पकड़ता हूँ । चाहे तू गधा हो भी फिर भी मैं नहीं कहूंगा-बस ।"

किरण बोली —" अब भी क्या आप लोग बालक रह गए हैं जो इस प्रकार गालियां बक रहे हैं ।"

"तू नही जानती किरण । इतने दिनों मे यह नालायक मिला नहीं जीभ को जंग लग गया था, हाथ पाँव भी सुस्त पड़ गए थे ।"

कान्त ने बात कसी—"अबे तोड़ दूं ।"

"तुम दोनों के बीच जो पड़े वह पागल । जब तक तुम दोनों के हाथ पांव नहीं टुट जायेंगे मानोगे थोड़ा ही । तुम्हारे कारण मेरा भी सोना नहीं हो सकता ।"

घंटा डेढ़ घंटा तक वह लोग बिछौने पर ही उथल-पुथल होते रहे उसके पश्चात प्रातः चार बजे तक उन लोगों में बातचीत होती रही, तब जा कर उनका सोना हुआ ।

दूसरे दिन कचहेरी समाप्त कर गिरीश और किरण को कान्त अपने साथ गांव ले आया, उन्हें मां के पास ले जा कान्त बोला "मां कैसा समय आ गया । आज कल गधे भी डिप्टी कमिश्नर बनने लगे !"

इस वाक्य ही ने सुखदेई के सन्मुख उन लोगों की मैत्री स्पष्ट कर दी, बोली—"समय की बात नहीं जानती परन्तु मित्र का नाम पुकारने की रीती अभी दिखाई पड़ी है पहले तो थी नहीं ।"

मां की बात सुन गिरीश उछल पड़ा, मां के दोनों कंधे पकड़ झिंझोड़ कर बोला—"वह मारा !! अब बोल ! वाह मां, कहते-कहते एक बार पुनः उसने सुखदेई को झिंझोड़ दिया ।

"छोड़ रे पाजी । मेरे इंजर पिंजर ढीले कर दिये ।"

"पाजी तो यह पुराना है मां ! कान्त ने हांक लगाई ।

"तुम दोनों में कौन पुराना है कौन नया इस का निर्णय स्वयं कर लो ?" साथ ही किरण को लक्ष्य कर बोली"तब तक मैं अपनी बहू से बात करलूं ।"

पाठशाला के विद्यार्थियों की सहायता से कान्त ने सड़कें बनवा मकनों का बनवाना प्रारम्भ कर दिया था। इस सब कामों में कम बखेड़े कान्त की जान को खड़े नहीं हुए। मेरा पहले बनना चाहिये, वह पक्षपात करता है इस प्रकार की कितनी ही बातें उठ खड़ी हुई। कई लोगों ने मकान पक्का बनवाने से ही मना कर दिया, नित्य प्रति इन छोटी-छोटी बातों को ले घंटों उसे गँवाने पड़ते, किसी की छत ऊंची हो गई तो आकर कहता—"क्यों दादा उसकी नाक के घनी लाम्बी से, महारी के आबरू न से।"

"बात क्या है पंडित जी !" कान्त ने विनम्र स्वर में कहा।

जय नारायण क्रोध से बावले हुए जा रहे थे, बोले—"देख तू से महारा बाहमन भाई ! तन्ने इतना भी बेरा कोनी, कि महारी और जाटां की तो लागे से, इब तू बता जाटों की हवेली कदी बामनों की हवेली ते ऊंची हो सकें।"

"किस की हवेली ऊंची हो गई।"

"अरे वह सुरते जाट की। और किसकी।"

"तो क्या हुआ पंडित जी ? दो चार हाथ ऊंची भी हो गई तो क्या बिगड़ गया।"

"तू कल का छोरा, महारे सामने जन्मा, तू के जाने, तेरे दादा दृढ़ थे, उन्हों ने मार-मार लटठों के सारे जाट सीधे कर दिये थे। महारा उनका तो पुराना वैर से, हम के उन बोल हैं।"

"देखो पंडित जी आपस में वैर ठीक नही होता. फिर गांव में रह कर भी कही कोई आपस में लड़ता है।"

पंडित जी बिगड़ उठे—"मैं तुझ ते अकल सीखन नहीं आया. मन्ने तो यू बता दे. उसकी हेली महारे ते नीचो होगी अक ना।"

"अब जो कुछ हो गया है, उसे भूल जाओ पंडित जी ! तुम्हारे क्रोध से वह तो नीची होने से रही।"

"समझा रोग की जड़ तू ही से. मन्ने वेरा कोनी था. मेरी बात सुन ले. तू आड़े किसी दिन खून खच्चर करा देगा।"

उलटी सीधी बडबड़ाते पंडित जी, उठ कर चले गए।

पाठशाला में पंडित जी का सुपुत्र संतराम पड़ता था उसे बुला कान्त ने पंडित जी को समझाने की बात कह दी। वास्तव में पाठशाला का बहुत बड़ा उपयोग कान्त को था। पीढ़ियों से चलती आई शत्रुता को जहां और बढ़ने से रोकने में वह समर्थ हुआ था वहां प्राय: वह लोग बड़े बूढ़ों को भी समझा देते थे। इसी कारण गांव में झगड़े होने की आशंका उसे नहीं रही थी। फिर भी एक दिन पानी को ले जाटों और बामनों का प्रश्न उठ खड़ा हुआ। उसी को ले सिर फुटा फुटाई हो गई, दूसरे दिन पुलिस ने दोनों पक्ष के कई व्यक्तियों को पकड़ कर हवालात में भर दिया था, कान्त जाकर दोनों की जमानत दे आया। बहुत समझाने पर भी दोनों पक्ष समझौता करने को प्रस्तुत नहीं हुए। उन की हट देख कान्त खिझ गया बोला—"देखो यदि आप लोग नहीं मानेंगे तो सारा गांव आपका हुक्का पानी बन्द कर देगा।"

"वाह क्यों कर बन्द कर देगा, तेरी ही हेकड़ी हो गई।" पंडित मनसुखराय ने कहा।

"तो फिर समझौता कर लो।" कान्त बोला।

चौधरी धनपाल बोला—"देख दादा ! इन का म्हारा समझौता तो कचहरी में होगा।"

"आप लोग बात तो बताइये क्या है ?"

पंडित जी बोले—"बात के होती। मेरा पानी का ओसरा था, इसने खाल तोड़ अपने खेत में पानी भर लिया।

"रहने दे पंडित। तू बाहमन हो के झूठ बोले, तेरा खाल टूट गया मन्ने तो बेरा न था, फेर तेरे खेत तो भर गये थे।" रोष भरे स्वर में धनपत ने उत्तर दिया। उसे शान्त रहने को कह कान्त ने पंडित जी को सम्बोधित किया—"अच्छा पंडित जी। आप के खेत भर गये थे तो उस के पानी लेने पर क्या अन्तर पड़ गया ?

"तू भी बावली बात करे है, म्हारा ओसरा था, चाहे हम बरतें चाहे खिडावें किसी ने इस ते के ?"

बात संभलते न देख कान्त ने गिरीश का आश्रय लिया; बोला—"देखिये, कल तक आप लोग समझौता कर लीजिए। नहीं करने पर आप जानते हो डी० सी० साहब मेरे मित्र हैं उन से कह तुम दोनों को को सात सात—साल को भिजवा दूंगा।"

उन के चले जाने पर कान्त ने बदलू, हरखू, और पंडित हरभजन को उन में समझौता करने को कह दिया—साथ ही यह भी सूचित कर दिया कि उस ने उन्हें डी० सी० का डर दिखा दिया है, अब समझौता करने में अधिक आना कानी नहीं करेंगे।

इन सब बातों के अतिरिक्त कान्त की जान को सब से बड़ा झंझट गांव के बनियों ने डाल दिया था। उस की योजना के अनुसार अब गांव का सारा अनाज किसानों की सामूहिक सम्मति द्वारा बिकने

लगा तो उनका व्यापार एक प्रकार से चौपट हो गया, उन लोगों ने भी गठजोड़ कर ली, गांव में से दो तीन जाट और बाहमनों को, जिन को दिन भर कोई काम नहीं था, लड़ने मरने को तैयार कर लिया। भूमि उन के पास नहीं थी काम करना वह चाहते नहीं थे, इधर उधर हुका बजाने के अतिरिक्त उन्हें और कोई काम नहीं था। गांव के सब लोगों के एके के कारण लड़ने मरने का साहस उन का पड़ता नहीं था, सड़क और मकानों में भी उन्होंने योग नहीं दिया, न ही अपने मकान उन के साथ पक्के कराये थे, उस के विपरीत बनियों से उधार ले और लोगों से ऊंचे घर उन्होंने बनवा लिये।

वैसे एक बार उन्होंने कान्त को अकेले घेर भी लिया था, परन्तु शीघ्र ही उन्हें पता चल गया कि वह शहरी छोकरा उनसे पक्का लड़ैत है, उस से मार खा—उन्होंने मार पीट करने का मुकदमा भी दायर कर दिया था। बनियों की समस्या कान्त के लिये एक ऐसी समस्या थी जिसे वह सुलझा नहीं पा रहा था। उस का केवल एक ही उपयुक्त मार्ग था कि उन्हें भी प्रत्येक समिति का सदस्य बना लिया जाये परन्तु कान्त की इस बात से भी बनिये सहमत नहीं हुए, सम्भवत; हो जाते परन्तु विमल के उनके पक्ष में हो जाने के कारण उन लोगों का साहस बढ़ गया।

सराये की दुकानों को ले हजारी प्रभु नामक बनिये से उसका मुकदमा अभी भी समाप्त नहीं हुआ था—उसे निपटाने के अभिप्राय से उस ने प्रभू को बुला भेजा। आते ही विनीत स्वर प्रभु बोला—"के आज्ञा से दादा !"

"मैं चाहता हूं मुकदमे में पैसा नष्ट न कर हम लोग समझौता क्यों नहीं कर लें।

"मैं तो राजी हूं दादा। पहल तो थारी तरफ से हुई सब्बी जाने से जयपाल दुकाने मन्ने दे गया था।"

"प्रभु संसार में झूठ सच बड़ी बात होती है तू जानता है तेरा दादा कभी झूठ नहीं बोलता था।

माँ इस प्रकार बाहर चली आयेगी इस की आशा कान्त को नहीं थी, प्रभु भी उसे देख सकपका गया बोला—"पर दादी जयपाल भूल भी तो सके है।"

भूलने वाले वे नहीं थे, यह तू भी जानता है, यह लड़का भला मानस है, तू जानता है किस कुल के लोगों से बात कर रहा है तुझे पता है, ऐसी झूठी बात के कारण तेरे किसी सम्बंधी के टुकड़े २ कर जमुना में बहा दिया था।"

सुखदेई की बात सुन प्रभु कांप गया, फिर भी साहस जुटा बोला—"यूं तो सरासर अन्याय है, अघ है, थारा धर्मम यूं ही कहे है दादी तो यूं ही करो।

"मैं करने जाऊंगी तो तू दूसरे दिन दुकानें छोड़ देगा प्रभू! यदि देखना चाहता है तो बता दे, सवेरे ही तेरा बोरिया बिस्तर बंधवा गांव से धक्के देकर निकलवा दूं। तूने धर्म की बात कही है अच्छा अपने कुल परोहित को दवाना धंम है, चल छोड़ तू गंगा जली उठा मैं सब कुछ छोड़ दूंगी।"

ऐसी छोटी-छोटी बातें पाच्छे कहीं गंगाजली उठाई जाया करे।" तू भी किसी बावली बात करन लगरीस।"

"तो ठीक है प्रभू। मेरी एक और बात सुन लो कल दुकानें खाली हो जायें नही तो..... और कुछ सुनना मैं नहीं चाहती, तुम्हें अपने उस सम्बंधी की बात स्मरण होगी।"

अंधेर ही करना चाहती है तो कर दे दादी। पर यू न्याय नो से भी।"

दूसरे दिन प्रभु चारों दुकानें खाली कर ताली कान्त के हाथ में थमा, साथ ही धमकी दे दुकानें खाली कराने का मुकदमा भी कान्त पर कर दिया।

इस बात को बीते कठिनता से सप्ताह हुआ होगा कि एक और घटना हो गई. कान्त के परदादा का दूसरे गांव में एक बाग था, जो उन्होंने कसाई को गो हत्या न करने की सौगन्ध ले दे दिया था। तभी से वह उन्हीं के पास चल रहा था। परन्तु विमल पैसे दे दिला कर पटवारी से कागजों को बदलवा दिये थे, जिनके अनुसार वह ठेके पर लेता रहा था, और हर वर्ष पैसे देता था। पिछले तीन वर्ष से नहीं दिया, और वह बाग उसके पिता मामा को बेच गये थे, जिन का वह उत्तराधिकारी है। इस कारण वह बाग उसे मिल जाना चाहिये। इस को ले दीनू कसाई कान्त के पास आया था, कान्त के पांव पकड़ बिचारा रो दिया—"दादा थारे राज में ऐसा अन्धेर तो नहीं होना चाहिए।" नब्बे वर्ष के बूढ़े को इस प्रकार पांव पकड़ते देख कान्त के संकोच की थाह नहीं रही। पांव पकड़ने की आवश्यकता नहीं, बात बताईये मुझ से जो हो सकेगा करूंगा।"

"बात के होती दादा। दिल्ली आले भाई ने मुकदमा करा है, बाग मांगे है, थारा दिया है तुम लेलो। पर दादा ! तीन साल के रुपये क्योंकर दूं। तुम धर्म से कह दो, बाग मन्ने नहीं दे गया, मैं इब्बे छोड़ दूंगा।"

तुम शान्त रहो, बड़े भैया को भूल लग गई होगी।"

"न दादा ! भूल कोनि !! मन्ने भी यूही कहा था, बोला मैं उसे अपना बाग समझता हूं, जो कुछ कहना है, कचहरी में कहना ! मैं के बोलता रोता पीटता चला आया।"

"तुम चिन्ता मत करना दीनू काका ! बड़े भैया नहीं मानेंगे, तो मैं

मुकदमा लड़ूंगा !" सहसा मुंह फेर मां को खड़ा देख कान्त पूछ बैठा-मां! बाग वाली क्या बात है तुम्हें पता है ?"

"पता है, दीनू के बाग से बहुत से ग्राम ग्रनार तुम्हारे घर ग्राये हैं, हम लोग जब जाते थे तो इन लोगों की प्रसनता का अन्त नहीं रहता था, दादसरे ने बाग मेरे विवाह से पहले इन्हे दे दिया था।" क्यो दिया जानती नहीं, परन्तु इतना जानती हूं, एक दिन मेरे पीतसरे ने म्हारा बाग कह दिया था, मारे लाठियों के तेरे परदादा ने उनकी टागें तोड़ दी थीं। तीन दिन तक वह खाट से नहीं उठे थे कहने लगे—"हरामजादे दी चीजें म्हारी कहता है। उस दिन के पश्चात इस घर का कोई ग्रादमी कभी किसी दिन भी उस भाग को अपना नहीं कह सका।

"तेरे बेटे जीये दादी ! यू तो हुई न राम लगती बात।

तुम जाग्रो दीनू, मैं देखूंगी, वह भाग कैसे लेता है।"

दोपहर पश्चात दीनू को खिला पिला कान्त पाठशाला चला गया।

परन्तु जिस समय वह लौटा तो स्वयं अपनी टांगों पर चले ग्राने की शक्ति उसमे नहीं थी रक्त से लहू लुहान चार ग्रादमी उसे उठा कर लाये, और वह भी रात्री के एक बजे।

गाँव में किस प्रकार दिन शीघ्र उगता है। उसी प्रकार छिपना भी शीघ्र है, इसी कारण नौ बजे तक जब कान्त नहीं लौटा तोसुखदेई को बदलू को बुला, उसे ढूंढ लाने को कहा, जब वह लोग कान्त को लिए पहुचे तब सुखदेई उपस्थित नहीं थी, वह स्वय घुंघट खीच—कान्त की टोह में निकल पड़ी थी। सुखदेई को न पा बदलू ने एक ग्रादमी उसे भी ढूंढ़ने भेज दिया।

लगभग बीस मिनट पश्चात वह लौटी—कान्त की दशा देख क्रोध से वह तिलमिला उठी बदलू को सम्बोधित कर बोली—"बदलू तूने इस घर का नमकखाया है ना ?

"हां दादी मैं के मना करुं"

नहीं मना करने वाला तू नहीं है, तुझे तेरे दूध की और इस घर के नमक की सौगंध है मेरे बेटे पर हाथ छोड़नेवाला जीवित न रहे"

बदलू ने छाती पर हाथ मार लाठी को एक मरोड़ी दे कहा—"दादी! सात दिनों के भीतर वह नहीं बचेगा, और बचा तो बदलू नहीं रहेगा।"

"अपनी बात स्मरण रखना।"

"बदलू कहीं कुछ भूला स?"

उस दिन सारी रात सुखदेई ने कान्त को गोद में डाल काटी!

तीन चार दिन पश्चात कान्त खाट पर बैठने योग्य हुआ। उस की यह दुर्गत किसने की मां के पूछने पर भी वह बता नहीं पाया। अंधकार में किसी ने पीछे से लाठी मार उसे मूर्छित कर दिया था, इस के अतिरिक्त क्या हुआ इस का ज्ञान उसे स्वयं नहीं था। सम्भवः अपनी ओर से मृत जान वह उसे छोड़ गया। यह बात उसकी दशा मे भी समझी जा सकती थी।

गिरीश कहीं दौरे पर गया हुआ था, पता लगते ही दौड़ा आया मां के पांव छू बोला—"यह सब किस ने किया है मां बता दो मैं उसे जेल में सड़ा-सड़ा कर मार दूंगा तुम से सोगंध खा कर कहता हूं।"

"मैं यदि जान पाती गिरीश तो वह अब तक जीवित नहीं रहता।

किरण सुखदेई के पांव छू, कान्त के पास जा बैठी—"कान्त भैया यह सब कैसे हुआ।"

"कैसे हुआ की तो बात दूर रही किरन मैं तो यह भी नहीं जानता, किसने किया।"

"तुम्हारा क्या कोई शत्रु है ?"

किरण की बात सुन कान्त हंस दिया – "मैं किसी का शत्रु नहीं हूं। किरण इसी कारण मेरे शत्रु होने स्वभाविक ही हुए।"

कान्त के स्वर में दुख का भास पा किरण ने बात पलट दी।" क्या बात है कान्त भाई ! इतनी बार आई हूं, सुचित्रा को नहीं देखा " दीर्घ निश्वास छोड़ कान्त बोला—"वह क्यों आने लगी।"

किरण के अनुरोध से कान्त ने बीती घटना सुना दी।

सिर झटक किरण ने कहा—"तुम दोनों ही पागल हो मैं कल जाकर लिवाए लाती हूं।" और फिर वह इधर उधर की बात करने लगी तभी मां के साथ गिरीश भी आ पहुंचा। भीतर घुसते ही बोला—"क्यों बे रुस्तम ? यह सिर कहां फुड़वा लिया ?"

हंस कर कान्त ने कहा —"तेरे अतिरिक्त भी तो गधे बसते हैं।

"अबे क्यों मरने को फिरता है ?" पास बैठते हुए गिरीश ने कहा।

"भाग बे अभी तेरे जैसे को उल्लू बना सकता हूं।"

"सुन लिया किरण ? गिरीश सक्सेना बाजीगर है। सम्भवत; तुझे पता नहीं पूरे चार साल दिल्ली में इसने जामा मस्जिद पर मजमा लगाया है वहां चूरन बेचता था।"

किरण ने पति को झिड़क कर कहा गिरीश तुम............ परन्तु अभी उस की बात पूरी भी न हो पाई थी कि सुखदेई बोल पड़ी—"पति का नाम नहीं लेते बहू।"

कान्त ने हांक लगाई—"हां मां तुम ने ठीक ही कहा है रात में देखने वाले पक्षी का नाम नहीं लेते, अशुभ होता है।"

किरण बोली—"भूल हुई मां, परन्तु इन को मना कर दो। यह बोलेंगे तो कान्त भैया चुप नहीं रहेंगे। रोगी को बोलना नहीं

चाहिये कान्त भाई !" अन्तिम बात किरण ने कान्त से कही थी ।

उन लोगों की बात चीत चल रही थी कि बदलू आ पहुंचा । आते ही बोला – "दादी यू काम हरदेवा जाट और जय नारायण बामन का है । वह चुलकाने भाग गए हैं । हम वहीं जा रहे हैं ।"

सुखदेई ने उत्तर दिया—"अच्छा ना जाओ ।"

"सुखदेई के कंठ स्वर से पास के तीनों ही कांप गये ।

कान्त बोला – "बात क्या है मां !"

"तुझ पर हाथ छोड़ने वाला जीवित नहीं रह सकता । कान्त यह तेरी मां की सौगन्ध है. इस बीच कुछ भी कहने की आवश्यकता तुम लोगों को नहीं है ।"

"पर मां, इस से तुम्हें कचहरी.. ....नहीं नहीं मां जीते जी मैं यह सब नहीं होने दूंगा ।" खाट पर से उतरते हुए कान्त बोला ।

"तो मरने पर सही । एक बात भली प्रकार समझ ले कान्त तेरी मां को हठ से डिगाने वाला अभी तक कोई नहीं जन्मा ।"

बदलू ने सुखदेई की बात में हां मिलाई—"दादा, आज ताईं थारा नमक खाया है म्हारे होते दादी कचहरी में क्यू कर चली जागी ? थारे घर की तरफ कोई आंख उठावे तो धिक्कार है म्हारे जीने पर ।"

"तू जा बदलू !" दूसरे किसी को बात का उत्तर दिए बिना सुखदेई बदलू से ही बोली

"अच्छा दादी !" कह बदलू चला गया ।

"तुम्हारे पांव पड़ता हूं मां अपने बेटे के कारण अपनी हठ छोड़ दो कान्त ने विनीत स्वरमें कहा ।

"किसी भी कारण नहीं छोड़ सकती। मेरे दादसरे के घर की ओर कोई आँख उठा कर देखने का साहस उन लोगों का पड़ा कैसे ?

"मां समय बहुत बदल गया है ? उस समय में और आज के समय में बड़ा अन्तर है ।"

समय से मेरा कोई सम्बंध नहीं है कान्त ? मैं उस समय की पत्नी हूँ. वही जानती हूँ, तुम लोगों की भांति चोट खा कर कचहरी का द्वार खटखटाने वाली कायर मैं नहीं हूँ। मेरे मरने पर तुम लोग जैसे चाहो करना। परन्तु मेरे जीवित रहते मेरी बात चलेगी तेरी नहीं।"

कान्त का कण्ठ आरुद्ध होगया—"यह तो तुम्हारा अन्याय है मां

और एक बात तुझे बताए देती हूँ, कई बार सोचा कह दूं, समझती थी तू स्वय ही समझ जायेगा, परन्तु देखती हूँ, कहे बिना तू समझेगा नहीं, तू जो यह बात बात में लड़कियों की भांति आंख भर लाता है यह मैं नहीं सह सकती ! आज के पश्चात तेरी आंखों में पानी की एक भी बूंद नहीं देखना चाहती—उस का भी कारण है अब तक तुझ पर निर्भर कर बहुत दिन चुप बैठी रही हूँ, अब मुझे, उस हरामजादे को भी राह पर लाना होगा, पहले समझाए देती हूँ फिर कभी मुझे दोष दे। मेरे सारे मुकदमे तूने बिगाड़ कर रख दिए हैं।

"मैंने कैसे बिगाड़ दिये मां !" तनिक समझा दो !

"मुझ से तू डरता है ! तेरे मामा को फुसला लिया कि तेरे मामा ने जायदाद खरीदी थी और वह उस पाजी को मामा से मिली है तथा कानूनगो को पैसे दे बटवारे का दावा ठीक किया और तूने मुझे सूचना तक नहीं दी—देता कैसे ? तू स्वयं उस में सम्मिलित था तूने सोचा होगा. भैया को आधी सम्पत्ति दे झगड़ा चुक जायगा। परन्तु मुझे मारे बिना वह यहां की एक ईंट भी नहीं ले पायेगा। भला ही न्यायालय उस के पक्ष में निर्णय दे दे, न्यायालय के निर्णय से पहले वह जीवित नहीं रहेगा, उस ने अपने आप को समझा क्या है।

मारे आश्चर्य के कारण एक शब्द भी बोल नहीं पाया, जिस बात को वह पूरे तीन साल से छुपाये बैठा था, वह मां कैसे—जान गई, तीसरा कोई इस की बावत जानता भी नहीं था, श्रद्धा से नत हो बोला" यदि जान पाता कि तुम अन्तर्यामी भी हो मां, तो यह धृष्टता कभी नहीं करता, पर मां इस बात के मध्य भैया कहां से आ गए, जो व्यर्थ में उन पर क्रोध कर रही हो।

"तू मुझे पागल मत बना, बनियों की पीठ पर कौन है ? यह लोग एक दिन भी बोलने वाले नहीं थे, फिर यह सब करने करवाने का साहस उन में नहीं, वह इस घर के लोगों को भली प्रकार जानते हैं, रही यह बात पत्रादि बदलवाने का पता मुझे क्यों कर चला सो वह जान गई साधारण बुद्धि से, तेरे पिता की दी हुई सम्पति तेरे मामा के नाम बिकी न दिखाये बिना बाग बिका नहीं दिखाया जा सकता, और फिर सम्पति बिना बिक्री दिखाए, बटवारे की हांक नहीं लगाई जा सकती।"

गिरीश बहुत समय से बदलू को मार पीट करने के लिये भेजने वाली बात को ले कहना चाहरहा थाअवकाश पा बोला..."नियम अपने हाथ में लेना ..

"जुर्म है, यही न ! फिर क्या हुआ, तुम्हारा नियम क्या यह नहीं देखता किस ने नियम हाथ में लेने को वाध्य किया।"

"परन्तु मां..."गिरीश ने फिर कहना चाहा—

"रहने दो भाई ! तुम लोगों की भाषा मे नही पढ़ी न ही मुझ रुचेगी भी, पढ़ना भी नहीं चाहती, केवल इतना चाहती हूं, पति के कुल की मर्यादा की रक्षा का भार जब मेरे कन्धों पर आ रहा है तो उसे निभाना, निभाये बिना मेरी मुक्ति नहीं होगी कहते कहते सुखदेई का कण्ठ कुछ भारी हो गया।

तत्क्षण गिरीश बोला—"मां दो तीन घन्टों में आऊंगा।" उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना तुरन्त उठ कर चला गया। बाहर उस की मोटर स्टार्ट होने की ध्वनि भीतर सुनाई पड़ी।

मुखदेई कुछ बोली नहीं केवल किरण के सिर पर हाथ रखे खड़ी सोचती रही कान्त एकटक मां की ओर देखता रहा। उस समय मां उसे रणचन्डी के रूप में दिखाई पड़ी। जिस की चिरपिपासा एक बार जागृत होने पर बुझती नहीं। उस तृष्णा को शान्त करने में किस किस के रक्त ने योग दिया वह आत्मीय—स्वजनों, पति—पुत्रों चाहे किसी का भी चाहे क्यों न हो, यह ठीक है, कि उस की वह पिपासा साधारणतया जागती नहीं। परन्तु जागने पर तो उस विकाल रूप की कल्पना भी नहीं की जा सकती। उस मां को पा अपने को धन्य समझा जा सकता है। वन्दना की जा सकती है, परन्तु उस के क्रोध की लपटों से अपने को दूर रखना आवश्यक है, अन्यथा तो न जाने कब जाने अनजाने में वह उस की लपेट में आ जाये। उस के कारण कम कष्टों का भोग भी नहीं करना पड़ता।

हर देवा और जय नारायण को ढेर कर देने का समाचार तीसरे दिन कान्त को मिला, ठीक मे स्वस्थ न होने पर भी उसने जाकर बदलू इत्यादि की जमानत लेने की चेष्टा को परन्तु पांचों में से किसी को भी न छुड़ा सका, चारों बेटों सहित हवालात में बन्द प्रसन्नचित दिखाई पड़ता था। दुखी स्वर में कान्त बोला"बदलू बात क्या हुई।"

बात बचा बदलू बोला-"कौन दादा। तुम ने क्यों कर बेरा पाटा।"

"बात क्या थी भाई?"

"बात के होती म्हारा अनाज चुरा कर भाग गये थे हमने जा लिया, वह लोग दस थे हम पै हल्ला कर दिया। अब तुम जानो दो हाथ म्हारे भी हैं, और फिर मरा तो नहीं जाता, मारते न तो के करते?

बदलू से बात चीत कर गिरीश के द्वारा जमानत लेने कान्त करनाल चला गया। गिरीश ने उसे समझाया, उस दिन वह मोठर ले कर इसी कारण गया था कि मां को इस काम में न घसीटा जाये और बदलू इत्यादि का बचाओ भी हो जाये, उस में कान्त और मां का कोई दखलन हो, चोरी का माल वहां से निकले, और सिद्ध हो जाय कि उसने अपने बचाओ के लिए किया था, वह लोग अनायास ही मर गए, उन का कोई ऐसा उद्देश नहीं था। मित्र की बात सुन कान्त रुष्ट हो गया बोला, देखो गिरीश यह अन्याय है, इस बार तो तुम ने कर दिया, और किसी दिन यदि तुमने कहीं तनिक सा भी पक्ष पात किया तो तुम्हारा मुंह तो देखूंगा ही नहीं, इस के साथ यह सब विमल को सौंप अज्ञात वास ले लूंगा इस में तुम कोई भी संशय नहीं समझना।

"अच्छा आज तो ठहरेगा ना ?" बात पलटने के अभिप्राय से गिरीश ने कहा।

नहीं आज अब नहीं ठहर सकूंगा। अच्छा कह मित्र से विदा ले कान्त घर लौट आया।

मां के पास पहुंच सुचित्रा को बैठी देख कान्त मुंह घुमा बाहर जाने लगा—उसे रोक सुखदेई बोली—"ठहर क्या बात है कान्त, कहां चला ? आ बैठ जा।"

"रहने दो मां यह मेरा मुंह नहीं देखना चाहते।" सुचित्रा ने सिर झुकाए झुकाए कहा।

सुचित्रा की ओर देख उस के मुख पर पश्चाताप के भाव पढ़ कान्त ठहर गया—बोला झूठ क्यों बोलती हो सची ! मूंह तो तुम मेरा देखना नहीं चाहती थी, मैं नहीं।"

सुचित्रा ने कान्त से कुछ नहीं कहा—"इन्हें मना कर लो मां मुझ से उलझे नहीं। और फिर मां यदि मैंने क्रोध में बक दिया था तो क्या गर्दन पकड़ दो थप्पड़ मार समझा नहीं सकते थे, एक बार क्या आकर मिलना भी पाप हो गया था। कह देते देखता हूं तू मेरा मुंह कैसे नहीं देखती। आवेश में आ कर सुचित्रा कह तो गई परन्तु अपनी बात से स्वयं ही लजा गई।

उस की बात सुन सुखदेई हंस दी—"तू नहीं जानती बेटी ! मेरा यह लड़का नहीं है लड़की है।"

"मां बस तुम भी........." कह कान्त जाने लगा उसे सम्बोधित कर सुखदेई बोली—"कान्त बाहर बैठक में सुचित्रा के बाबू जी बैठे हैं तू जा कर उन के पास बैठ।"

अच्छा बाबू जी भी आये हैं। "कह उत्साहित मन से कान्त बैठक में जा पहुंचा—दयाल बाबू के पांव छू बोला—"आज सुध ली है बेटे की बाबू जी !"

"आना तो बहुत बार चाहा, परन्तु सची ने आने नहीं दिया, कह देती—नही बाबू जी जब वह नहीं आ सकते तो हम भी नही जाएंगे। मैं कहता तो क्या हुआ बेटी तूने उसे रुलाया है, मैं मना लाता हूं। "छी! बाबू जी!! लड़की के कारण आप अपमान करायेंगे। ऐसा कदापि नहीं होने दूंगी !" बहुत समझाया, बेटी इस में मान अपमान नही होता। कहती केवल अपने मन से ही अपना समझ बैठे हो वह भी समझते हैं। एक बार आपके पास या मां के पास भी क्या नहीं आ सकते थे, मैं बोला—"अच्छा ! मैं एक बार जाकर मिल आऊं।" बस फिर क्या था बिगड़ उठी बोली—"तुम्हें लड़की से हाथ धोने है तो चले जाओ तुम तो जानते हो बेटा ! वह कितनी हट्टी है। फिर आने का साहस मेरा नहीं पड़ा, यह तो भला हो उस लड़की का क्या नाम है उसका.........भला सा नाम है.. कह चुटकी बजाते किरण का नाम स्मरण करने की चेष्टा दयाल बाबू करने लगे। उन्हे मुश्किल दिखाई कान्त ने नाम बता कर। अपनी बात पुनः प्रारम्भ करते हुए बोले—"हां,हां किरण ! उसने सची का भेजा ठिकाने लगा दिया।

उन्हें गांव जाने से रोकती थी आज जाकर देखो सचि वही गांव उन्होने स्वर्ग बना दिया है, लोग देवता समझ पूजा करते है, फिर तुम्हारे चोट लगने की बात भी बताई चट से सची बोली, ऐसी ही पूजा होती है किरण जी। किरण बोली—"नहीं री दो चार राक्षस हैं वह भी राह पर आजाएंगे फिर उसने तुम्हारी पाठशाला, तुम्हारी दुकानें और साथ ही तुम्हारी बात भी बताई, सच जानना बेटा ! विस्मय पे मेरी तो आंखे फटी की फटी रह गई।

दयाल बाबू को बात करने का चस्का है, यह कान्त जानता था, दिन भर बैठे बातें करते रहने पर भी वह थकते नही, इसी कारण बात बदल बोला—"अच्छा बाबू जी ! मै पानी ले आता हूँ आप मुंह हाथ धो लीजीए फिर कुछ जलपान कर पाठशाला चलेंगे उसके पश्चात मन्दिर में दर्शन कर भोजन करेंगे।

दयाल बाबू ने कहा, वह तो सब फिर होता रहेगा पहले तू एक बार अपना मां को मेरे पास भेज दे।

मा को दयाल बाबू ने किस कारण बुलाया यह समझते कान्त को समय नही लगा।

बिना कुछ कहे कान्त मां को बुला लाया।

सुखदेई से यू ही दयाल बाबू ने बात छेड़ी त्यों ही सुखदेई बोली "ठीक है सम्बंधी जी ! आप लड़के के हाथ में रुपया दे दीजिए बात पक्की हो गई।"

मां के सब काम विचित्र होते है, कान्त तो यह जानता था परन्तु दयाल बाबू के लिए यह नई बात थी मारे बोखलाहट के दयाल बाबू हकलाने लगे-"मेरा...भी...मेरा तात्पर्य है—"

घूंघट से बाहर भी सुखदेई की हंसी सुनाई पड़ी—"सम्बंधी जी। आप भी यूं ही हैं, अपने मन की बात मैंने बिना किसी लाग लपेट के कह दी तो क्या इसी मे आप घबरा गए—"कान्त के हाथ में रुपया दे दीजिए आप से अधिक कोई दूसरा नहीं जानता कि इस घर का दिया हुआ वचन कभी नहीं टूटता।"

इस बार दायल बाबू भी खिलखिला कर हंस दिये—"जानता हूँ समन्धन जी ! सब जानता हूं ! जब उस छोकरी ने तुम्हारे तेज की बात कही तो मैं समझा लड़के वालों को धमका कर रखती होगी। इसी

से कह रही है कि उन के सामने ! बाप रे बाप ! एक भी शब्द मुंह से निकालने का साहस नहीं पड़ता । परन्तु देखता हूं मुझ बूढ़े का भी मुख सुखा दिया आपने ।"

"रहने दो, सम्बंधन की प्रसंसा कर क्या घर में डाल लेना चाहते हो । इतने ही तेज वाली तुम्हारी सम्बन्धन होती तो तुम्हारे मित्र दूध की मक्खी की भांति निकाल कर फेंक नहीं देते ।"

मां को अप्रिय हंसी करते देख कान्त बाहर निकल गया । दयाल बाबू इसे बीच में ही रोकना चाहते थे परन्तु दूसरे क्षण ही मित्र पर लगाए गए आरोप के कारण वे दुखी हो उठे, बोले-"देखिये जयपाल इत्यादि...उन्हें बीच में ही रोक सुखदेई हंसते हुए बोली—"रहने दीजिये मित्र का पक्ष ले फिर किसी दिन वार्तालाप कर लीजियेगा अभी तो आप कान्त के साथ जा स्नान आदि से निवृत हो घूम फिर आईये ! मैं कान्त को भेजती हूं ।"

सुचित्रा कान्त की मां से अत्यधिक प्रभावित हुई थी, इतने समय पश्चात कान्त से मिल पाने के कारण वह अपनी प्रसन्नता छुपा नहीं पाई—सध्या को मन्दिर इत्यादि से लौट भोजन से निवृत हो सुखदेई ने सुचित्रा को अपने पास बैठा लिया, उस के गम्भीर मुख की ओर देख सुचित्रा एक प्रकार से भयभीत हो उठी, गम्भीर आज्ञा देने के स्वर में सुखदेई ने कहा—"देख बेटी तू पढ़ी लिखी है, तुझे अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नही है, केवल एक बात समझ लेना इस घर की चौखट पर पांव रखते ही, इस घर की आबरू तुम्हारी आबरू हो जाती है, कभी किसी दिन इस कुल की मर्यादा पर बट्टा नहीं लग पाए । अपनी छोटी बहू से यही आशा मैं रखती हूं, एक बार अपनी बुड्ढी सास का अनादर कर दोगी तो एक शब्द भी वह नहीं कहेगी, परन्तु इस घर की आन पर यदि तुम्हारे कारण तनिक

सी भी आंच आई तो समझ लेना, जिन हाथों से तुम्हारा डोला लाऊंगी उन्हीं हाथों मे लौटा भी दूंगी। मेरी यह बात गांठ बांध लेना।"

दो चार क्षण आश्चर्य चकित हो सुखदेई के मुख की ओर देखती सुचित्रा शान्त बनी रही—सहसा बोली—"अच्छा मां एक बात पूछूं, तुम बुरा नहीं मान सकोगी पहले ही बताए देती हूं ! इस प्रकार कुल मर्यादा के नाम पर समस्त जीवन भस्म कर देना क्या युक्ति संगत है।"

"सुखदेई ने एक पैनी दृष्टि सुचित्रा के मुख पर डाली, बोली "जीवन भस्म कर देने की बात नहीं होती ! कुल मर्यादा की रक्षा से वह भस्म होता भी नहीं। केवल वह तो जीवन को संयोजित—करने का आधार है।"

"बड़ों की आज्ञा पालन करना इस कुल की मर्यादा रही है उसी कारण चाचा जी ने आप को छोड़ दिया, एक ही नहीं अपितु पांच—पांच जीवन नष्ट हो रहे हैं, चाचा जी यदि उस समय इस ओर एक बार गम्भीरता से विचार करते तो क्या इतने अन्याय की बात वह कर पाते।"

"ठीक है कभी ऐसी असंगत बातें मिथ्या आडम्बर बन कर रह जाती हैं, पांच व्यक्तियों के दुख की बात तुमने कही है, उन लोगों के दुख का कारण तेरे चाचा जी का कृत्य नहीं है, उन के पीछे है मान—दम्भ घृणा—प्रतिकार, अथवा अनाधिकार चेष्टा ! मेरे छोड़ देने की बात एक क्षण को छोड़ दो तो देखोगी, इन्हीं कारणों से सगे भाई आपस में लड़ बैठते हैं, जिन का स्वभाव ही ऐसा हो वह तो किसी भी कारण एवं अकारण ही उलझ पड़ेंगे।"

"यह बात न सही परन्तु वह जो भोजन न करने पर एक को मार डालने की बात थी वह भी क्या अन्याय नहीं था।"

"नहीं उसे अन्याय नहीं कहा जा सकता, किसी को, किसी भी अवस्था में दूसरे का अपमान करने का अधिकार नहीं होता।"

परन्तु मां ! भोजन न करना अपमान नहीं है।"

"अपमान किसी कार्य में नहीं होता, होता है उस के पीछे छिपी भावना में, अपने पिता की बात ले देखो। यदि वह आज मेरे यहां भोजन करना भी चाहते तो मैं करने नहीं देती, कारण कि यह कर, उनकी मर्यादा भंग कर उनका अपमान करना होता, इसी कारण कि बाहर से उन के भोजन का प्रबंध कराया गया है। मान लो मेरी तुम्हारी शत्रुता है, मैं तुम्हारे घर का अन्न जल ग्रहण नहीं कर सकती, फिर क्या यह आवश्यक है कि मैं तुम्हारे घर जाऊं ही, जाना और फिर न खाना तो उसे सुझा देना है कि वह तुम्हें घृणा करता है, इस मे बड़ा अपमान दूसरा नहीं हो सकता।"

"परन्तु इस प्रकार नियम..."

"अपने हाथों में लेना अन्याय है। यही तुम कहना चाहती हो। परन्तु किसी की भी शरण में जाना तो दुर्बलता है, बल्कि कायरता है।"

"परन्तु इस प्रकार यदि प्रत्येक अपने मतानुसार न्याय अन्याय की परख करने लग जायें तो मार काट की सीमा नहीं रह जायेगी।"

"जिन लोगों में साहस होता है, वह अन्याय नहीं कर पाते, जो अन्याय करते हैं उन में साहस शेष नहीं रह जाता, उद्दंडता रह सकती है, नीचता भी आ जाने की सम्भावना रहती है।"

"तुम से तर्क नहीं कर रही मां। परन्तु इस प्रकार क्या सामाजिक व्यवस्था खंड खंड न हो जायेगी।"

"इसी भय से तुम लोगों का न्याय तक पहुंचने का मन करता है, चल छोड़ इन बातों को परसों मैं तुम्हारे यहां आ रही हूं, शीघ्र ही तुझे इस घर में ले आऊंगी फिर देखना कैसे तू इसी मर्यादा को मान कर चलती है।"

सुखदेई की बात सुन सुचित्रा ने लज्जा से सिर झुका लिया—बिजली के प्रकाश में भी उसकी लालिमा सुखदेई की पकड़ाई में आ गई बोली—"अरे तो इस में लजाने की क्या बात है, तुझे तो इस घर का भार सौंप मैं भी कहीं तीर्थ करने निकल जाऊंगी।"

"नहीं मां भार उठायेगी जीजी मैं नहीं। बड़ी के होते हुए छोटी आंचल में तलियां बांध कर घूमे, ऐसा भी कहीं हुआ है।"

स्नेह से सुखदेई ने सुचित्रा का ललाट चूम लिया, यही तो इस चौखट का प्रभाव है।" कह सुखदेई अपने लड़के और बहू की बात सोच दीर्घ निश्वास छोड़ बैठी।

तीसरे दिन सुखदेई जा कर सुचित्रा की गोद भर आई! सगाई और विवाह की तिथि निश्चित कर सुखदेई ने एक प्रकार से मुक्ति की श्वास ले कहा—"चलो यह भी काम हो गया।"

पाठशाला को विश्वविद्यालय के रूप में सरकार से मान्यता दे दी गई थी परन्तु सब से बड़ी अड़चन थी पाठशाला के नियमों में परिवर्तन करना जिस से कान्त किसी प्रकार भी सहमत न हो सका, पाठशाला में प्रवेश की सर्वप्रथम नियम था कि विद्यार्थी पाठशाला के होटल में रहेगा, और पाठशाला से बाहर की बनी हुई किसी वस्तु का प्रयोग नहीं करेगा। इस नियम का सब से बड़ा लाभ यह था कि पाठशाला एक प्रकार से आत्म निर्भर थी, अपने उत्पादन क्रम के लिये भी वह बाहरी बाज़ार पर निर्भर न थी, केवल शेष बची वस्तुएें ही बाहर भेजी जाती थीं, कान्त जानता था एक बार पाठशाला के इन नियमों को तोड़ा गया तो जिस अभिप्रय से उस ने पाठशाला खोली थी वह समाप्त हो जायगी।

सरकार से मान्य होने पर केवल इतना ही लाभ था कि पाठशाला से परीक्षा में उत्तीर्णन हो विद्यार्थी सरकारी नौकरी पा सकेंगे, परन्तु यह लाभ इतना नहीं था जिसके कारण इतने महान उद्देश्य को समाप्त कर दिया जाये। इसी कारण मान्यता पत्र आने के पश्चात उसने प्रबन्धकों शिक्षकों अथवा विद्यार्थियों को यह परामर्श स्पष्ट कर देना चाहिए था। बैठकों में उसने स्पष्ट कह दिया कि वह किसी भी प्रकार यह मान्यता स्वीकार करने को तत्पर नहीं। प्रश्न केवल विद्यार्थियों के भविष्य का है, वह भी कोई कठिन बात नहीं है, पाठशाला से जो आय विद्यार्थियों को होती है, उस का पचहत्तर प्रतिशत उस के नाम जमा होता रहेगा उसे मिलेगा नहीं, विद्यालय से जाते समय उस के व्यवसाय अनुसार आवश्यक यंत्र अथवा शेष धन पूंजी के रूप में दे दिया जायेगा, अभी

तक पाठशाला से प्रथम ग्रुप भी परीक्षा पास कर नहीं गया था, इसी कारण हो सकता है कुछ कठिनाइयां उपस्थित हों, उस ने अपनी एक और इच्छा भी प्रकट की कि वह चाहता कि अपने अपने गांव में जाकर उसके विद्यार्थी ऐसी पाठशालाओं का निर्माण कर अपने अपने गांव को आदर्श एवं स्मृद्धि बनाने की चेष्टा करें।

पिछले पांच वर्षों में पाठशाला जिस स्थान पर जा पहुंची थी उसके कारण जहां उसे प्रोत्साहन मिला वहां बड़े बड़े व्यापारियों की जलन भी कम नहीं मिली थी पाठशाला की वस्तुए इन पांच वर्षों में लोक प्रिय हो चली थी। पाठशाला द्वारा देश में क्रान्ति का बीजारोपण करने का आरोप लगा कुछ लोगों ने प्रयत्न कर कान्त को ४२ की क्रांति में जेल भी भिजवा दिया था, परन्तु इन सब की चिंता न कर जब वह छूट कर आया दूने वेग से वह बढ़ चली, तब उन लोगों के क्रोध की थाह नहीं रही। अन्त में व्यापारियों ने वहां गांव में ही कारखाने खोल उस से सस्ते मूल्य पर वस्तुएँ बेचने की योजना बना डाली, साथ ही यह भी निश्चय उन्होंने किया कि उस पाठशाला से सफल एक भी विद्यार्थी को वे अपने यहां स्थान नहीं देंगे।

कान्त अपनी बात चीत में इसका भी उल्लेख कर विद्यार्थियों को स्पष्ट समझा दिया कि प्रथम तो प्रत्येक विद्यार्थी दस पांच वर्षों की अवधि में अपने बीस वर्ष की जीविका उपार्जित कर निकलेगा, और फिर जिन साधारण लोगों के जूते पर व्यापारी धन एकत्रित कर इस प्रकार अपनी इच्छा ठूंसने का उपक्रम कर सकते हैं, उसी जन साधारण के आधार पर पाठशाला निर्भीक हो अपने पांव पर खड़ी हो सकती है, न सही नौकरी, दूसरों पर अवलम्बित न हो इस पाठशाला का प्रत्येक विद्यार्थी अपने पांव पर खड़ा हो सकेगा; पच्चीस हजार विद्यार्थी यदि एक दूसरे का सहयोग दे अपनी आवश्यकताए पूरी करते रहें तो जीविका का प्रश्न ही नहीं रहता, इस प्रकार प्रति वर्ष हजारों विद्यार्थी निकलते

रहने पर हर वर्ष पाठशाला के सहयोगियों का वृत दिन पर दिन बढ़ा जाएगा। अन्य स्थानों पर ऐसी पाठशालाओं को पाठशाला की ओर से आर्थिक सहायता देने का भी विश्वास उसने दिलाया।

पाठशाला के साथ ही गांव की समस्या भी उस के सम्मुख थी यह ठीक है इन पांच वर्षों में उस ने गांव का एक प्रकार से पुन: निर्माण कर दिया था। पाठशाला के लिए गांव जितनी भूमि सरलता से दे सकता था वह सब दी जा चुकी थी, अब और एक भी बीघा देने का अर्थ होता गांव के आर्थिक ढांचे को बिगाड़ना, गांव में भी आत्म निभर का साधारण नियम लागू था। अपनी आवश्यना स्वयं पूरी करो बाहर की वस्तुएं क्रय कर गांव का धन बाहर मत भेजो आवश्कता से अधिक ही नगरों में जाना नहीं चाहिए जिस से गांव दिन पर दिन धनी हो सके। आरम्भ की सारी कठिनाईयों, आपसी मन भेद, लड़ाई झगड़े लगभग समाप्त हो चुके थे परन्तु तब ही सब से बड़ी जटिल समस्या उस के सम्मुख आ उपस्थित हुई वह उसे सुलझा नहीं पा रहा था, धन के लोभ ने गांव वालों को पर्णतया छोड़ा नही था, इसी कारण वह कारखानों के लिये भूमि बेचने को प्रस्तुत हो गए थे, इसी को ले नित्य प्रति सिर फुटा फुटाई होती थी, वैमनस्य दिन पर दिन बढ़ता जा रहा था उधर उस के व्यक्तिगत जीवन की उलझने भी कम नहीं थीं। बनियों के नित्य प्रति के षड़यंत्र, दीना का मुकदमा भी जटिल होता जा रहा था, उधर विमल ने उस पर दो नहीं चार चार मुकदमे चला रखे थे, पुजारी को मिला मारने की धमकी दे गांव से बल पूर्वक निकाल देने का भी एक था, इन सब से कान्त को विशेष अनुराग नहीं था। साथ ही बदलू को बचाना उसका प्रथम कर्तव्य था, यह ठीक है गिरीश ने उसे आवश्यकता से अधिक सुलझा दिया था तो भी उसे एक दो वर्ष का दंड अनिवार्य दिखाई पड़ता था—इन सब बातों के बीच घिरा हुआ होने के कारण कान्त ने मां से विवाह सम्बन्ध स्थिर में तनिक और

ठहर जाने को कहा, सुखदेई मान भी गई और अपने आशय से उसने दयाल बाबू को भी सूचित कर दिया।

इन सब बातों के बीच दैवी क्रोध आ उपस्थित हुआ, यमुना अपना प्रचंड रूप धारण कर उस गांव को भी दृष्टि भर देख लेने के लिए आ उपस्थित हुई, खेती बाड़ी के नाश के साथ जन हानि भी कम नहीं हुई, परन्तु वास्तविक कठिनाई उपस्थित हुई बाढ़ के पश्चात, सारे गांव भर में अनाज का दाना भी न बचा, गांव की स्तिथि देख, पाठशाला के लिए वर्ष भर जुटाये अनाज को ३,४ गांव वालों में बांट देने का निश्चय कान्त ने कर लिया गांव के बनियों के लिये इससे बड़ा अवसर और क्या हो सकता था, बहार से अनाज मंगा दूने दामों पर बेचने की उन की योजना थी, आस पास के सभी गांवों की दशा शोचनीय थी, वह लोग भी अपनी समस्त आशा कान्त की पाठशाला पर केन्द्रित किये हुए थे।

प्रत्येक व्यक्ति को सप्ताह भर का अनाज देने का आदेश दे कान्त कहीं बाहर से अनाज का प्रबन्ध करने के लिए चला गया, बड़ी कठिनाई से दुगने तिगने दर पर उसे पांच गाड़ियां मिलीं, उन से केवल महीना भर बड़ी कठिनाई से निकलने की आशा थी, एक प्रकार से खीझा हुआ वह लौटा था कि आते ही उसे ज्ञात हुआ कि पांच दिन में दो महीने का अनाज समाप्त हो गया।

"इस प्रकार तो महीना भर भी पाठशाला का अनाज नहीं चल सकेगा।"

विद्यार्थी ने उत्तर दिया "कैसे चलेगा कान्त भैया ! प्रत्येक चाहत है कि वह अनाज के कोठे भर ले। मना करने पर लोग मरने मारने को तैयार हो जाते हैं, करें तो क्या करें ?"

"अच्छा अब से अनाज बांटना बन्द कर दो।"

सायं तक यह सूचना गांव भर में फैल गई, झुंड के झुंड लोग कान्त के पास जाने आरम्भ हो गए—कोई कहता—"तू के हम ने भूखा मारना चाहता है।"

कान्त उत्तर देता—"मैं नहीं चाहता, चाहते हैं आप लोग! आप लोगों से कहा था कि सप्ताह भर का अनाज ही लो परन्तु आपने लिया दो दो महीने का।"

"दो मुट्ठी धना ले लिया तो के हो गया!

कान्त ने शांत स्वर में उत्तर दिया—"देखिये आप लोगों को सुविधा के लिए मैंने ऐसा किया था, आप ही सोचिए यदि आप लोग इस प्रकार करें तो कल भूखे मरेंगे।"

उसी वृद्ध ने फिर कहा-"अरे तो के हुआ रोटी तो घनी खान नही लग गये उतनी ही खावें, क्यों भाईयो मैं के झूठ कहन लाग रहा सूं!"

आवेश में कान्त ने उत्तर दिया—"अधिक कोई नहीं खाता परन्तु जोड़ कर तो रखता है, मैंने चाहा था, इस समय आप लोगों की हानि है आप से पैसे न लूं, परन्तु देखता हूँ औरों की चिन्ता किये बिना आप अपने कोठे भर रहे हैं, यहां कितने ही ऐसे हैं जिन के पास वर्ष भर का अनाज बच रहा था परन्तु फिर भी पांच पांच आदमी भेज कर आप लोगों ने अनाज ले लिया।"

"वृद्ध ने फिर कहा—"तो के हो गया भाई यूं ही हुआ करे। इस में क्रोध करने की के बात होगी।"

कान्त का क्रोध चढ़ आया—"होता है इस कारण कि आप लोग अपना ही पेट देखते हैं, ऐसा ही तो बनियों के पास पच्चीस रुपए मन क्यों नहीं लिया—स्मरण रखिए। जब तक वह अनाज लौट कर नहीं आता, किसी को एक दाना भी नहीं मिलेगा और अब से अनाज मूल्य पर मिलेगा।"

उस में कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्होंने कान्न की बात मान ली थी आठ दस दिन का अनाज पास में होने के कारण अनाज नहीं लिया था, उन में से एक बोला-"दादा ! म्हारा के होगा म्हारे ने कसम ले लो जो एक दाना भी लिया हो।

यह वह लोग थे जो कान्त के अन्धे भक्त थे, कान्त जानता था कि उस की बात मान उन्होंने अनाज नहीं लिया होगा परन्तु उस समय क्रोध से वह फुका जा रहा था—बोला—"तो मुझे क्या कह रहे हो—कहो इन से जिन्होंने यह सब करवाया है।"

मनुष्य में एक सात्विक क्रोध रहता है, जिसके कारण वह अन्याय नहीं सह पाता, मनुष्य उस क्रोध में चीखता चिल्लाता नहीं, लड़ता नहीं, उस के विपरीत एक प्रकार की हट पकड़ वह उस अन्याय को भूल अपनी सहन शक्ति का परिचय देता है, अन्याई से केवल इतना भर कह देता है, देखो तुम्हारे कारण मेरी दुर्दशा हो रही है, फिर भी मैं इसे सह लूंगा, परन्तु यह मेरी कायरता के कारण नहीं है, है केवल हमारी उदारता।"

ठीक उसी प्रकार की भावना उन लोगों ने व्यक्त की "देख लिया हरखू चौधरी थारी खातिर हम ने भुगतना पड़ा।"

हरखू उसी वृद्ध का नाम था बोला—"राहन दे म्हारी खातिर क्यों ? मन्ने के तुम से मना करा था ?"

"तू मना क्यों करन लागा, आड़े ते अनाज ले नन्ने तो बनिया के घर भरने थे।"

हरखू ने बिगड कर कहा—"कूनसा बेच दिया।"

"राहन दे चौधरी। पत्ते सउ बेरा से।"

"बेचा तो बेचा सही कर ले मेरा के करेगा, सच कहवें नीच जाती

को मुंह लगाने का फल यूं ही हो से कोई पूछ इस मे, इसके बाप का के गया।"

घसीटा बिगड़ उठा — देख चौधरी—"बाप ताई मन्नो पहुंचयो।"

"के करेगा फांसी देगा। राधे श्याम ने जो बेचा सो कुछ ना। मेरा नाम फट से ले दिया।"

राधे श्याम बोला—"कूनसा मन दो मन बेच दिया, म्हारे कोठे में थोड़ा सा बचा था, घुन लग गया था मन्ने सोचा खराब न होने तै तो किसी के मुंह पडजा।"

उन लोगों की बातें सुन कान्त आपे से बाहर हो गया वह बोला-"तुम लोगों को जो बचाने जाय वह भी गया है, जाईये आप लोग, अब कभी मेरे पास मत आईये।"

उस दिन तो वह लोग चले गए, दूसरे दिन आ आ कर धीरे धीरे एक दूसरे की सारी बातें वह लोग बता गए। परन्तु घसीटा उन में नही था मन ही मन कड़ी बात कहने का पश्चाताप कान्त को था, इसी कारण उसने घसीटा को बुला भेजा—उस के आते ही बोला घसीटा भाई, मैं तुझ से क्षमा मागता हूं कल मैं क्रोध में था, तुम लोगों के घर आज ही अनाज पहुंच जायगा। पाठशाला के विद्यार्थी घर घर जायेंगे किस के घर कितना अनाज है, कितना लिया है, उस हिसाब से सब को दे देंगे। देखो घसीटा यदि तुम लोग इस काम में मेरा हाथ नहीं बटाओगे तो तुम ही लोगों को दुख भोगना पड़ेगा।"

"सो तो से ही दादा! म्हारी तरफ से तू फिकर मत कर झूठ बोल के एक दाना भी न लेंगे, तू कहे गा तो पैसे भी देवेगें।"

उस से बात चीत समाप्त कर कान्त स्वयं दो तीन विद्यार्थियों को साथ ले कर घर घर जा उपस्थित हुआ। अपने उस घमंड में उसे

एक और बात का पता चला जो सम्भवतः ऐसी स्थिति न जाने भर उसे नहीं होता। उस पर घरों में रहने वाली नारियों में कितनी श्रद्धा है पुरुष वर्ग की भांति धन की लोलुपता उन के मन में नहीं पहुंच पाई।

जिस समय वह हरखू चौधरी के घर पहुँचा। तो उस की पत्नी ने पीढ़ा बिछा कहा आ दादसरे। म्हारे धन भाग जो तुम म्हारी कुटिया पै पधारे।"

"दो चार मिनट इधर उधर की बात कर कान्त बोला—"ताई तुमने अनाज तो नहीं चाहिये।"

'न भाई! म्हारे तो दो महीने जोगा तो भरा था परसों फिर थारी पाठशाला से थारा चौधरी ले आया था।"

सकुचाते हुए कान्त बोला—"ताई एक बातक हूँ तू बुरा तो नहीं मानेगी।"

"नहीं दादसरे तेरी बात का बुरा मान हम ने के ग्राम छोड़ना रह गया है।"

"यह बात नहीं ताई! तुझे तो पता है, बाढ़ से खेती बाड़ी उजड़ गई लोग भूखे न मरें इस कारण मैंने अनाज बटवाया था, और कहा था कि जिस के पास सप्ताह भर का अनाज हो वह नहीं ले, दूसरे सप्ताह ले, हर सप्ताह अनाज मिलेगा। इस कारण चिन्ता की कोई बात नहीं! पर चौधरी के पास दो महीने का था फिर इतना ही वह और ले आया, अब तू ही बता ताई यूं काम कैसे चलेगा।"

"न भाई यूं तो काम न चले। यू तो अच्छा भी न दिखेगा।"

"पर ताई लोग तो नही सोचते, अच्छा ताई मेरा इसमे के स्वार्थ है तू ही बता?"

"कुछ भी न।"

फिर नाई देख अभी मैं पांच गड्डी अनाज लाया हूं. गांव की खातिर, पर ग्राम यूं करेगा तो मैं कब तक दूंगा।"

"न दादमरे तू कद ताई देगा, यू तो राम लगती बात से।"

बस मैं तो यह चाहूं ताई हर एक हफ्ते का अनाज अपने पास रख बाकी लोग लौटा दें।"

"म्हारी तो सोच तू मत करे मन चाहवे तो इबे ठा ले जा, म्हारा के है, जब नहीं होगा थारे से मांग लेंगे ? और फिर जिस और सब करेंगे हम भी कर लांगे।"

अच्छा तो ताई शेष अनाज ले जाऊं।"

इस प्रकार कान्त को लगभग आधा घंटा उल्टा मिल गया। घर जाकर सप्ताह भर के अनाज का अन्दाजा लगा, उन्हें उतने ही अनाज की चिट लिख संध्या को अनाज ले आने को कह वह लौट आया।

कान्त के इस योग ने आढ़तियों की योजना समाप्त कर दी।" महीना तो उन्होंने प्रतीक्षा की परन्तु जब कोई भी खरीदने नहीं आया तब उन्होंने अनाज सस्ता कर दिया, तब भी उन का अनाज बिका नहीं तब अपना एक विद्यार्थी भेज अनाज क्रय करने की बात उसने मंडी में कहलवा दी, धीरे धीरे मंडी का सारा अनाज लगभग आधे मूल्य पर कान्त ने क्रय कर लिया। डेढ़ मास बीतते बीतते अनाज की स्थिति भी सुधर चली थी जहां बाढ़ से क्षति नहीं पहुंची थी वहां से अनाज आना आरम्भ हो गया था।

इस प्रकार पाठशाला को पांच सात हज़ार रुपये की हानि उठानी पड़ी वह हानि विद्यार्थीयों अथवा पाठशाला ने मिल कर पूरी कर दी। इससे एक और बात कान्त समझ सका कि पाठ शाला के विद्यार्थियों में स्वार्थ की लोलुपता नहीं आ पाई।

सुखदेई के पास से आ अज्ञात आत्म-ग्लानि से सुचित्रा का मन भर गया। इस बार किरण के कहने पर पिता को एक प्रकार से धकेल कर वह कान्त के पास ले गई थी। सुखदेई के ममता पूर्ण व्यवहार के कारण एक बार अगाध श्रद्धा से उस के सम्मुख आत्म समर्पण कर देने को मन किया था, परन्तु एक बार मन की शंका को मुख पर लाते ही मानों श्रद्धा का वह घरोंदा जिसे अपने चहों ओर यत्न पूर्वक उस के मध्य वह बैठ जाना चाहती थी मानो वहीं घरोंदा एक बार बाहर झांकते ही शीतल वायु के सुख का अनुभव कर, उस घरोंदे को तोड़-फोड़ बाहर फेंक स्वतंत्र वायु में श्वास लेने को उस का मन मचल उठा।

घर लौट आने पर बहुत कुछ विचार उस ने किया। कान्त के प्रति अपना अनुराग भी उसे आडम्बर ही दिखाई पड़ा, एक ऐसा आडम्बर जिस का निर्माण केवल इस कारण था कि कोई भी सत्य उसके सम्मुख नहीं था। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार मरुस्थल में जलाशय सुन्दर दिखाई पड़ता है, चाहे उस में कितना भी गंदा जल क्यों न हो, तो भी अपेक्षा कर ठुकराया नहीं जाता, परन्तु इस का अर्थ यह नहीं हो जाता कि वह जलाशय, सुन्दर बहती बरसाती पहाड़ों के मध्य से होती नदी से भी सुन्दर हो।

और फिर कान्त के बारे में तो एक और बात कही जा सकती है। सदैव कान्त को आदरणीय समझ कर चलने की शिक्षा ही उसे मिली है। सदैव माता पिता दोनों ने ठूस-ठूस कर कान्त का व्यक्तित्व उस के अन्तर में ऊपर तक भर दिया है। यह ठीक है उस दिन कान्त के चले जाने पर वह कम नहीं रोई थी, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार एक दिन अपने सुन्दर गिलास के टूट जाने की सूचना सुन रोई थी, जिस प्रकार बस्ता फट जाने पर रोई थी। सहवास में रहने से इतना

होना तो स्वाभाविक है, फिर ? इस फिर का छोटा बड़ा कोई भी उत्तर उस के पास नहीं था। विवाह की बात निश्चित हो जाने पर उस का टूटना असम्भव है। तो क्या उसे जीवन प्रयन्त अपने इस जीवन को गांव के उस विषैले किटाणु युक्त वातावर्ण में काटना होगा ? क्या उस झूठी कुल मर्यादा को ले नित्य प्रति मार काट करवानी होगी, विशेष कर जब उसे इस पर तनिक भी विशवास नही। सहसा उसे मुखदेई से कही गई सलोचना मे सम्बोधित अपनी बात का उत्तर स्मरण पड़ी। अपने व्यतित्व को बड़ों के व्यतित्व में विलीन कर देने से बड़ी बात सुन वह कितनी प्रसन्न हुई थी। कान्त की बात ही ले देखो, उसे पहुंचा देख कितने गर्व से उस ने कह दिया था—"मैं जानता था सची जिस समय तुम्हारा क्रोध उतरेगा तुम दौड़ती चली आओगी।" यह केवल इसी कारण कह सके कि वे उस के मन की दुर्बलता को जानते थे। उस का क्या अपना कोई व्यतित्व नहीं, उन की इच्छा होने से ही क्या वह वहां जाकर रहे, उस की अपनी इच्छा का कोई मुल्य नहीं।

बहुत कुछ सोचते रहने पर भी यह सब सोचने का उपयोग उसे दिखाई नहीं पड़ा। परन्तु विवाह कुछ समय के लिए स्थागत करने के प्रस्ताव पे उसे प्रयाप्त अवसर प्राप्त हो गया। वह जानती थी कि अपने मन की यह बात वह मां से नहीं कह सकती परन्तु पिता से कहना उस के लिए सरल है, यही सोच एक दिन उस ने पिता से कह दिया।

"बाबू जी मैं विवाह नहीं करूंगी।"

समाचार पत्र को एक ओर रखते हुए दयाल बाबू बोले "क्या फिर क्रोध चढ़ आया ? अरे पागल स्थागत करने के तो कई कारण हैं। यह व्यर्थ का खेल करने के लिये नहीं किया गया।"

" नहीं खेल में भी नहीं कर रही हूं उन लोगों का मान सम्मान है, हमारा भी कुछ है, यही बात वे लोग भूल जाते हैं।"

दयाल बाबू खिलखिला कर हंस दिये—"वाह री पगली! हमारी उन की आबरू दो नहीं है, आज कल कान्त को बहुत काम है कितने ही मुकदमों में उलझा है। इसी से तो तेरी सास......

"छी! बाबू जी!! इस प्रकार की बात जीव्हा पर भी मत लाईये! रही कान्त बाबू के मुकदमें में फंसे होने की बात सो उन्ही का फंसना बड़ी बात नहीं है, खैर मुझे किसी से क्या सम्बन्ध? मैंने आप को बता दिया मैं यह विवाह नहीं करूंगी।"

इस बार वास्तव में दयाल बाबू आश्चर्य में पड़ गए बोले-"सची तेरी बात मैं कभी नहीं मोड़ता। इसी से क्या तू मेरी आबरू मिट्टी में मिला देना चाहती है।"

"व्यर्थ में आप क्लेश मत पाईये बाबू जी! आबरू आपकी नहीं जाती, जाती है उन की जो अपने समक्ष किसी को कुछ नहीं समझते।"

"उन की बात मैं नहीं जानता बेटी! जानता हूं तेरी! तेरे समक्ष संसार के किसी प्राणी का कोई महत्व नहीं! पूछ सकता हूं, आज इस प्रकार विवाह न करने का विचार मन में क्यों कर आया पहले तू कहाँ थी?"

"मुझ से क्या आप लोगों ने पूछा था?"

"नहीं, पूछा नहीं था! पूछ आज भी नहीं रहा, फिर भी आज एक बात मुझे बता दे, इस प्रकार अपने पिता का सिर झुका देना तू क्यों चाहती है? कान्त से विवाह करने के लिए तुझ पर मैंने कभी दबाओ नहीं डाला, जो कुछ भी हुआ तेरी सम्मति से हुआ।"

"मेरी सम्मति थी आप के मतानुसार ! आप लोगों ने सांझ सवेरे कान्त बाबू से विवाह कर देने की बात कह-कह कर स्वयं यह समझ लिया कि मैं भी सहमत हूं ! किसी को सम्मान देने का अर्थ विवाह नहीं होता बाबू जी ! और फिर जहां मैंने मना नहीं किया था वहां हां भी तो नहीं की थी।"

दयाल बाबू का कंठ अवरुद्ध हो उठा—"तेरे मन में जो आये कर, लड़की है तो भी लड़के से अधिक तुझे मान कर मैं चला हूं, कभी तेरी इच्छा के विपरीत कुछ नहीं किया अब भी नहीं करूंगा, परन्तु अपने इस बूढ़े पिता पर एक और उपकार कर देना बेटी ! जिस मुंह से लड़का मांग आया था, उस मुंह से उन लोगों से ना नहीं कह पाऊंगा। मेरा यह काम भी तू ही कर दे, सच कहता हूं तेरा यह पिता तेरा यह उपकार कभी नहीं भूलेगा।"

सुमित्रा ने और सब बातें सोच ली थीं परन्तु यह बात उसे ही कहनी होगी और केवल यही बात कहने के लिये उसे जाना होगा। इस की कल्पना उस ने नहीं की थी। सिर झुका वह चुप बैठी रही। तब ही पार्वती का स्वर सुनाई पड़ा—

"क्यों साहस नहीं पड़ता बेटी। रहने दे तेरा यह काम मैं कर आऊंगी तुझ जैसी लड़की के लिए कन्त बना भी नहीं उसका भी जीवन तू नष्ट कर डालती, इसी कारण विधाता ने तुझे यह समति दी है ! "पति को सम्बोधित कर बोली—लड़की का जीवन बचाने के लिए तुम ही जाओ, क्यों क्या कहते हो ?

दयाल बाबू ने दयनीय नेत्रों से एक बार पत्नी की ओर दूसरी बार लड़की की ओर देखा, पत्नी की पैनी दृष्टी एवं लड़की का झुका सिर देखा कुछ भी कहने का साहस न उनको नही पड़ा।

"बोलते क्यों नहीं ! तुम दोनों से बढ़कर विद्वान समझदार

दूसरा कोई संसार में है नहीं, लड़की को गढ़े में गिरने से बचाओ।" रोष भरे स्वर में पार्वती कहती गई।

सुमित्रा ने कुछ कहना चाहा—"मां......"

"रहने दे हरामजादी ! तू अपने आप को समझती क्या है ? तेरे से सुन्दर तुझसे गुणी विद्वान, बुद्धिमान क्या दूसरी कोई नहीं है। हमारी आबरू न सही परन्तु उन लोगों की आबरू से खेलने का अधिकार तुझे किस ने दिया ?

उन की आबरू सुन सुमित्रा की वाचालता लौट आई, वह खड़ी हो कर बोली—"उन की आबरू, उन की आबरू सुनते सुनते कान पक गए, मैं पूछती हूँ हम लोगों का क्या अपना अस्तित्व नहीं ! उन की आबरू जाती है तो मुझे इस से क्या ?"

"हां तुझे कुछ नहीं, परन्तु चान्डालनी हमारी आबरू भी है, या नहीं", उसका उत्तर दिये बिना ही सुमित्रा उठ कर बाहर चली गई।

सुमित्रा में आये इस परिवर्तन का एक और कारण था. बी० ए० में उस का एक सहपाठी था विनोद, विनोद में नारियों को अपनी ओर आकर्षित करने के पूरे गुण विद्यमान थे। नारी स्वतंत्रता का पक्ष ले जिस समय वह आवेश में भर तर्क करता था, तब उस का गौर मुख लाल हो उठता, उसके समक्ष जीवन का उद्देश्य था, जीवन का बहुमुखी उपयोग। उस की स्वच्छन्द एवं मस्त प्रकृति, पैसे को निर्दयता से व्यय करना, कालेज की प्रत्येक लड़की को अपनी ओर आकर्षित कर लेता था। यही नहीं सहज भाव से वह किसी के समक्ष पहुंच निःसंकोच भाव से बात-चीत कर पाता, उस के इस व्यवहार से अज्ञात रूप से सुमित्रा भी प्रभावित थी, कालिज की लोक सभा में नारी स्वतंत्रता के विषय में वह दोनों एक दूसरे के

विपक्षी थे। सभा समाप्त होने पर वह सीधा सुमित्रा के पास आया, बोला—"देखिये मिस सुमित्रा रानी ! इस विषय पर मैं आप से बात चीत करना चाहता हूँ।"

सुमित्रा उस के निमन्त्रण को टाल नहीं सकी बात चीत के मध्य बिना किसी आडम्बर के विनोद ने पूछा—"अच्छा एक बात बताइये पुरुष जब दस-बीस नारियों से प्रेम कर सकता है तो नारी क्यों नहीं कर सकती।"

सुमित्रा इस स्पष्ट प्रश्न से लजा गई सिर झुका बोली ?" इस प्रकार का प्रेम तो पुरुष के लिए भी लज्जा जनक है।"

"कितना है, पूछ सकता हूँ, इस के कारण कितने पुरुषों के विवाह रुकते है कितने लोग इसी कारण जीवन भर कलंक भोगते हैं ?"

"देखिये नारी पर बहुत कुछ आधारित है, उस के द्वारा संतान का पालन होता है, यदि वह ही पतित हो जायेगी तो फिर सब कुछ ढह जायगा।"

"यह तो केवल ढोल वाली बात है, एक आडम्बर है जो केवल नारी के लिए ही बना है। मान-मर्यादा, आबरू, इन शब्दों की चार दिवारी में नारी को बन्द कर दिया गया है। दुख तो इस बात का है कि नारी स्वयं भी इस मे बाहर आना नहीं चाहती।"

"यह केवल शब्द आडम्बर नहीं है, विनोद बाबू ! इनके न रहने पर सामाजिक व्यवस्था ढह जायेगी, घरेलू जीवन दुख पूर्ण हो उठेगा।"

"इसमें आपका दोष नहीं है। सची रानी !" बात कहते ही बोला "क्षमा करना सची रानी" मेरी इस नाम लेने की धृष्टता पर आप रुष्ट नहीं हो सकेंगी।"

सची रानी ! सुन सुमित्रा के शरीर में कम्पन्न सी दौड़ गई परन्तु अपने को संयत कर थोड़ा मुस्करा कर बोली—"इस में बुरा मानने की कौनसी बात हो गई !"

"तब फिर ठीक है।" सन्तोष की श्वांस छोड़ता विनोद बोला। "हाँ, मैं कह रहा था कि इस सब के पीछे छिपे हैं आप की दास्तां के संस्कार। मेरी बात का बुरा मत मानिये उसे छुपाने के लिए आप लोग आबरू मर्यादा का ढोंग ही नहीं बल्कि जीवन दुखी होने का भी ढोंग करती हैं। सरलता से कह देती हैं, नारी दुर्बल है उसे पुरुष के आश्रय की आवश्यकता रहती है, उन सब में छिपा है नारी दास्तां का एक युग, जिस के कारण उस के मन मस्तिष्क पर अपने दुर्बल और पुरुष के सबल होने की बात छाई है।"

सुमित्रा ने उसी विषय पर कीतनी ही बार कान्त से तर्क की थी उस की कितनी ही युक्तियां उस ने ज्यों की त्यों दोहरा दी परन्तु उन के पीछे कान्त की भांति मन का सम्पूर्ण बल न रह कर अनिश्चितता का दुर्बलता थी। फिर भी उस ने बल लगा कर कहा—"विनोद बाबू ! संसार के प्रत्येक प्राणी के निमित्त एक कार्य रहता है, । उस के विपरीत चल प्रकृति के विरुद्ध चलता है।"

" यह तर्क नहीं है सची रानी ! है केवल आत्म छलना" प्रकृति शब्द की रचना भी इसी अभिप्राय से की गई है।"

चाय समाप्त हो जाने पर उन का वह वार्तालाप वहीं समाप्त हो गया, परन्तु उस दिन का वार्तालाप केवल प्रथम हुआ, अन्तिम नहीं धीरे धीरे विनोद का घर आना जाना प्रारम्भ हो गया। घन्टों विनोद, दयाल बाबू अथवा सुमित्रा उस विषय पर बात चीत करने, कभी कभी काम न रहने पर पार्वती आ बैठती—उस के बैठने पर वार्तालाप होता विनोद और पार्वती में सुमित्रा विनोद का पक्ष ले एक दो

बात कह देती दयाल बाबू जब तक पत्नी की बात में हाँ में हाँ मिला देते ! जिस दिन सुखदेई सुमित्रा की गोद भरने आई उस दिन भी उन का वार्तालाप चल उठा, सुखदेई थोड़ा कड़ा पड़ बोली—"तुम लोगों के पोथी पत्रों में क्या लिखा है मैं नहीं जानती परन्तु एक बात है जिस ओर तुम लोग आंखें उठा कर देखना भी नहीं चाहते, वह है घर के किसी भी कार्य में पुरुष का आदेश काम नहीं देता, ग्रहणी अपनी इच्छा से जो चाहती है, करती है ।"

"क्षमा कीजिए तभी पति महोदय पत्नी की हड्डी पसली तोड़ कर रख देते हैं ।"

"बात में छिपे कटाक्ष को सुखदेई पी गई तुम लोग केवल दो चार घरों की बात उदाहरण के रूप में सम्मुख रख कर चलते हो जिस सभ्यता से तुम ने यह सब सीखा है, सुना है, समझा है, वहां भी ऐसे कम उदाहरण नहीं हैं । तुम्हारे इस साहित्य के सृजनहार हैं चार्लस डिकन्ज, उन की लगभग सब पुस्तकें मैंने पढ़ी हैं, उन में ऐसे कितने दृष्टान्त हैं, जिस में पत्नी पर जो अत्याचार हुए हैं, उन की सीमा नहीं है, ! हियोगो के उपन्यासों में भी उस का भास मिलता है, हार्डी के मैयर ने तो अपनी पत्नी तक बेच दी थी ।"

"वह तो केवल उपन्यासों की बातें हैं ।"

"उपन्यासों में समाज का चित्रण तो सही रहता है, यह बात दूसरी है कि उस के पात्र मन गढ़न्त हैं ।"

सुखदेई की बातें सुन सब लोगों के आश्चर्य की सीमा नहीं रही, जिन पुस्तकों का उल्लेख उस ने किया यह ठीक है, वह कोई बहुत बड़ी दुर्लभ पुस्तकें नहीं हैं फिर भी साहित्य में उन का अपना स्थान है, एक अनिवार्य स्थान........."

"हो सकता है वहां की नारी भी परतन्त्र हो।"

डिकन्ज और हियोगी तो उन्नीसवीं शताब्दी में हुए हैं परन्तु हार्डी तो तुम्हारी बीसवीं शताब्दी का प्राणी है, न सही साहित्य की बात, व्यापारिक क्रान्ति, औद्योगिक क्रान्ति इन्डस्ट्रीज रैव्यूल्यूशन से पहले वहां की नारी भी घर की चार दिवारी में रहती थी। आज भी वहां नारी को वीकर सैक्स कहा जाता है, तुम लोगों ने इतना कुछ पढ़ा लिखा है परन्तु तुम लोगो ने समझने की चेष्टा नहीं की, योरुप में सर्वदा जन-शक्ति का अभाव रहा है। अपनी उदर पूर्ती के लिए जब योरुप ने विश्व व्यापार अपने हाथों मे ले लिया, तो बाहर राज्य करने, जल अथवा थल सेना में पुरुष वर्ग के चले जाने के कारण उस रिक्त स्थान की पूर्ति कर अपने हाथों से व्यापार निकल जाने के भय से, नारी स्वतंत्रता की घोषणा की गई। अंग्रेजी भाषा का एक शब्द है "स्टंट" इस के अतिरिक्त यह और कुछ नहीं।

यह तो आप के सोचने का ढंग है। इतने वर्ष का.........

दासता का दुष्परिणाम है, यही तुम कहना चाहते हो, भारत के गांव में कभी गये हो, वहां नारी के पति साथ खेत में काम करती है, घास काट कर सिर पर पति जितना बोझा लादे, लौटती है, सम्भवत: तुम्हारी नारी की स्वतंत्रता का जयकारा वहां नहीं पहुंचा, फिर भी उन दोनों में कोई विशेष अन्तर दिखाई नही पड़ता।

"पुरुष वहां भी तो मारपीट करता है।"

"सब कुछ होता है वहां पत्नी भी कह देती है। कलमुहें, तुझे मौत आय, तेरी अर्थी उठे, तू तड़का न देखे। सच जानो तुम से कोई कह दे तो तुम लोग उस की हत्या कर बैठो।

यह तो अशिक्षित रहने के कारण है।

सुखदेई को मानो किसी ने बेंत मार दी हो "सर्वप्रथम तुम अपना अभिप्राय व्यक्त कर दो, शिक्षा विद्या और ज्ञान में बहुत बड़ा अन्तर है।"

मेरा तात्पर्य शिक्षा से है ।

फिर ठीक है जब तुम ने यह शब्द चुना है तो तुम्हें अर्थ भी ज्ञात होगा ही में यदि भूल करती हूँ तो सुझा देना, शिक्षा का अर्थ किसी कार्य को ढंग से सलीके से करने की साधना ! दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है, खेती की शिक्षा, लोहार, बढ़ई, मोची, जुलाहा बनने की शिक्षा परन्तु भाई ! इस से तो तुम्हीं लोग अशिक्षित सिद्ध हुए।"

"मेरा तात्पर्य पढ़े लिखे होने से है।" खीझे स्वर से विनोद बोला किसी प्रकार वह उस प्राक्रमी नारी से पार नहीं पा रहा था। साथ ही यह भी कह दिया "आप इस प्रकार के शब्द पकड़ चलेंगी तो तर्क करना व्यर्थ है।"

"तर्क उपस्थित न रहने पर खीझ होना स्वाभाविक है, मैं तुम्हारे तीनों शब्दों को मान कर चलती हूँ उनमें तुम विद्या की कमी अवश्य कह सकते हो, अज्ञानी होने की भी बात नहीं कही जा सकती, कारण किसी न किसी क्षेत्र में प्रत्येक मनुष्य अज्ञानी होता है, खेती के काम में तुम अज्ञानी हो, कपड़ा बुनना, लोहार, बढ़ई के काम का ज्ञान तुम्हें नहीं, ज्ञान का अर्थ तो किसी भी बात को जानना है, समझना भी नहीं। हां विद्या से अवश्यमेव तात्पर्य जानना और गुणना है, परन्तु गुणते तो तुम भी नहीं। साधारण सी बात है, हम सभी जानते हैं कि धोखा देना बुरा है, फिर देते हैं, तुम लोग क्या सीख पाते हो, बता सकते हो ?

"सभ्यता, शिष्टाचार! आचरण व्यवहार ! इतना भी आप नहीं जानतीं।"

क्या करूँ भाई ! मेरी बुद्धि ही इतनी है, जिसे तुम लोगों ने यह चारों नाम दिये हैं, वह केवल प्रदर्शन है, श्रीमान जी कहते समय तुम्हारे मन में श्रीमान की सी सूक्ष्म सी भावना भी नहीं होती।" क्षमा कीजिए ! केवल शिष्टाचार एक शब्द बन कर रह गया है, कितना बड़ा अन्याय तुमने भाषा के प्रति किया है। शब्दों को भी एक प्रकार से भाव

हीन बना कर रख दिया । अतिथि को देखते ही यम के दूत की कल्पना आप लोग करते हैं परन्तु सभ्यता के, शिष्टाचार के नाते कहते हैं "देखिये यदि आप भोजन करके नही आये तो बता दीजिए । संकोच की आवश्यकता नहीं, अपना ही घर समझिए, भोजन के समय से पहले कहेंगे, भोजन करेंगे आप ! उस के पश्चात कोई निर्लज्ज ही हां कह सकता है और आप लोग एक बार ना सुनने के पश्चात नल मे प्राप्त उबलते हुए जल का गिलास प्रस्तुत कर देते हैं । उस के विपरीत वही अशिक्षित, अपढ़, गंवार, बिना भोजन कराये आने नहीं देंगे ! उन की तू में जो स्नेह, अपनत्व है, वह आप में नही, उन का क्रोध, दुख-सुख, हंसी प्यार, दुलार कही कृत्रिमता नहीं रहती, और आप के यहां कहीं भी सत्यता नही रहती । मैं इसे शिक्षा नहीं कुशिक्षा कहती हूं।" तिलमिला कर विनोद ने कहा "आपके कहने से ही संसार का सब कुछ नहीं चलता फिर हमारी बात चीत का विषय ग्राम नहीं है अथवा नारी स्वतन्त्रता ।"

"ठीक है ग्रामीण जीवन पर जब तुम ने आघात किया है तो मैंने समझा तुम उस विषय पर तर्क करना नहीं चाहते, चलो उसी विषय पर आ जाता हूं ।"

तुम से एक प्रश्न पूछ सकती हूं, कि नारी की स्वतन्त्रता के लिए तुम्हारे सिर में दर्द क्यों ?

अट्टहास कर विनोद हंस दिया, उसकी उस हंसी में अपेक्षा थी, बोला—"यह तो साधारण सी मानवता है, उन लोगों को इसका चेत नही, इसी कारण हमारा कर्तव्य है, उन्हें जताएं और फिर नारियां भी तो नारी स्वतन्त्रता के पक्ष में है !"

अपमान की गहनता से सुखदेई लाल हो गई, तीक्ष्ण स्वर में बोली—"किसी बहुत बड़े विद्वान का कथन है, ध्यान नहीं कहां पढ़ा था, परन्तु कथन नहीं भूल सकी, उस का कहना है कि जिन लोगों की दृष्टि में अपना सम्मान नहीं होता, उन्हे डर रहता है कहीं उनकी वह दुर्बलता

पकड़ न ली जाये इसी कारण वह दूसरों का अपमान कर बैठते हैं। जिसे तुम लोगों की भाषा में, "इन्फीयरिटी कम्पलैक्स" बोलते हैं। ऐसे लोगों पर क्रोध नहीं किया जाता, की जाती है दया। इन बातों को समझने की बुद्धि तुम में नहीं है, समझने की चेष्टा भी तुम नहीं करोगे। मेरे प्रश्न का उत्तर तुम्हारे पास नहीं है, अवचेतन मस्तिष्क में वह स्पष्ट रूप से तुम्हारे समक्ष है। नारी को तुम लोग अपने अनुसार चला सको इस लिए यह ढोंग है। अंग्रेजी का एक शब्द है एक्सप्लीटेशन यह वही है, इस कारण कि प्रत्येक नारी को तुम अपने दृष्टिकोण से देख सको, तुम्हारी उस गिद्ध दृष्टि को न पहचान झूठी स्वतन्त्रता के मद में, तुम से प्रशंसा खोजतीं, वह लोग तुम्हारी वृतियों की शक्ति का यन्त्र बना जायें, इस के अतिरिक्त और कुछ नहीं।"

सुखदेई ने व्यंग के अभिप्राय से यह बातें नहीं कहीं थीं—तो भी उस की चोट से विनोद और सूचित्रा दोनों ही तिलमिला उठे दयाल बाबू ने भी सिर हिला—हिला समर्थन किया—"वाह समधन जी! वाह सच-मुच तुम्हारे सम्मुख यह सब कल के छोकरे क्या ठहरेंगे।"

विकृत मुख बना तीखे स्वर में विनोद बोला—"तुम तर्क थोड़ा ही कर रही हो, लड़ रही हो। जीवन भर पति के छोड़े जाने पर सारा अत्याचार बिसार उसी द्वार पर भिखारी की भांति टुकड़े चुगने वाली नारी से इसके अतिरिक्त और क्या आशा की जा सकती है।"

मारे क्रोध के सुखदेई पांव तक कांप गई—तड़ाके से विनोद के मुंह पर थप्पड़ जड़ बोली—"नारी सम्मान की बात करते समय तुम यह भी भूल जाते हो कि जिस के सम्मुख तुम यह नीचता पूर्ण बातें बक रहे हो, वह तुम्हारी मां की आयु की है, तुम्हारी बात का उत्तर भी देती हूं। आदर्श नारियों की भांति पुनर विवाह मैंने नहीं किया, तीन बार पति के आग्रह पर गई भी नहीं। सम्भवत: धन का लोभ होता

तो कर बैठती "साथ ही समधी को सम्बोधित कर बोली—" समधी जी मुझे खेद है घर आये पर मुझे हाथ छोड़ना पड़ा। और फिर बाघ की सी दृष्टि विनोद पर डालते हुए बोली—"तुम्हारे भाग्य अच्छे थे जो तुम यहां हो, बाहर कहीं रहने पर तुम्हारी जीह्वा उन शब्दों का उच्चारण करने से पहले रहती नहीं, यह मत समझना मैं धोंस दे रही हूं। कभी प्रयत्न भी मत कर बैठना, अन्यथा सच कहती हूं, वह शब्द तुम्हारे अन्तिम होंगे। और एक बात आज समझ जाओ, नारी स्वतन्त्रता वास्तव में यदि कुछ है तो यही है ?"

विनोद ने कुछ करना चाहा—सुखदेई उठ खड़ी हुई —" देखती हूं तेरे मन में कुछ और है, एक भी शब्द सुनना नहीं चाहती ! और साथ ही कड़क कर बोली—निकल जाओ ! फिर इस घर में पैर रखा तो टांगे तोड़ दूंगी समझे।"

शब्दो में और भावों में यदि रात दिन का अन्तर कोई होता है, तो वह सुखदेई के आचरण में था। जिस प्रकार बायलर की खिड़की खोल देने से समस्त वायु मंडल फुंकने लगता है, उस ओर आंख उठा देखने का साहस किसी का नहीं पड़ता, ठींक उसी प्रकार चेतना हीन सब लोग बैठे रहे। उसकी ओर दृष्टि डालने से ही विनोद सिर से पांव तक कांप गया। फिर एक क्षण भी ठहरने का साहस उसका नहीं हुआ।

उस के जाते ही सुखदेई कुर्सी पर बैठ गई, "छी सम्बंधी जी ! ऐसे लड़के को तुम घर में आने देते हो।"

दोषी की भांति सिर हिला दयाल बाबू बोले-"मुझे क्या पता था यह लड़का इतना दुष्ट है, पाजी का साहस देखो।"

सुखदेई का अपमान देख स्वयं सुमित्रा के नेत्र जल उठे थे, बातचीत में श्रद्धा भाव से उसने एक दिन विनोद से उल्लेख कर दिया था, उस का उपयोग वह इस प्रकार करेगा, इस की आशा उसे न थी। परन्तु उसको

थपाड मार स्वय उस को स्वय त्रुटि न स्वीकार करने के कारण ही सुचित्रा का मन विनोद का पक्ष ले उठा-उस के पश्चात सुखदेई के आदेश मे जो कठोरता छिपी थी उस मे वह खिन्न हो उठी थी।

दूसरे दिन विनोद ने सुचित्रा से क्षमा मांगी परन्तु वह बोली नहीं। तीन चार दिन के अनुनय विनय के पश्चात वह अपने को रोक न सकी धीरे धीरे पुनः उनका मिलना जुलना प्रारम्भ हो गया-जिस दिन विवाह स्थगित करने की सूचना आई, उस दिन विनोद की घटना ही उसका कारण समझी थी अभी भी उसे पूर्ण निश्चय था कि सुखदेई ने केवल इसी कारण यह सब किया है। साथ ही उस का उस दिन की आज्ञा देने का ढंग ध्यान हो आया, उसकी वह भयावनी आकृति उसके सम्मुख आ उपस्थित हुई मन ही मन उसने दोहाराया-नहीं नहीं। ऐसे निर्दई लोगों के घर में उसका जाना कदापि नहीं हो सकता।

सुचित्रा जिस वेग से विनोद की ओर आकर्षित हुई, उससे स्वय उस के अन्तर में एक प्रकार का अज्ञात भय विद्यमान था। परन्तु बल लगाकर भी वह आकर्षण के उस वेग को रोक नहीं पा रही थी। यह जानते हुए भी कि वाक्य चातुरी के जिस जाल में वह फंसती जा रही है, वह सत्यता से बहुत दूर है।

विनोद की बात ले घर में कलह हो जाती, दयाल बाबू तो प्रायः यह कह कर चुप हो जाते–"यह अच्छी बात नहीं है बेटी! परन्तु पार्वती को वह सब बातें सहन नही थी, इसके कारण विनोद का उस घर में आना जाना नहीं हो पाता था, इसी से खीझ कर एक प्रकार की प्रतिकार की भावना से वह उससे नित्यप्रति मिलती। कितनी ही बार विनोद की बातें उसे भाती नहीं। प्रतिकार के करने से भी वह चूकती नहीं। परन्तु इतना सब कुछ भी होने पर विनोद को वह मन से निकाल नहीं पाती। कई बार विनोद विचित्र प्रकार के प्रश्न कर बैठता—"अच्छा सची रानी! तुम विवाह की प्रथा में विश्वास रखती हो?

"मैं क्या सभी रखते हैं।"

"मैं नहीं रखता, यह तो केवल अपने लिये, अपनी वासना तृप्ति के लिए किसी को जुटाए रखने का पुरुष का स्वार्थ है।"

"यह तो सामाजिक व्यवस्था है विनोद बाबू।"

"चलिये आप ही की बात मान लेता हूं। सामाजिक व्यवस्था सही! परन्तु उस का निर्माता भी तो पुरुष वर्ग ही है! इसे बदला भी तो जा सकता है।"

"बदलने के पश्चात भी तो किसी व्यवस्था का निर्माण करना ही होगा।"

"व्यवस्था के बिना भी तो काम चल सकता है, अब देखिये। मुझे आप संसार भर में सब से सुन्दर दिखाई पड़ती है, मैं आप के साथ जीवन व्यतीत करना चाहता हूं, कोई आवश्यक है, हम अपने चारों ओर श्रृंखला डाल कर चलें।"

"विवाह का अर्थ भी तो जीवन भर साथ देने का होता है।"

"नहीं उस का अर्थ होता है, हमें अपने पर विश्वास नहीं। स्वयं पर विश्वास न रख कर हम इस सामाजिक बंधन का आश्रय लेते हैं।"

उस दिन तो उस की बातें वहीं समाप्त हो गई, परन्तु उस का प्रारम्भ हुआ कान्त के सम्मुख मे। किसी कार्य वश कान्त दिल्ली आया था, राह में ही सुचित्रा से उस की भेंट हो गई साथ था बिनोद। उसे लिए सुचित्रा एक विश्रान्ति गृह में जा बैठी, विनोद ने तीन चाय और अन्य खाद्य सामग्री का आदेश देना चाहा, उसे बीच में ही रोक कान्त ने कहा—"क्षमा करिये! मैं यहां कुछ खा पी नहीं सकूंगा।"

कान्त की बात सुन विनोद व्यंग पूर्ण हंसता हुआ पूछ बैठा-क्यों ?'

वास्तव में कान्त से उस का परिचय नहीं था, उसकी वेश-भूषा देख उसे सुचित्रा का कोई गंवार नातेदार समझा था। कभी सुचित्रा ने भी कान्त का उल्लेख नहीं किया था। उस के धूल भरे पांव, बढ़ी दाढ़ी,

अथवा उलझे बालों को लक्ष कर वह रेस्टोरेंट के भीतर लाने में भी अपना अपमान समझ रहा था, इसी कारण वहां न खाने पीने की बात सुन वह खिन्न हो उठा "यहां खाने में क्या जात चली जायगी ?"

कान्त हंस दिया, बोला—"आपने समझने में भूल की-मेरा तात्पर्य यह नहीं था—वैसे मेरी इन सब बातों में आस्था नहीं है न जाने क्यों ग्लानि होती है।"

मुंह बिकुन कर विनोद बोला—ग्लानि ! यहां खाने से तुम्हें ग्लानि होती है, जब तुम लोग अपने पजे तक डुबो-डुबो कर खाते हो, तब ग्लानि नहीं होती, सच है तुम लोगों को तो हाथ पर रोटी रख प्याज खाने में ही स्वाद आता है।"

विनोद के इस प्रकार बिगड़ने का कोई कारण कान्त की समझ में नहीं आया, वह कुछ कहने ही जा रहा था, तब ही सुचित्रा बोल पड़ी विनोद बाबू। आप है कान्त बाबू हम लोग बाल्य काल के साथ है, साढ़े पांच वर्ष पूर्व आप जर्मनी मे ईजीनियरिंग कर लौटे है।

इस परिचय मे कितना दुख का भाव है यह कान्त से छिपा नहीं रहा उसके अतिरिक्त और कोई व्यक्ति सुचित्रा के अधिक निकट हो सकता है इसका विश्वास उसे नहीं था, परन्तु सुचित्रा ने जिस ढंग से उसका परिचय विनोद से कराया था उससे तो यह बात स्पष्ट थी कि वह दूसरा व्यक्ति उसके अधिक निकट है। शान्त भाव से बोला-' आपका शुभ नाम।"

हिन्दी में उत्तर देना विनोद ने अपना अपमान समझा इसी कारण उस ने अंग्रेजी में ही अपना परिचय दिया साथ ही पूछा, अच्छा तो कान्त बाबू। इस बारे में आप का दृष्टि कोण इतना संकीर्ण क्यों है। ?

मुस्करा कर कान्त ने उत्तर दिया "संकीर्णता की बात नहीं, विनोद बाबू मन नहीं मानता ! बस इतना ही समझ लीजिये।"

उस के पश्चात उन लोगों की बात-चीत खान-पान से आचार विचार, सभ्यता, संस्कृति तक आ पहुंची, वह बात कैसे कब विवाह प्रथा

पर जा टिकी तीनों में से कोई भी निश्चित रुप से नहीं जान पाया। विनोद बोला "देखिए कान्त बाबू ! किसी के भी विवाह करने का अर्थ हुआ कि मनुष्य अपनी स्वतन्त्रता खो, बंध कर रह जाय।"

"बंध कर रहने की बात नहीं है यह तो केवल नियन्त्रित रखने की बात है।"

"एक ही बात है, चाहे उसे किसी प्रकार घुमा फिरा कर कह लिजिए। मैंने आज विवाह कर लिया, मेरा उस का स्वभाव नही मिलता। मैं देखता हूं सुचित्रा रानी मेरी पत्नी से सुन्दर है, गुणवान है, इन के साथ मैं अपना जीवन सुख पूर्वक व्यतीत कर सकता हूँ, परन्तु कोई इस का कारण नही पाता कि मैं विवाह में बंधा हुआ हूं ?"

सुचित्रा के उल्लेख से कान्त को विशेष आशचर्य नही हुआ, सुचित्रा के मुख पर लज्जा की लालिमा भी उस से छिपी नहीं रही. उस एक ही क्षण में दुराव की वह भावना उस की समझ में आ गई। शान्त स्वर में बोला—"आप के कहने का तात्पर्य हुआ कि यदि सच्ची से सुन्दर गुणवान, कोई दूसरी मिल गई तो उस के लिए भी स्वतन्त्र होना चाहेंगे।"

"जो सुन्दर गुणवान है वह तो सर्वदा ही सुन्दर तथा गुणवान रहेगी"

"नही विनोद बाबू ! सुन्दरता आयु के साथ रहती है और गुण अपनत्व के कारण, जहां अपनत्व नहीं रहता वहां गुणों को परखने का भी अवकाश मनुष्य को नहीं रहता।"

"चलिए आप की बात यदि मान ली जाय तो भी इसमें क्या हानि है।"

"हंस कर कान्त ने कहा"— हानि तो बहुत बड़ी है, हो सकता है, जो आपकी दृष्टि में सुन्दर है, गुणी है, उस की दृष्टि में आप न हों, और फिर यदि यही ठीक है तो जो लोग साधारण हैं, सुन्दर नहीं, गुणी नहीं, उनका क्या होगा, जीवन की यह अपूर्णता प्रत्येक नर नारी में होती है,

उस अपूर्णता की पूर्ति होगी फिर बल द्वरा अनैतिकता से ! उसे क्या ठीक कहेंगे ।"

"नहीं वह ठीक नहीं है, दूसरे की इच्छा बिना यह सब न्याय संगत नहीं है ।"

"न्याय अन्याय तो समाज ही निर्धारित करता है विनोद बाबू ! परन्तु जो आवश्यक है, उसे यदि आप किसी को नहीं देंगे तो वह छीन लेगा । और एक बात है, हो सकता है, आप के मतानुसार सची में सुन्दरता न रहे, गुण न रहें परन्तु सची के मतानुसार आप में वह सब विद्यमान हों । उसके कारण क्या इस का मन दुख नहीं पायेगा ?"

सुचित्रा बार-बार अपना उल्लेख सुन अकुलः उठी थी, खिन्नता से हंस बोली "अपने इस तर्क-युद्ध में आप लोग मुझे काहे को घसीट रहे हैं" ?

सुचित्रा के मुख पर दृष्टि डाल कान्त ने उस के मनोभाव पढ़ने चाहे परन्तु बात कह जिस भाव से सिर झुका कर वह बैठ गई उस से कुछ भी जान लेना कान्त के लिये सम्भव नहीं हुआ ।

"क्षमा करना सची !" कान्त अपनी बात आरम्भ करना चाह रहा था कि विनोद बोला, "देखिये कान्त बाबू ! साधारण शिष्टाचार भी एक बात होती है, इस प्रकार नाम लेना बात चीत करने का कोई सभ्य ढ़ंग नहीं है ।"

कान्त के कान तक लाल हो उठे फिर भी अपने को संयत कर बोला—क्षमा कीजिये विनोद बाबू जी अभी तक कहता आया था, कभी इन्होने मेरी यह अशिष्टता सुझाई नही, इसी कारण अपराध करने का मेरा यह स्वभाव सा हो गया है ।"

सुचित्रा लज्जा के कारण धरती में गड़ी जा रही थी । कान्त पर अभी तक भी उसकी श्रद्धा थी, कान्त यदि क्रोध में आ कुछ कह देता तो सम्भवतः उसे लज्जा का भास तक भी नहीं होता परन्तु विनोद के

इस प्रकार लताड़ देने पर उसे कुछ अच्छा नहीं लगा बोली —"कहने दीजिए विनोद बाबू ! प्रारम्भ से ऐसा ही कहने का इनका स्वभाव है ।"

बात कहते ही सुचित्रा को स्वयं लगा कि जिस ढंग से कहना चाहिये था उस ढंग से उसने नहीं कहा, कान्त को भी वह बात खटकी किस ढंग से उस के जबड़ों की हड्डियां कपोलों के मांस के भीतर से उभर आई ? उसे देख सुचित्रा स्पष्ट समझ गई कि उस की बात से कान्त के मन पर आघात ही नहीं हुआ था अपितु अपमान की गहनता से वह मनुष्य मन ही मन तिलमिला उठा है ! मन के भावमुख पर लाने वाले व्यक्तियों में से वह नहीं है, फिर भी उस के समस्त सयम को लांघ उस के मुख पर, कपाल पर जो रेखायें उभर आई ,वह कोई छोटी-मोटी बात नहीं है । उसी समय विनोद ने एक और बात कह दी "देखिये कान्त बाबू ! स्त्री और पुरुषों का स्वाभाविक रूप से एक ही नाता है, दूसरे तो केवल मनुष्य के बनाये हुए हैं, आज जब युग परिवर्तन हो रहा है, तब आप के संकीर्ण विचारों का कोई स्थान नहीं है ।"

"ठीक है ।" कहते कहते कान्त उठ खड़ा हुआ—"मनुष्य की बनाई हर वस्तु बुरी नहीं होती । विनोद बाबू । न ही वह लोग जिन्होंने यह व्यवस्था की है, मूर्ख थे । क्षमा कीजिए विचारों की संकीर्णता के कारण आप लोगों में बैठ नहीं पाऊंगा । अब मैं चलूंगा"

"अभीं हम लोग चाय पी रहे हैं कान्त बाबू । बीच में उठ कर जाना सभ्यता के विरुद्ध है ।"

"मैं असभ्य व्यक्ति ठहरा विनोद बाबू । इस कारण बिना बुरा माने आप का भी काम चल जायगा, जिन गंवार लोगों में मैं रहता हूँ वहां के लोग मान अपमान समझते हैं, इसी कारण किसी का अपमान करते भी नहीं, सहते भी नहीं ।"

विनोद ने व्यंग कसा-"अच्छा तब तो आप को अब तक बैठना भी नहीं चाहिये था ।"

एक क्षण को कान्त की आँखें जल उठीं फिर भी प्रशान्तस्वर में ही बोला-क्यों बैठा हूँ, यह बात समझने में तुम्हें समय लगेगा, तुम्हें समझाना भी मैं नहीं चाहता, जो समझती हैं, उनसे पूछ लेना वह सरलता से बता देंगी।"

कान्त की बात में छुपा व्यंग समझ सुचित्रा बोली—"मैं पूछती हूँ इस प्रकार मेरा अपमान करने का अधिकार आप को किस ने दिया।"

तुम भली भाँति जानती हो सुचित्रा। किसी का अपमान मैं नही करता, फिर भी एक बात बता देना चाहता हूँ और अवश्यक भी समझ हूँ जो लोग अपने सम्मान का ध्यान रखते हैं, उन्हें दूसरों के सम्मान का भी ध्याम रखना चाहिये। चलो छोड़ो इन बातों को और हां तुम लोगों ने जो मुझे बुला मेरा स्वागत किया है, उस का धन्यवाद। "विनोद को लक्ष्यकर कान्त कहता गया—एक बात आप से कहनी है विनोद बाबू अब इस प्रकार की स्वागत करने की चेष्टा आप भूल कर भी मत करना।"

कान्त की बात से विनोद तिलमिला उठा—"आप क्या मुझे धमकी दे रहे हैं ?"

नहीं उस योग्य आप नहीं हैं, आप को मैं पहचानता नहीं, पहचानने की इच्छा भी नहीं है, केवल एक बात का ध्यान रखिए मेरी बात धमकी नहीं होती, होता है सत्य, कठोर सत्य उसे जानने की चेष्टा न करना ही आपके लिए हितकर है।

"जाईये ! जाईये ! मैंने आप जैसे बहुत देखे हैं।" असहनीय उपेक्षा प्रदर्शित करते हुए विनोद ने कुछ ऐसे ढंग से कहा कि मारे अपमान के कान्त का रोआं—रोआं जल उठा—बढ़ा हुआ उसका हाथ पकड़ मरोड़ कर पीठ से सटा दिया, बोला—"मुझे देखने की लालसा त्याग दो विनोद !"

असहनीय पीड़ा से विनोद कराह उठा—"ब्रूट !" इस शब्द के समाप्त होने और मुंह पर थप्पड़ आ पड़ने में कितना अवकाश रहा होगा इस का ब्योरा जानना कठिन बात थी परन्तु इतना अवश्य था कि विनोद चकरा कर बैठ गया—एक भी शब्द उसके मुख से नहीं निकला। मुख से बहता रक्त पोंछ, हिलते हुए अपने दांत को एक बार छू कपोल पर हाथ फेर उसे सहला, दृष्टि उठा कान्त की ओर देखना चाहा, परन्तु तब तक कान्त द्वार तक पहुंच गया था। उस की पीठ ही उसे दिखाई पड़ी। धीरे से सुचित्रा ने कहा "छोड़िए।"

"छोड़ूं। छोड़ूंगा नहीं मैं साले को जेल भिजवा दूंगा, साले का सिर तुड़वा दूंगा।"

बात सुन कान्त पलट पड़ा था अधिक मारपीट हो जाने के भय से सुमित्रा बीच में आ खड़ी हुई—"बहादुरी दिखाने के लिए और स्थान भी हैं कान्त बाबू !"

उत्तर न दे कान्त लौट गया।

बड़बड़ाते हुए विनोद को उसके घर पर छोड़ सुचित्रा घर पहुंची। इतना कुछ कर देने के पश्चात भी कान्त घर में होगा इस की आशा सुचित्रा को नहीं थी, मेज पर टांगें फैलाए, कुर्सी से पीठ सटाए, उसे बैठे देख मारे घृणा के उसके अंग—अंग से चिन्गारियां सी छूटने लगीं, मारे क्रोध के वह उसके मुख को देख भी नहीं सकी। इसी कारण उस की उपेक्षा कर वह ऊपर अपने कमरे में जा पहुंची।"

उस दिन उस का खाना पीना भी नहीं हुआ। रात्रि के एक बजे तक वह वही बातें सोचती रही, यह ठीक है विनोद ने ठीक नहीं किया परन्तु इसी से क्या मनुष्य को बुद्धि विवेक खो देना चाहिए। इस प्रकार हाथापाई करना क्या उचित है। शरीर में बल होने का अर्थ यह तो नहीं हुआ कि मनुष्य हर किसी पर हाथ छोड़ दे, और फिर विनोद का दोष भी क्या था, ऐसे ही मान वाले थे तो धमकी क्यों दी थी।

विचार नही मिलते तो वार्तालाप ही नही करते। भरे हुए रस्टोरेंट में लोग क्या कहते होंगे। क्या सोचते होंगे, ऐसे अशिष्ट, असभ्य लोग भी संसार में है। उन दोनों को उन्होंने यही सोचा होगा। ? इत्यादि बातें सोचते सोचते उस का मन बार बार क्रोध और घृणा से भर उठता।

प्रयत्न करने पर भी जब उसे इन विचारों से छुटकारा नहीं मिला, तब बाग में घूम आने के विचार से वह बाहर निकली, अनायास ही नीचे वाले कमरे में प्रकाश देख उसे आश्चर्य हुआ, वह कमरा प्राय; कान्त के ही उपयोग में आता था, दबे पांव कमरे में जा माथे पर हाथ रखे मेज पर पांव फैलाए कान्त को देख, वह चकित हो गई। कान्त को वह प्रारम्भ से ही जानती थी, अपमानित होने पर कभी किसी के यहां वह एक क्षण भी नहीं टिक पाया, जीवन पर्यन्त उस से मन मुटाव उस व्यक्ति का हो जाता है। आज वही व्यक्ति उस के घर में टिका रहा, यह कम आश्चर्य की बात नही थी। उस से भी बढ़ के आश्चर्य की बात एक और थी कितनी भी बड़ी समस्या के रहने पर बड़े से बड़े दुख के पश्चात भी, उसके मुख पर चिन्ताओं का लेश मात्र भी चिन्ह दिखाई नहीं पड़ा यहां तक कि पिता की मृत्यु पर भी केवल एक—"अच्छा ?" के अतिरिक्त और कुछ उसके मुख से नही फूटा, परन्तु उस के ठीक विपरीत, उस दिन उसे लगा मानो चिन्ताओं से अत्यधिक दुख से दो चार घण्टों में ही उस व्यक्ति का अन्तर तक झुलस गया हो। मुख पर छाई विषाद की कालिमा के अतिरिक्त जल की दो बूंदें सुखाने के प्रयास में वे नीचे लुढक नही पाई थी, उस सहनशील व्यक्ति की आंखों में आंसू आना सरल बात नहीं। न जाने जल की उन दो बूंदों के निर्माण में उस का कितना लहू पानी बन हृदय में जुटा रहा होगा, वहां स्थान न रहने पर जब वह छलक आया है तो किसी छोटे मोटे दुख के कारण से वह नहीं हो सकता। कब कितनी व्यथा लिये उस व्यक्ति की आंखें

लग गई इसका ज्ञान उसे नहीं था, सहसा उसे कान्त की एक दिन की बात स्मरण पड़ी—"सची ! जो लोग मुझ से प्यार की बात नहीं कह पाते, उन का प्यार उतना ही बड़ा होता है।"

तब उसने कहा था—"रहने दो व्यर्थ में मुझे बनाने की चेष्टा मत करो, तुम मुझ से कितना प्यार करते हो मैं सब समझती हूं।"

"नहीं सची ! तुम्हारे अतिरिक्त इस जीवन में और किसी को इतना चाह पाऊंगा इस की आशा मुझे नहीं, और फिर मैं जानता हूं तुम मेरी हो केवल मेरी, इसी कारण तुम से कह नहीं पाता, जर्मनी में जिस मकान में मैं रहता था, उस की मालकिन की एक लड़की थी कैथाराइन, तुम तो जानती हो, वहां बात बात में प्रेम व्यक्त करने का स्वभाव लोगों में रहता है। बड़ी कठिनाई से उसे समझा पाया कि मुझे तुम से कितना स्नेह है। तुम्हारे विवाह करने की शंका उस ने प्रकट की, तभी जान पाया कि तुम्हारे विवाह करने पर भी किसी अन्य को उस रूप में नहीं देख सकता, "उस दिन मन ही मन पुलकित होने पर भी लजा कर उस ने सिर झुका लिया था," मन में विचार उठा तो क्या यह व्यक्ति इसी कारण ? दूसरे प्रश्न ने मानों उसे झिंझोड़ दिया हो, कान्त के पास जा उसके बालों में हाथ फेरने लग गई—सहसा स्पर्श अनुभव करने से कान्त चौंक उठा, "ऐं, कौन ?" लाल लाल नेत्र सुचित्रा पर डाल बोला "कौन सची ! क्षमा करना ज्वर के कारण जा नहीं सका आज भर अपने घर टिक जाने दो प्रात: ही चला जाऊंगा।"

कान्त की बात सुन सुचित्रा के मन में आई सारी कोमल भावनाएं लुप्त हो, बोली मैंने तो आने के लिए नहीं कहा। यह ज्वर कब चढ़ा ?"

"सन्ध्या से ही हो गया था। एक बात कहूं सची। तुम चाहे किसी से भी विवाह करो परन्तु उस विनोद से नहीं। वह व्यक्ति अच्छा नहीं है।"

कान्त यदि "विनोद अच्छा व्यक्ति नहीं है उस से सम्पर्क मत हो। केवल इतना ही कह देता तो सुचित्रा का खिन्न मन ठीक हो जाता परन्तु "किसी से भी विवाह करो" का अर्थ उस ने समझा कि कान्त को छोड़ चाहे कोई भी हो यही सोच वह बिगड़ उठी—"अच्छा हुआ तुम ने अपने ही मुख से कह दिया अन्यथा तो मैं कहने वाली थी, तुम चिन्ता मत करो—मैंने पिता जी और माता जी को भी कह दिया है रही विनोद के बुरे भले होने की बात वह केवल तुम्हारी डाह है, और कुछ नहीं।"

"देखो सची। मैं बाल्यकाल से तुम्हें जानता हूं, गोद में टांगे फिरा हूं, पीठ पर लादा है, मारा पीटा भी है, तुम्हारे नखूनों से मुंह भी नुचवाया है। नई वस्तु का आकर्षण तुम्हारे समक्ष कम नहीं होता आवेश में विचार हीन हो तुम कुछ भी कर सकती हो, परन्तु मेरी एक बात मान लो, यह विवेक खो, सुलझाने का प्रश्न नहीं है।"

अपनी भलाई बुराइ सोचने की बुद्धी मुझ मे है, न रहने पर बात बात में जंगली पने पर उतर आने वालों के पास नहीं आऊंगी।

शान्त स्वर में कान्त ने कहा-"तुम्हारी किसी बात से आश्चर्य मुझे नहीं होगा। मेरे जंगली पने की बात तुम्हें दिखाई दे गई परन्तु मेरा जो अपमान किया गया वह तुम्हें दिखाई नहीं दिया।"

तुम्हारा तो वह अपमान हुआ, उस दिन तुम्हारी मां ने मेरे घर आये रहने पर भी विनोद बाबू को थप्पड़ जड़ दिया, सो भी केवल इतना, कहने पर कि पति से छोड़े देने पर भी उसी घर की रोटियां खा रही हो, यह क्या... .....

झपट कर कान्त उठ खड़ा हुआ, तड़ा—तड़ जंगली की भांति उस ने सुचित्रा की पिटाई करनी आरम्भ कर दी। चीख पुकार सुन दयाल बाबू और पार्वती दोनों आ पहुचे, सुचित्रा को छुड़ा दयाल बाबू बोले-क्या हुआ कान्त?

"इसी से पूछ लो बाबू जी !" फिर सुमित्रा को सम्बोधित कर बोला "उस दिन विनोद ने मां से क्या कहा था मैं जानता नहीं, परन्तु मेरी मां किसी पर अन्याय नहीं कर सकती यही समझते हुए मेरे ही सम्मुख मां को जंगली कहने का दुस्साहस तुम्हारा क्यों कर हुआ ?

कान्त की बात सुन कर पार्वती भी आपे से बाहर हो गयी। "ओ री अभागिन ! कलमुही, तेरा यह साहस !" कह वह सुमित्रा पर टूट पड़ी, दयाल बाबू ने छुड़ाना चाहा, उन्हें आड़े हाथों ले बोली—"तुम्हीं ने तो इसे सर पर चढ़ा रखा है। हरामजादी। गुरूजनों को जंगली कहती है, तेरी यह मजाल।"

"अरे छोड़ो भी, छोड़ो भी। कहते-कहते दयाल बाबू ने लड़की को छुड़ा कर पृथक किया—क्रोध से कांपती हुई सुमित्रा ने मां से कहा "जिस के गुरु जन हैं जब वे ही मेरे कुछ नहीं लगते तब मेरे भी गुरूजन मेरे नहीं हुये।

लड़की को ताड़ते हुए दयाल बाबू बोले—"छी, सचि ! ऐसी बात नहीं बोलते।"

पार्वती ने फिर बिगड़ कर कहा—"फिर तूने मुंह चलाया, मैं कहती हूं, खैर चहाती है तो चुप हो जा।"

नहीं चुप नहीं रहूंगी। "क्रोध में फुंकारते हुए सुमित्रा ने कहा।"

पार्वती को सम्बोधित कर कान्त ने कहा—"रहने दो मां !" फिर सचि की ओर मुंह कर बोला" तुमने आज मां का अपमान किया है, मेरे सिर पर इस प्रकार लात मारने से तुम्हें किया मिला, मैं नहीं जानता, परन्तु एक बात समझ लो मां का अपमान करने वाली से मेरा समझोता नहीं हो सकता।"

मुंह बिसोर सचि ने तड़ाक से उत्तर दिया—"तुम से समझोता करने के लिए मैं उतावली नहीं हूं। जाते-जाते एक और बात सुन

जाग्रो जिस से डाह कर तुम्हारे मन में श्राग लगी है उसी से मेरा विवाह होगा तुम से नहीं।"

जाते-जाते कान्त पलट पड़ा, गम्भीर स्वर में बोला—"तू मुझ से ही विवाह कर यह मैंने कभी कहा नहीं, इच्छा अवश्य थी, अपने सुख के लिए तेरा सुख मैं छीनना नहीं चाहता, फिर भी मैं तुझ से बड़ा हूँ सचि। तुझ से न जाने कितना दुलार किया है, जब तू छोटी सी थी, तब तो विवाह की बात भी मेरे मन में नहीं उपजी थी, फिर भी तुझे पिटने से बचाने के लिए कितने ही अपराध अपने सिर पर लिए हैं, आज तेरे समक्ष खड़ा तेरे ही सिर पर हाथ रख सौगंध खा कर कह सकता हूँ किसी स्वार्थ के कारण नहीं, तेरे सुख के कारण तुझ से बड़ा होने पर भी भिक्षुक के रूप में केवल एक याचना कर रहा हूँ, भगवान के लिए उस व्यक्ति से दूर रह सचि। मेरी बात छोड़ दे, बाबू जी और मां का ध्यान कर। मुझे दुख देने की, स्वयं दुख के गार में मत गिर सचि। मुझे तो जितना दुख तू दे सकती है दे दिया, इस से अधिक दुख की बात मेरे लिए और कोई नहीं हो सकती।"

उस समय सुमित्रा के सिर पर भूत चढ़ा था, मुख विकृत कर बोली—"अपने परपंचों को तुम रहने दो, किसी के भी दुख-सुख देखने का अवकाश मुझे नहीं। मेरा विवाह विनोद से होगा, विनोद से ! जितनी बार चाहे सुन लो।"

दो क्षण को कान्त चुप खड़ा रहा—ठीक है सचि और कुछ में नहीं कहूँगा एक बात ध्यान रख मां और बाबू जी के न रहने पर भी तेरे लिए मेरे घर में सर्वदा स्थान बना रहेगा। जब तूने हट पकड़ ली है, तो एक बात समझ ले और उसे भी समझा देना, दूसरों की भांति तुझे समझ कर उस का चलना नहीं हो सकता, तनिक सी ज्यादती भी उसे बचा नहीं सकेगी। और एक बात, बड़ा होने के कारण तुझे आज्ञा देता हूँ, विवाह के बिना तेरा इस घर से निकलना नहीं होगा, निकल

जाने पर तुम दोनों को ढूंढ निकालने में समय लग सकता है, परन्तु कहीं भी रहने पर छोड़ूंगा नहीं, उस समय तुझे गोद में खिलाया है, यह बात भी मुझे ध्यान नहीं रहेगी। ममता व स्नेह का मुझ में लेश मात्र भी शेष नहीं होगा, सच जानना सचि! तुम लोगों के टुकड़े इन ही हाथों से कर के कुत्तों को फेंक दूंगा।"

"तुम लोग सब मेरे शत्रु हो, शत्रु, मुझे मार डालना चाहते हो मैं पुलिस में रिपोर्ट लिखा दूंगी। देखती हूं तुम लोग मुझे कैसे रोकोगे।"

क्रोध रहने पर भी कान्त को हंसी आ गई—"तू सचमुच पागल है सचि पुलिस से डरने वाला कान्त नहीं है, जा अब जाकर सो जा। अगामी झूठ मूठ मिट गई।"

मारे क्रोध में सुमित्रा अब तक चोट की बात सोच नहीं पाई थी। कान्त की सहानुभूति से उसका रुदन फूट पड़ा—"अब भी पेट नहीं भरा तो मार डालो, गला घोट दो, शान्ति तुम्हें पड़ जायगी मेरा क्या है मर ही जाऊंगी ना! तुम्हारा तब तो मन भर जायगा।"

इस प्रकार लड़की को रोते देख दयाल बाबू विचलित हो उठे, उन्हें कुछ न कहने दे, हाथ पकड़ पार्वती उन्हें बहार खींच ले गई।

हंस कर कान्त बोला—"पिटने का काम करेगी तो फिर भी पिटेगी।"

"लो मारो न खूब मारो तुम्हें भी सोगन्ध है जो कसर न निकालो तो! "कह कान्त का हाथ पकड़ उस ने अपने मुंह पर मारना आरम्भ कर दिया।

हाथ छुड़ा स्नेह से कान्त ने उसका सिर वक्ष में भर लिया "पगली तुझे भी तो पिटने में आनन्द आता है! "कह उस की ठोडी पकड़ मुख के ऊपर करते हुए कान्त बोला—" तुझे क्या सहज में मार पाता हूं, बचपन में पिटती थी तो रोता था मैं, तेरे कारण।

क्या मुझे सर्वदा दुख ही भोगना पड़ेगा ? कहते कहते कान्त का कंठ भर आया।

नटखट पने से सुचित्रा ने हां में सिर हिला दिया—।

दीर्घ निश्वास छोड़ कान्त बोला "अच्छा भोग लूंगा।" फिर बात पलट कर कहा—"चल भोजन कर ले सायं से भूखी पड़ी है।"

सुमित्रा धीरे से सिर लटकाए बोली—"तुम भी खाओगे।"

"अरे तू चल तो सही!" साथ ही पार्वती को पुकार बोला—"मां, ओ मां हमारा भोजन यहीं दे जा।"

भोजन करते समय कान्त ने स्नेह से सुमित्रा के सिर पर हाथ रख पार्वती से कहा—"देख लिया मां! जब कभी भी यह लड़ती झगड़ती है तब मुझ ही से मानता हूं।" कहते कहते एक ग्रास उसने सचि के मुंह की ओर बढ़ा दिया, नटखट पने से सुमित्रा ने उस की उंगलियां काट खाईं।

"ओ री चुड़ैल!" कह हाथ खींच कान्त बार बार झटकने लगा—"देख लो मां कर रही है ना पिटने के काम, मैं सोचता हूं न जाने इस पागल लड़की को कब समझ आएगी।"

जीभ निकाल सुमित्रा ने कान्त का मुंह चिढ़ाया, इस प्रकार भोजन करते उन्हें रात्रि के दो बज गए।

भोजन समाप्त होने पर कान्त उठ खड़ा हुआ दयाल बाबू को सम्बोधित कर बोला—"बाबू जी! अब मुझे आज्ञा दे दीजिए। प्रातः काल न्यायालय में उपस्थित होना है। मां मेरी बाट जोहती होगी। और हां सचि। परसों ही मैं आऊंगा। अब कोई पागलपन मत करना समझी।"

"करूंगी!" कह सुमित्रा हंस दी।

उस की कही बात सच हो जायगी इस की आशा उसे स्वयं नहीं

थी, बिछौने पर पड़ते ही उसने अपनी भूलें देखनी चाहीं परन्तु उस के विपरीत उन बातों के मध्य कब उस को क्रोध चढ़ आया, उसका मन आत्म ग्लानि से भर उठा उस का पता उसे नहीं चला, कान्त के व्यक्तित्व के नीचे उस का अपना व्यक्तित्व दब कर रह जाता है, परसों वह फिर आएगा, उस के आने से पहले ही उसे कुछ करना होगा। झटपट वह उठ बैठी, अटैची उठा कपड़े समेट उस में रख वह धीरे से निकल पड़ी, विनोद के घर पहुँच द्वार जा खटखटाया, विनोद पूर्णतया निद्रा से छुटकारा नहीं पा सका था—बाहर आ सुमित्रा को देख कर बोला—"कौन सुमित्रा रानी ! क्यों क्या बात है ?"

मारने पीटने की बात कह सुमित्रा ने कहीं भी चल देने की बात कही, पन्द्रह बीस मिनट पश्चात तैयार हो कर सुमित्रा को लिए विनोद स्टेशन जा पहुँचा।

सुचित्रा के यहां से लौट आने पर बुखार में ही कान्त न्यायालय पहुँचा था जागरण और थकावट के कारण ज्वर अधिक हो चला था,इसी कारण जिस समय वह गांव पहुँचा, उस समय ज्वर के कारण उस की आंखें जल रहीं थीं, सारा शरीर भट्टी की भांति फुक रहा था। घर पहुँचते ही दयाल बाबू से सुमित्रा के चले जाने की बात सुन अकस्मात वह कुछ कह न सका, सुखदेई से बोला—"तुमने मुझ पर बहुत बड़ा अन्याय किया है मां। उस दिन उस घर में तुम्हारा जो अपमान हुआ, तुम ने बताया तक नहीं, जो कुछ तुमने किया ठीक ही किया, परन्तु मां अब इस घर में उस लड़की का नाम भी मैं सुनना नहीं चाहता ... नहीं, नहीं मां एक भी बात सुनने का धैर्य मुझ में नहीं है, तुम्हारा यह लड़का किस धातु का बना है, इसे तुम से बढ़ कर दूसरा कोई नहीं जानता। "केवल इतना कह दयाल बाबू की ओर देखे बिना वह सीधा अपने कमरे में जा कर पड़ रहा।"

सुमित्रा को वह बाल्यकाल से जानता था, उस के स्वभाव के

कारण ही पिछली रात, इतनी बड़ी बात, इतना बड़ा अपमान, वह पी गया था। मां के लिए जो शब्द उस ने सुने थे उन्हें किसी भी मूल्य पर सहता नहीं. इसी कारण सुमित्रा को इस घर में वहू बना कर लाने का निश्चय भी उस ने एक प्रकार से कर लिया था, परन्तु उस की वह बातें मन की नहीं हैं, यही सोच एक अवसर उसे और दे डालने के लिए वह थोड़ा नम्र हो गया था, केवल इस आशय से कि जिस दिन वह इस बात का आभास पा जायगी उस दिन मां के चरण पकड़ क्षमा मांगने से वह नहीं चुकेगी। दिन भर कचहरी में भी वह सुमित्रा की बात सोच रहा था। इस प्रकार घर छोड़ कर चले जाने की बात ने उसे पत्थर की नाई एक दम कठोर बना दिया। इतना होने पर भी सुमित्रा बचपना करेगी इस की आशा उसे न थी. उसको सब बातों में भागने की योजना दिखाई पड़ती। इतनी बड़ी चतुराई कर उस पागल बना वह इस प्रकार चली जायगी यह बात उसकी कल्पना से भी परे की थी-न सही उस के क्रोध की दुख की बात, यदि उस ने सोचनी नहीं चाही परन्तु इतना बड़ा लज्जा प्रद कर डालने पर घर की आबरु, सम्बन्ध निश्चित हो जाने के कारण उस के अपने कुल की मर्यादा की बात सोचनी चाहिये थी।"

कुल मर्यादा का ध्यान आते ही उसे मां की बात समंण हो आई-"तू विमल की बात करता है कान्त, स्वसुर की कुल मयर्दा के लिये तो संसार भर होम कर सकती हूं, उसी को ले तू भी कभी मुझ से मत चिढ़ जाईयो।"

सर्पनी की भांति कुल मर्यादा की रक्षा करती उस की विमाता की क्या दशा हुइ होगी, सोच वह बावला हुआ जा रहा था, तभी सुख-देई ने कमरे में प्रवेश किया, मां के मुख पर बीती घटना के चिन्ह कान्त ने जान लेने चाहे, परन्तु उसका लेश मात्र भी प्रभाव मुख उसने देखने को नहीं मिला, स्नेहयुत्त' सहज मुस्कान से ढका प्रशान्त मुख

मंड़ल ! मानो इन सब छोटी बातों से उसे कोई तात्पर्य नहीं, मानो सुमित्रा जैसे जीव के किसी भी कृत्य से उसके स्वसर की कुल मर्यादा पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। मन ही मन मां को प्रणाम कर बोला—"क्या बात है मां ! सचि की बात करने आई हो ?"

मधुर हंसी हंस सुखदेई कान्त के सिराने जा बैठ गई, स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेरती हुई बोली "हां ! आई तो हूं" परन्तु बेटे की आज्ञा के कारण दुस्साहस कर नहीं पती।"

कान्त ने अब तक सोचा भी था कि उस के उन शब्दों में कितना आवेश छिपा था, और उसकी उस मां की तीक्ष्ण दृष्टि से वह छिपा नहीं रहा, इसी कारण बिस्तरे पर उठ कर बैठ गया, दीन स्वर बोला—"अपने लड़के के अनुरोध को 'आज्ञा' कह उसे नरक का भागी मत बनाओ मां।"

"बहुत हुआ रे ! तेरे मन का दुख मैं समझती हूं कान्त ! परन्तु बेटा डरने के कारण ही कहीं यह भी भूला जाता है कि मां की बात पर आलोचना करने का अधिकार पुत्र को नहीं रहता।"

"जानता हूं मां ! परन्तु तुम्हारा अपमान तो मैं किसी प्रकार भी सह नहीं पाऊंगा, यह भी यदि पाप है तो इस का भागी मैं हूं।"

"जिस ने तेरी मां का अपमान किया था, उसे प्रयाप्त दंड मिल गया था कान्त, उधार रखने वाली सुखदेई नहीं है—रही बहू……"

कान्त बीच में ही बोल पड़ा—"हां मां ! उसे इस नाम से मत पुकारो।"

"चल नहीं पुकारूंगी ! जब तू छोटा था, तो तेरे पिता तुझे लिये आये थे तब तुझे गोद में लेने से ही मेरी प्रसन्नता का ठौर नहीं रहा था, परन्तु मिथ्या अहंकार के कारण तुझे पुनः लौटा दिया था, जानता है तब तूने क्या किया था, मेरे मुंह पर सिर पर कितने ही

थप्पड़ मारे, गोद मे ही मचल मचल कितनी ही लातें करसाई थी, तेरी उस बात को यदि अपमान समझती तो आज क्या तेरे समक्ष बैठ पाती, नहीं कान्त झूठे आत्म सम्मान के कारण बीस वर्ष तक लड़के का मुख देख नहीं पाई। अब उन्हीं कारणों से वहू देखने की इच्छा लिए मर नहीं सकती।"

"पर मां! जितना अबोध तुम उसे समझती हो, उतनी अबोध वह नहीं है, इतना कुछ होने पर घर छोड़ कर चला जाना कोई सरल बात नहीं है।"

सुखदेई हंस दी—"सरल बात होती तो वह करती भी नहीं, नारी होने पर उसकी मनोस्थिति मुझ मे छिपी नहीं है।"

वह और तेरी मां एक ही मिट्टी की बनी है, कान्त! इसी कारण सम्बन्धी जी से सुनते ही समझ गई, तेरे सम्मुख इस प्रकार मस्तक नत करने को अपमान समझ वह चली गई है, उस समय सोचने समझाने योग्य बुद्धि शेष नहीं रह जाती, रह जाती केवल एक बात, मेरा अपमान! और मैं यह सब क्यों कर सह पाई। इनके अतिरिक्त और कुछ नहीं।"

"परन्तु मां जिस के साथ गई है, वह किस प्रकार का व्यक्ति है यह तुम नहीं जानतीं। जानता हूँ मैं।"

"उसे जानने की आवश्यकता भी मुझे नहीं है दूसरों की बात जान ने के लिए तेरी मां उतावली नहीं है, अपनी बहू के बारे में एक बात जानती है वही प्रयाप्त है। उसकी ओर आंख उठा कर देखने का साहस स्वयं ब्रह्मा में भी नहीं है, वह कल का छोकरा तेरी बहू को क्या समझेगा, उस के लिए बहुत बड़े तप की आवश्यकता रहती है। तू मेरी एक बात लिखरख कलंक लगाने योग्य कोई भी कार्य बहू के हाथ नहीं बन पड़ेगा।" और साथ ही मानो अपने को सम्बोधित कर कह रही हो "इतनी आयु बीतने पर तेरी मां ने किसी का मन नही

दुखाया, किसी का अनादर नहीं किया, फिर इस उमर में उस का मन विधाता नहीं दुखाएंगे।"

कान्त ने जिस विश्वास की आभा मां के मुख पर विद्यमान देखी उस के सम्मुख कुछ कहने को उस का साहस नहीं पड़ रहा था। तो भी बल पूर्वक बोला—"तुम से क्षमा चाहूंगा मां ! उस से मेरा विवाह नहीं हो सकेगा, तुम भी उसे अपनी बहू समझना छोड़ दो।"

"तू मेरी बात सुन तो··· ·····।"

"मेरी यह विनती मान लो मां ! तुम्हारा यह पुत्र कितने दिन जिये कहा नहीं जा सकता। और कुछ न सही दया समझ ही ·····" कहते-कहते कान्त का कण्ठ अवरुदध को गया।

कान्त की बात ने सुखदेई को चौंका दिया, कान्त के सिर पर स्नेह से हाथ फेर वह उसे समझाना चाहती था, परन्तु सिर पर हाथ रखते ही ज्वर का अनुभव कर बोली—"अरे जो निर्भाग यह ज्वर कब से पाल लिया, एक बार क्या मुंह खोल बता नहीं सकता था।" साथ ही वह औषधि लेने चली गई। राह में उस के मन में एक बात समा गई कि केवल ज्वर के कारण, भावुकता के आवेश में वह बातें कान्त ने नहीं कही, बहू के दुराचरण से लड़के के हृदम पर कठोर आघात पहुंचा है, जिसे सम्भवतः वह किसी प्रकार भी क्षमा नहीं कर पाएगा, इसी कारण जिसे मन ही मन बहू कह वह घर में ले आना चाह रही थी, उस के लिए इस घर के द्वार सर्वदा के लिए बन्द हो गए, तब एक प्रकार से रोते हृदय से वह कह उठी—"अरी हतभागिनी तूने मेरे लड़के को न पहचान कर जो सर्वनाश कर लिया है, वह तो तेरी इस सास की आज्ञा से भी टाला नहीं जा सकता।" आंचल से अश्रु पोछ वह लड़के के पास जा चुपचाप बैठ रही।

ज्वर की तीव्रता के कारण कान्त रात्रि भर बड़बड़ाता रहा

"मुझ ठीक हो लेने दो। मैं उन दोनों को खोज निकालूंगा" मार डालूंगा, दोनो को मार डालूंगा। "तुम देख लेना मां! मैं उस का मुंह भी नहीं देखूंगा।"

ज्वर का प्रकार देख, सुखदेई ने किसी के द्वारा, पाठशाला के डाक्टर को बुला भेजने के लिए उठकर जाने लगी। मां की धोती का पल्ला पकड़ मचले हुए बालक की भांति कान्त बोला, "नहीं मां! तुम कहीं मत जाओ, तुम्हारे जाने पर सरलता से मर भी नहीं पाऊंगा।"

आठ दस वर्ष के बालक की भांति कान्त का सिर छाती पर रख बोली—"क्यों रे मुझे डरा रहा है।"

कान्त मौन रहा उसके बालों को सहलाते हुए सुखदेई ने पुनः कहा—"बहुत दुख हो रहा है कान्त।"

"तुम ही बताओ मां! मैंने उस का क्या बिगड़ा था जो इस प्रकार वह मुझे डुबो गई।"

बात टालने के अभिप्राय से सुखदेई बोली—"आंख मूंद सोने का प्रयत्न करो बेटा।"

"कैसे चुप हो जाऊं मां मेरी छाती के बीच जो अग्नि जल रही है उसे कैसे शान्त करूं, सच जानो मां! इस से अच्छा तो वह चांडालनी मुझे मार डालती तो अच्छा था।"

कान्त सर्वदा से अल्प भाषी रहा है,, अपने हृदय के उद्गार वह सहज रूप से कह नहीं पाता, एक प्रकार की लज्जा सर्वदा उसे घेरे रहती है, इसी कारण प्रायः बहुत भावुक हो जाता है, परन्तु जो कुछ आज उस के मुख से निकला है वह सहज भावुकता नहीं है, ज्वर की वेदना से अधिक सुमित्रा को ले जिस पीड़ा का अनुभव उस का लड़का कर रहा है, उसी भय से सुखदेई का मन कांप उठा। ज्वर तो चला जायेगा परन्तु उस के जाने पर भी जिसे आना चाहिये था वह भी

कभी लौटेगी ? इस में स्वयं सुखदेई को संशय था। यह ठीक है, संध्या को जो बातें उस ने कान्त से कहीं थीं, उन पर उसका पूर्ण विश्वास था, एक ही भेंट में लड़के के प्रति उस के प्रेम की थाह वह पा गई थी, उस के हाथों पाप नाम का कोई कार्य भी नहीं हो सकता, इस का भी विश्वास उसे था। आवेश में वह जो कह बैठी है, उसे भूल समझने में भी समय नही लगेगा, परन्तु उस को भूल मान लेने पर भी लोग तो मानने को प्रस्तुत: नहीं हो जायेंगे। लोगों की चिन्ता उसे नहीं परन्तु उस का अपना लड़का क्या कभी उसे क्षमा कर पायेगा ? केवल भूल समझ क्या वह उसे इस घर में पांव रखने दे सकता है।"

सुमित्रा को प्रथम बार देखते ही उस सोने की प्रतिमा को अपने घर में उठा लाने के मोह का त्याग सुखदेई किसी प्रकार भी त्याग नहीं कर पा रही थी। जब साधारण ढ़ंग से उस के चरण छू सुमित्रा ने कहा था—'मां ! तुम्हें देखने को तो मेरी आंखें तरस गई थी, कान्त से उस की कितनी बातें उस ने सुनी थीं बोली—"रहने दो बेटी। बातों में इस बुढ़िया को मत ठगो। मिलने आई हो कान्त से—नाम ले दिया मेरा।"

सहज लज्जा की लालिमा उस के मुख पर फैल गई थी—"तुम्हारे बिना उन का क्या मूल्य रह जाता है मां। जिस दिन तुम्हारा पता चला, उस दिन तुम्हारे पास रह कर तुम्हारी सेवा मैंने करनी चाही थी, परन्तु दुर्भाग्य मेरा ! वह इन से सहा नहीं गया, दौड़े आये कहीं मैं उन की मां न छीन लूं।"

"तो क्या हुआ बेटी अब मां की सेवा पेट भर कर लेना।"

सुमित्रा का सुन्दर मुख सजीव हो सुखदेई के कल्पित नेत्रों के समक्ष आ उपस्थित हुआ। अनायास ही उस के मुख से निकल गया—"यह तूने क्या किया बेटी ! इस दुख से तो तेरी मां भी तुझे न बचा सकेगी।"

मां की बात कान्त के कानों में भी पड़ गई बोला—"उससे तुमने इतनी ममता क्यों पाल ली मां। तुम्हारा भी क्या दोष है मैं भी······ रहने दो मां कुछ नहीं कहता परन्तु अब तुम व्यर्थ में उस के लिए दुख मत पाओ।"

पन्द्रह दिन पश्चात मृत्यु के द्वार तक झांक, कान्त ठीक हो गया। उसे स्वस्थ देख एक दिन सुखदेई ने कह ही दिया—"एक बात कहूं कान्त।"

"कहो मां!"

"यदि मेरी बहू गंगाजल की तरह पवित्र हुई, फिर तो तुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।"

"पाप पुण्य की ही बात नहीं होती मां! लोकाचार, "लोक लाज, बदनामी, भी तो होती है।"

"इन की चिन्ता तू कब से करने लगा रे! इन सब परपंचों के कारण क्या बहू को छोड़ देगा ?"

"देखो मां! जो कुछ तुम करोगी, तुम्हारा हाथ मैं नहीं पकड़ूंगा, परन्तु तुम्हारे चरणों की सौगन्ध खा कर कहता हूं, मुझे ही वह नहीं पा सकेगी।"

लड़के के मुख की ओर देखे बिना ही सुखदेई समझ गई कि बेटे की बात में किसी प्रकार भी बदल नहीं सकती। दीर्घ निश्वास छोड़ वह दो क्षण चुप खड़ी रही फिर बोली—"अच्छा कान्त आवश्यकता होने पर तो मैं उस के पास जा सकूंगी ?"

"जा क्यों नहीं सकोगी मां! तुम्हारा आदेश होने पर जाना तो मुझे भी पड़ेगा, परन्तु उस से अधिक आशा तुम मत रखना अन्यथा तो बेटा खो बहू ही पल्ले पड़ेगी।"

गम्भीर स्वर में सुखदेई पूछ बैठी—"अच्छा कान्त यदि उस के बिना मैं ही नहीं रह पाऊं तो ?"

"तुम्हारी दुहाई है मां! तुम भी क्या अपने इस लड़के का गला उतारने पर तुली हो।"

"कैसे रे! बहू को साथ रखना क्या गला उतार देना होता है?"

"प्राणों से भी अधिक मां को प्यार करने वाले पुत्र को छोड़, एक बार देखी हुई बहू के साथ रहना, क्या गला उतारना नहीं होता मां?"

"एक बार देखी हुई, 'यह तो तू कहता है ना! उस से पूछ जो उसे जन्म-जन्म से देखती आई है, उठते-बैठते सोते-जागते, जिस ने सदैव अपनी लक्ष्मी-सी बहू को ही देखा है। जानता है जिस दिन उस ने मेरी देहली पर पांव रखा, उसी दिन करतारा जाट सात हजार रुपये लौटा गया, उस से क्या पैसा आता? वह तो मेरी बहू का ही प्रताप था, आंख उठा कर भी देखने की आवश्यकता मुझे नहीं पड़ी, समझ गई मेरी लक्ष्मी बहू आ गई है, तू क्या जाने उसे भेजने को क्या मेरा मन करता था। जी चाहा सम्बन्धी से कह दूं, 'जाओ सम्बन्धी जी, जो मेरी चीज थी मैंने रख ली।' अच्छा होता उस दिन रख लेती तो, यदि जानती यह होगा, तो भेजती भी नहीं, मेरी बहू लक्ष्मी है, लक्ष्मी: कान्त! इसी से तो उस की ओर आंख उठा कर देखने का साहस तेरी मां में भी नहीं पड़ा, उस के मुख पर क्या नजर टिक पाती है? देख लेना, देश भर में उस जैसी और कोई नहीं मिलेगी।"

वेदना से कान्त की छाती ऊपर तक भर आई, उस की वह पीड़ा, स्वयं अपने से अधिक मां के लिए थी जो अभागिन अनजाने में केवल एक बार देख लेने के पश्चात ही इतना स्नेह पाल बैठी है। उस की वह कठोर दिखाई पड़ने वाली मां कहां है? कहां है वह सुखदेई?? जिस के सम्मुख बड़ों-बड़ों का रक्त नसों में जम कर रह जाता है। कौन कहता है वह वजर की बनी है? कौन कहता है उस के पास

हृदय नहीं है ?? आज यदि वह उस के रिसते हृदय को देख नहीं पाते तो ???"

प्रत्यक्ष में बोला—तुम इतना दुख पा रही हो जानता नहीं था मां। विश्वास रखो, यदि पाप कहा जाने वाला कोई भी कर्म उसके हाथों नहीं बन पड़ा होगा तो तुम्हारी आज्ञा की अवहेलना तुम्हारा यह लड़का नहीं करेगा।"

सुखदेई का मुख खिल उठा—"यही तो, यही तो बेटा। यही तो बड़प्पन है, तेरी मां तेरे कुल की मर्यादा नहीं जाने देगी, यह विश्वास तू रख।"

"हां मां ! मेरी मां जगदम्बा है, उस के हाथों से कभी कोई अन्याय नहीं हो सकता यह तुम्हारा लड़का जानता है और चाहे कोई न जाने।" कह मां के चरण छू कान्त चला गया।

प्रसन्नता से सुखदेई की आंखें बरस पड़ीं बोली—"लोग भी कितनी बड़ी मिथ्या बात कर देते हैं, अब कोई उन से पूछे सोतेला पुत्र क्या ऐसा होता है, यह तो मेरा अपना लड़का है, क्या हुआ इसका गर्भ इस जन्म में धारण नहीं किया तो, परन्तु पिछले में तो किया था।"

मां से कह आने पर कान्त को स्वयं अपने पर विश्वास नहीं था, यह ठीक है, सचि से उसे स्नेह था उस के दुख-सुख को अपना समझते हुए वह इतना बड़ा हुआ है। उस दिन भी एक प्रकार से अपना दुख बिसार सचि के दुख की कल्पना से ही वह मन ही मन अनुताप की पीड़ा से झुलसा जा रहा है। विनोद जैसी प्रकृति को व्यक्ति को देख सरलता से उस के दुख की कल्पना की जा सकता है। यदि विवाह ही वह करना चाहती तो केवल एक बार कह देने भर से ही वह उस से कुछ कहता नहीं, परन्तु उस ने तो वह किया नहीं, उस के ठीक विपरीत

रात्रि के अन्धकार में पापिष्टा की भांति भाग खड़ी हुई। विनोद का पता चला, उसे लौटा लाने का भी मार्ग खुला नहीं था। उस के हट्टी स्वभाव से कान्त भली प्रकार परिचित था, उसे आया जान, उसे ले वह कहीं और चल देगी, अथवा कचहरी पहुँच विवाह रचा लेगी।"

यही सब सोचते-सोचते पाठशाला तक जा पहुँचा।

—:o:—

१५

विमल चाहे कुछ भी रहा हो परन्तु वह एक चतुर वकील अवश्य था, मामा को फुसला, पिता से मिली सम्पत्ति मामा को बिकी दिखा, उसे अपने नाम करा लिया था। मामा को केवल इतना आश्वासन देना पड़ा था कि वह मुकदमे बाज़ी के लिए नहीं कर रहा है। उसके विपरीत पिता से पाई गई सम्पत्ति पर सोतेला भाई अधिकार न जमा कर बैठ जाये, केवल इसी कारण दीनू के बाग की बात उस ने वैसे ही जुड़वा दी थी, गंगा चरण को पढ़ कर सुनाते समय वह बात उस से छिपा कर रखी गई थी। यह सब हो जाने पर भी उस ने मामा को जाने नही दिया, गंगा चरण भी सीधे स्वभाव का था, वहीं टिक गया था। बहन को देखने को मन करता तो जाने की बात कह उठता तब विमल कहता—"और थोड़े दिन टिक जाओ मामा ! वहां जाने पर मां आने नहीं देगी।"

तब किसी प्रकार भी भानजे की विनीत प्रार्थना वह ठुकरा नहीं पाता इसी प्रकार वहां रहते उसे इतना समय बीत चला था। अनायास ही बहन की बुलाहट सुन वह सक पका गया, बिना कारण उस की वह बहिन बाप को भी नहीं बुलाती, और वह कारण भी होता है कोई बहुत बड़ा अपराध। इसी कारण बुलाने आये व्यक्ति

से उसने सारी जानकारी प्राप्त कर लेनी चाही—"के बात स हरिया ! सुखदेई तो राजी से ।"

"राजी स दादा ! बाहर खड़ी थारी बाट जोह रही स ।"

"के कहा ? वह के दिल्ली आई स ?"

"हां तले खड़ी स ।"

गंगा चरण बहन से सिंह की नाईं डरता था, क्रोधी बहिन के सम्मुख पड़ने के स्थान पर सिंह की खोह में चले जाना उस के लिए सहज था, सटपटा कर हरिया से पूछा—

"कोई खास बात स के ।"

हरिया ने पुनः सहज में "हां !" कह दिया ।

सुखदेई के सामने बिना जाये भी नहीं चल सकता, हां सलोचना को भेज क्रोध कुछ शान्त किया जा सकता है । यही सोच वह जाकर सलोचना के समक्ष उपस्थित हो गया ।

"देख तो बहू ! बाहर तेरी सास खड़ी है ।"

सलोचना मौलसरे (पति के मामा) और सास को भली प्रकार से पहचानती थी । किस कारण सास की सूचना उन्हों ने दी है, यही सोच और कोई दिन होता तो वह मन ही मन हंस देती, परन्तु उस दिन स्वयं भयभीत हुए बिना वह न रह सकी । बिना अपराध किए सास से स्वयं उसे डरने की आवश्यकता नहीं थी, परन्तु देवर के साथ जो मुकदमे बाजी चल रही है, उस में पति ने अवश्य ही कोई बहुत बड़ा षड़यन्त्र रचा होगा जिस के कारण सास का आना हुआ है, उस को ले, पति को कितना कुछ भोगना पड़ेगा यह भी उस से छिपा नहीं था, परन्तु कितना भी भय रहने पर पूज्नीय सास बाहर खड़ी रहे, वह बेटे की बहू के घर में पानी तक भी पीना नहीं चाहे, इस से बड़ी दुख दाई बात और क्या हो सकती है । उसी व्यथा से सलोचना ने जी भर रो लेना चाहा, सास बाहर खड़ी धूप में प्रतीक्षा कर रही

होगी यही सोच रोना भी उस का नहीं हुआ, झट से उठ कर बाहर निकल सास के सम्मुख जा उपस्थित हुई—"बाहर ही खड़ी हो मां। अपराध तुम्हारे लड़के ने किया है, दण्ड दे रही हो मुझे।"

सहसा बहू को देख सुखदेई के मुख से एक शब्द भी नहीं फूटा, सलोचना की सूखी काया, गहनों रहित शरीर देख उस की छाती के बीच जो हा हा कार मचा उसे उस के अन्तर्यामी के अतिरिक्त और कोई सुन नहीं पाया, परन्तु बात समझने में उस की बहू को समय नहीं लगा, दो क्षण पश्चात हीं बहू के सिर पर हाथ रख बोलीं—"देखती हूं उस अभागे ने अपने साथ तुझे भी डुबो दिया और तू भी इतनी बावली है, एक छल्ला तक नहीं रखा।"

"तुम्हारा आशीर्वाद चाहिए मां। तुम-सी सास पा जाने पर गहनों की आवश्यकता तुम्हारी बहू को नहीं रह जाती।"

"नहीं रह जाती सो तो हुआ बहू, परन्तु मैं पूछती हूं तेरे गहनों को उस ने क्या समझ कर हाथ लगाया, और तूने क्या समझ कर दिये। तुम ने क्या मुझे मरी समझ लिया है?"

"ऐसी अशुभ बात क्यों कहतीं हो मां। किसी प्रकार यह जान लेवा मुकदमा समाप्त हो जाय यही मनाओ, तुम्हारी बहू के पास तो बहुत हो जायेंगे।"

"कहती क्या है, मुकदमे की समाप्ति की बाट देख रही हो, तू क्या यह सोचती है यह समाप्त हो जायगा, विमल का पाला मुझ से पड़ा है, किसी और से नहीं।"

"अब यहीं खड़ी धूप में तपोगी, भीतर चल शान्ती से बेटे बहू को कोस लेना।"

"नहीं कोसना मैं नहीं चाहती बहू, कोई भी मां अपने बेटे बहू को कोसती नहीं, आशीर्वाद देती है, भगवान ने यदि आशीर्वाद देने का

मार्ग मेरा बन्द कर दिया है, इसी से क्या उन्हें कोसने जाऊंगी।"

"पहले भीतर चलो मां! उसके पश्चात जी चाहे सो कह लेना।"

"नहीं बहू! मैं यहीं ठीक हूं, इस घर की चौखट भी मैं नहीं चढ़ूंगी।"

"तब ठीक है मां। मैं भी तुम्हारे साथ बाहर ही खड़ी हूं जाते समय साथ ही चलूंगी।"

"तू क्यों खड़ी रहेगी। मेरे साथ क्यों चलेगी? तेरा तो घर है।"

"जिस बेटे के घर में मां नहीं जा सकती, उस के घर में बहू किस प्रकार रह सकती है?"

सलोचना ने बात हंस कर कही थी परन्तु उस के कहने के ढंग से ही सुखदेई समझ गई थी कि अपनी हट से सलोचना डिगेगी नहीं, बोली—"चल फिर तुझे भीतर कोठरी में रोक आऊं।"

"रोक कर देख लो मां! तुम्हारी इस बहू को रोकने योग्य कोई दीवार आज तक भी नहीं बनी।"

"अरी चल बहुत पहलवान है ना! सूख कर ढांचा तो रह गया है, हड्डी ही तो दिखाई पड़ती हैं और देख तेरे कारण भीतर तो जा रही हूं, परन्तु वहां कुछ खा पी नहीं सकूंगी, पहले ही बताये देती हूं।"

"तुम चलो तो मां।"

भीतर पहुंचते-पहुंचते सुखदेई पूछ बैठी—"तेरा देवर आता है।"

"उन्हीं के सहारे तो दिन काट रही हूं मां उन के न रहने पर तुम क्या मुझे देख पातीं।" कहते-कहते सलोचना की आंखें भर आईं—

"जो कुछ बाल भोग तुम खाओगी माँ वह भी उन्ही का दिया हुआ है।"

आश्चर्य से सुखदेई बहू का मुंह देखती रह गई, सहसा दीर्घ निश्वास छोड़ बोली—"मेरा यह लड़का देवता है देवता ! न जाने क्यों अभागा दुख पाने को संसार में आ गया है।"

सुखदेई को कमरे में बैठा सुलोचना भोजन बनाने के लिए रसोइ गृह में पहुँच भोजन बनाने में व्यस्त हो गई, उधर गंगा चरण को ले सुखदेई बिगड़ उठी—"मैं पूछती हूँ, तुम्हारे मारे मुझे क्या कुएं तालाब में छलांग लगानी होगी भैया ?"

"पर बात कुछ होगी या सैंत-मैंत धमकायेगी।"

"तुम ने क्या समझ कर दीनू का बाग विमल के नाम कर दिया।"

"कूनसा "चुलकाने" वाला बाग।"

"हाँ हां ! चुलकाने वाला ! अब भोले बनने से काम नहीं चलेगा, तुम मामा भानजों ने क्या मुझे मरा समझ लिया है।"

"तेरी सूं सुखदेई ... !"

"रहने दो ! मैं तुम्हारी सौगन्ध पर तनिक भी विश्वास नहीं करती।"

"ना करती तो मन्ना कर, मन्ने के फाँसी तुड़वा देगी, जिब देखो खाव पाड़न ने आवे मानों हम सब इस की दबैल बसे हैं।"

नर्म पड़ सुखदेई बोली—"बुरा मानने की बात नही है भैया ! गरीब का गला कटे यह तुम भी नहीं चाहोगे। दादसरे ने वह बाग दीनू के बाप को दिया था, आज कचहरी ने विमल के पक्ष में निर्णय दे दिया।"

"इब तू ही बता मन्ने इस का के बेरा—मुझ ते बोला—मामा !

कहीं कान्त मेरे बाप की दी हुई सम्पत्ति न छीन ले। इसी से लिखा रहा हूँ, और बाग का तो उस में नाम तक भी नहीं था।"

मारे क्रोध के सुखदेई काठ हो गई—"उसे तुम नहीं जानते भैया। जानती हूँ मैं। और मैं ही उसे सीधा करूँगी।"

"देख सुखदेई मैं ....।"

परंतु गंगा चरण की वहीं छुट्टी हो गई सहसा कान्त का–स्वर सुनाई पड़ा भाभी! ओ भाभी। रसोई में हो क्या। अच्छा वहीं आता हूँ–"फिर रसोई से उसका स्वर पुनः सुनाई पड़ा—"देखा भाभी! कमल के शरीर पर यह कपड़े कितने सुन्दर दिखते हैं। और यह देखो तुम्हारे लिए क्या लाया हूँ।"

चुपचाप जा कर सुख देई रसोई के द्वार की ओट में जा खड़ी हुई, उस समय सलोचना कह रही थी—"यह क्या अंट संट उठा लाये लाल जी।"

"अरे इन्हें अंट संट कहती हो।"

"और क्या है? यह लोकेट, लौंग, बुन्दे, चार-चार साड़ियां इन सब का क्या होगा।'

"होगा क्या तुम पहनोगी! उठो यह पहले एक बार पहन कर दिखाओ, देखूँ कैसी लगती हैं।"

परिहास कर सलोचना बोली—"तुम्हारे भैया को तुम से डर कर रहना चाहिए, उनका घर सूना होने का डर है।"

"फिर तुम ने वही बात कही, सच कहता हूँ भाभी! ऐसी बातें करोगी तो बिना खाए भूखा प्यासा चला जाऊँगा। बताये देता हूँ।"

"उस की बात का उतर न दे सलोचना ने सास को पुकारा—"माँ ओ माँ यह देख लो अपने छोटे बेटे ....।"

झपट कर कान्त ने भाभी के मुख पर हाथ रख दिया—"मां आई हैं क्या ?" मुंह बन्द रहने के कारण सलोचना ने सिर हिला कर 'हां' जता दिया।

द्वार के भीतर आती सास को देख मुख पर की हंसी उसकी आंखों में आ गई—"तुम्हें मेरी सौगन्ध है भाभी ! मुझे चला जाने दो फिर मां को पुकार लेना। परन्तु उन्हें बताओ तो मेरा··· ।"

"सिर खाओ यही ना !" कहती कहती सुख देई भीतर आ पहुंची—"ओ रे पाजी ! अब तेरी चालाकियां पकड़ पाई हूं।" सलोचना को सम्बोधित कर कहा—"देख बहू जब कभी मैं पूछती हूं इतने पैसे तू क्या करता है। तो यह कह कर टाल देता है। तुम तो मेरी अन्नपूर्णा मां हो, तुम्हें धन की आवश्यकता नहीं, इसी से क्या मुझे भी नहीं होगी। क्या आवश्यकता रहती है, आज जान पाई हूं। और क्यों रे पाजी ! तू भाभी को गहने घड़वाकर देता है और दूसरा पाजी उन्हें बेच मुझ से मुकदमा लड़ता है।"

कान्त को चुप देख सलोचना बोली—"यही नहीं मां, बड़े अरसे से तुम्हारे यह देवता पुत्र अपने बड़े भैया को रुपये दे जाते हैं कहते हैं होने पर लौटा देना। उधार समझ कर रख लो।" और वह भी रख लेते हैं, जानते हैं, इनके लाए गहने मैं उन्हें दूंगी नहीं, इनके दिए पैसों से भी मैं एक नहीं दूंगी, परन्तु यह भोलानाथ हैं कि मानते ही नहीं, मण्डी की दुकान गिरवी रखने जा रहे थे। ये लाला जी बोले—'बड़े भैया ! गिरवी रखने की आवश्यकता क्या है, मेरे पास जो पैसे हैं वह भी तुम्हारे हैं।'

वह बोले 'तेरे पैसे मेरे नहीं हैं, तेरे पास गिरवी भी नहीं रख सकता।' चाहे तो व्यक्तिगत जमानत दिलवा सकता हूं।

हंस कर लाला जी बोले—'मेरा काम चल जायगा बड़े भैया।

भाभी की जमानत प्रयाप्त रहेगी।'

लाला जी की बात सुन वह भी हंस दिए। तू क्या मुझे पागल समझता है, या इस प्रकार मुझे ठगना चाहता है।'

जानती हो मां, तुम्हारे इन सतयुगी पुत्र ने क्या उत्तर दिया। बोले—"दोनों बाते ही मिथ्या हैं बड़े भैया। मैं नहीं चाहता धन के अभाव में आप यह सोचें धन रहने पर मैं मां को प्राप्त कर पाता।"

आश्चर्य में पड़ वे बोले मां इस बीच कहां आ गई रे!"

खिलखिला कर लाला जी हंस दिए—"मां बीच में नहीं आ गई भैया! बीच में आ गया है तुम्हारा छोटा भाई! मां का आदेश पालन करते समय उसे बड़े भैया की मर्यादा भी निभानी पड़ती है। और गरीब दो प्रबल प्राक्रमी यौद्धाओं के बीच दयानीय दृष्टि से दोनों की ओर देखता है, परन्तु उन दोनों राजपूतों को उस की डबडबाई आंखें दिखाई ही नहीं पड़तीं।'

उस दिन रात को उन्होंने कहा—"क्या कहती हो मुकदमा उठा लूं।"

"मैंने उत्साह से 'हां कर दी।" परन्तु दूसरे दिन न जाने क्या सनक सूझी स्पष्ट मना कर दिया, रोने गिड़गिड़ाने पर भी नहीं माने।'

सुखदेई ने कान्त के मुख की ओर देखा, उसे अपराधी की भांति खड़ा देख कपाल पर हाथ धर बोली—"ओ रे कलयुगी युधिष्टिर अपने बड़े भैया के कारण तू किसी दिन अपना गला मत काट लेना।"

कान्त ने कोई उत्तर नहीं दिया उसे उदास देख सलोचना सास से बोली—"सच मां तुम्हारे पास रह कर तो मेरा देवर आधा रह गया है, अब इन्हें धमकाती ही रहोगी या कुछ खाने भी दोगी।"

स्नेह से कान्त की ओर देख सुखदेई बोली—"भूल हुई बेटा ! अब तुझ से कुछ नहीं कहूंगी, तुम देवर भाभी एक हो जाते तो ? अब भी नहीं कहती।"

कान्त ने अत्यन्त दयानीय ढंग से मां की ओर देखा उस की वह मुख मुद्रा देख सलोचना हंस दी बोली—"तुम्हारी दुहाई है मां इस प्रकार तो तुम मेरी नन्द को रुला दोगी।" कुपित दृष्टि भाभी पर फेंक कान्त ने उत्तर दिया—"कह लो आज जी भर कर कह लो फिर कभी तुम्हारे हत्थे चढ़ने तुम्हारे घर में पांव भी नहीं रखूंगा।"

उसका रोष देख दोनों ही खिलखिलाकर हंस दीं।

मां को सम्बोधित कर बोला—"तुम भी इन के साथ मिल गईं।"

उत्तर दिया सलोचना ने "अभी क्या है लाला जी जब तीसरी आ जाएगी तब देखना।"

उस दिन सलोचना के लाख कहने पर भी सुखदेई ठहरी नहीं लड़के के आने से पहले ही कान्त को ले कर गांव लौट आई, रास्ते में कान्त से बोली—"देख कान्त ! बार-बार दुहराने का स्वभाव मेरा नहीं है, तेरा मन भी मैं दुखाना नहीं चाहती इसी कारण कल अपने भैया के यहां जा कर सलोचना और कमल को ले आना, कह देना मेरी आज्ञा है, फिर देखती हूं कौन सा बहाना ढूंढ तू रुपये खोएगा।"

कान्त केवल हंस कर रह गया कुछ समय यूं ही चुपचाप सुखदेई बैठी रही सहसा बोली—"क्यों रे मां को छोड़ भाई का पक्ष तुझे सुहाता है।"

कान्त फिर हंस दिया—"तुम्हारे और बड़े भैया में से किसी एक को चुनना होगा यह तो निश्चित नहीं हुआ था मां ?"

ठीक है आज निश्चित कर ले कान्त ! भाई में या मुझ में दोनों में से एक को चुनना होगा बोल क्या चाहता है ?"

"क्या कह रही हो मां ! यह ठीक है बड़े भैया अपनी हट नहीं छोड़ना चाहते, परन्तु इसी से क्या अपने पराए हो जाते हैं।"

"नहीं हट से नहीं ! अन्याय से, तुझ तक ही यदि वह सीमित रहता तो समझौते की राह निकाली जा सकती थी परन्तु हमारी आपस की लड़ाई में दूसरे अकारण ही पिस जायें यह मैं सहन नहीं करूंगी।"

"देखो मां ! बड़े भैया की लड़ाई दीनू से नहीं, तुझ से भी नहीं, आज भी तुम पर उनकी अगाध श्रद्धा है, उनका क्रोध है मुझ पर, हो सकता है अब तक के मेरे आचरण में उन्हें स्वार्थ दिखाई पड़ा हो इसी से वह मुझे अपना छोटा भाई नहीं समझ पा रहे, तभी तो कहता हूं मां ·········।"

"रहने दे कुछ भी तुझे नहीं कहना होगा, केवल कल जाकर उन्हें लिवा लाना ······ परन्तु नहीं वह भी मुझे करना होगा, मैं ही कल लिवा लाऊंगी।"

कान्त जानता था इसके पश्चात तर्क नहीं चल सकता, चुप हो बैठा रहा।

दूसरे दिन सुखदेई भाई को तो लिवा लाई, परन्तु पोते और बहू को नहीं ला पाई।

पांव छू सलोचना ने कह दिया—"नहीं मां !" तुम चाहे क्रोध करो। परन्तु इस प्रकार उन्हें छोड़ कर नहीं जा सकूंगी। "तुम विश्वास रखो अब तुम्हारे छोटे बेटे की एक पाई भी मैं नहीं लूंगी।"

जीवन में प्रथम बार पराज्य का अनुभव करती वह लौटी आई, किसी बात को भी ले हा-हुल्ला मचाना उसका स्वभाव नहीं था, इसी कारण उस दिन के पश्चात पोते और बहू का उल्लेख उस ने नहीं किया जब कभी कान्त आकर उन की बाबत कुछ बताता तो शान्त स्वर में वह उत्तर देती—"तुझे तो और कोई काम है नहीं कान्त ! परन्तु मेरे पास तो व्यर्थ नष्ट करने को समय नहीं है।" अथवा—"सुन लिया ! अब अपनी राम कथा बन्द कर कुछ काम देख।"

—:o:—

१६

आवेश में आ सुमित्रा घर से तो निकल पड़ी, परन्तु गाड़ी में बैठते ही उस का उत्साह न जाने कहां लोप हो गया, मां बाप के दुलार को छोड़ कभी एक क्षण भी उस ने दूसरी छत के नीचे नहीं बिताया था। गाड़ी में बैठते ही न जाने क्यों उसे लगा कि वह किसी प्रकाश मान स्थान से अकस्मात अन्धकार में जा खड़ी हुई है, जहां टटोलने पर भी सहारा लेने का कोई आधार नहीं, एक विचित्र प्रकार की घुटन के कारण उस का हृदय डूबने लगा, घर वालों की दशा उन के मान अपमान की बात, अपने स्वयं के चरित्र पर लांछन की जो कालिमा पुत जायगी उस से क्या जीवन भर वह मुक्त हो पाएगी।"

इतने बड़े संसार में, करोड़ों की जन-संख्या में एक मनुष्य ही है जो उसे समझता है, जो उस के हर अपराध क्षमा करता आया है, वह भी उसे क्षमा नहीं कर पाएगा, भूल कर कभी उस के मुख पर दृष्टि डालते का साहस क्या आज उसका होगा। अनायास ही सामने पड़ने पर क्या उमी निस्संकोच निर्मल भाव से उस से मिला जा सकता है? उस के विपरीत देखने पर लज्जा से सिर झुका लेने के अतिरिक्त और कोई मार्ग खुला नहीं, यह ठीक है उसी के कारण उसे क्रोध चढ़

ग्राया था, परन्तु उस में उसका क्या दोष है, उस ने तो विवाह करने की अनुमत्ति दे दी थी।

जिस दूसरे व्यक्ति के साथ इस प्रकार ग्रात्मीयता दिखा वह घर छोड़ कर चली आई है, वह कौन है किसी प्रकार का है। वह न जानते हुए भी उस के बारे में जो कुछ प्रचलित है, वे कोई अच्छी बात नहीं हैं, स्वयं उसे कालेज जीवन में, 'ग्रोछा', 'छिछोरा'! 'लफंगा' न जाने कितने उपनाम उसने दिए थे। जिस प्रकार का व्यवहार उस का लड़कियों के प्रति होता था वह भी कोई सभ्य नहीं था, फिर किस कारण उस पर इतना बड़ा विश्वास कर, माता पिता को त्याग कर, घर की ग्राबरू को एक प्रकार से नीलाम कर, वह घर से निकल पड़ी, सहसा ही उसे लगा कि जीवन महानतम भूल उस से बन पड़ी है। भूल का विचार आते ही वह उठ बैठी—"क्षमा कीजिए विनोद बाबू! मैं घर लौट रही हूं।"

विनोद हँस दिया बोला—"यह दिल्ली नहीं है सचि रानी! इस समय गाड़ी ग्रलीगढ़ पर खड़ी है।"

"क्या हुग्रा मैं यहीं उतर जाती हूं प्रातः गाड़ी से लौट जाऊंगी।"

"पागल नहीं बनते! ग्राप तो बुद्धिमान है, यह सब कर बैठने के पश्चात क्या ग्राप घर जा सकेगी।"

सुमित्रा बिगड़ उठी—"ग्रपने घर वालों को मैं ग्राप से अधिक पहचानती हूं। ग्रापको इन बातों की चिन्ता करने की ग्रावश्यकता नहीं! मैं यहीं पर उतरूंगी।"

"जैसी आपकी इच्छा सुमित्रा देवी! रोकूंगा मैं नहीं, परन्तु सोचिए तो घर लौटने पर क्या ग्राप का वह सम्मान रह जाएगा। "ग्रन्तिम ब्रह्मबान छोड़ते हुए विनोद ने पुनः कहा—"इसी कारण तो पुरुष वर्ग आप पर राज्य करता है कि ग्राप लोगों में परिस्थिति से

संघर्ष करने का धैर्य नहीं होता—अच्छा एक बात कहूं, यदि आप लौटना ही चाहती हैं, तो दो तीन दिन घर ठहर कर लौट जाइए। कानपुर में मेरी बहन हैं, वहीं आप को छोड़ जाऊंगा इस प्रकार कम से कम बदनामी से तो आप बच जाएगी।"

विनोद की बात से कोई विशिष्ट प्रकार का प्रभाव सुमित्रा पर नहीं पड़ा, परन्तु दुविधा में पड़ी रहने के कारण गाड़ी छूट गई थी, इसी कारण उस का उतरना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं हुआ।

जिस प्रकार कारावास में बन्द रहने पर मनुष्य की मनोस्थिति होती है, वहां चारों ओर मनुष्य रहने पर भी अपने आत्मीय स्वजन न पा वह एक प्रकार से बौखला कर जो निश्वास छोड़ बैठता है। यह ठीक है उस में आंखों का जल नहीं होता, परन्तु वाष्प बन जब वह नयनों से बाहर निकलती है तब मनुष्य का समुचा हृदय उसी निश्वास के साथ बाहर आ रहता है। चारों ओर के लोगों का झुंड ही मानों उस का शत्रु हो परन्तु इतना होने पर पुन: घर के सुखद वातावरण में वह जा नहीं पाता, तब उसे लगता है मानो छाती के बीच उमड़ते बवंडर के कारण उस की छाती फट पड़ेगी, छाती फटती नहीं परन्तु मनुष्य की आंखे अवश्य फटी की फटी रह जाती हैं। तब वह बावला सा इधर-उधर मन, मतिष्क, हृदय में शून्यता का अनुभव करता सूनी आंखों से निहारता है। उपचार की राह न पा, कारावास की भीतों से सिर टकरा कर मर जाने को उतावला हो जाता है। वास्तव में उस दिन वह उसका हृदय मृत्यु के मुख से परीचित हो जाता है, परन्तु वह मृत्यु होती नहीं, न ही दहाड़े मार वह रो ही पाता हैं, तब छटपटाने के अतिरिक्त और कोई राह उस की खुली नहीं रहती, ठीक इसी प्रकार की दशा सुमित्रा की थी।

बार बार मन भर आता, अश्रु भी कायरता के अपराध से

बत अत्याचारी बन हृदय मसोस कर रह जाना ही सुमित्रा को बुद्धि युक्त लगा।

मनुष्य की बुद्धि एक बात है—हृदय दूसरी, हृदय के वेग के कारण बुद्धि विवेक दब कर रह सकते हैं, उसके प्रबल प्रवाह में सब कुछ बह जाता है, परन्तु कोई भी विवेक कितनी भी बड़ी बुद्धि को परास्त नहीं कर पाता, लाख चेष्टा करने पर भी मनुष्य वही सब सोचता है, जिसे सोचने का परामर्श उसका मस्तिष्क नहीं देता। दुख से कातर वह सब न सोचने के संकल्प ज्यों के त्यों धरे रह जाते हैं।"

कान्त के विदा होते समय की मूर्ति बार-बार उस के सम्मुख आ उपस्थित होती उसे लगता मानो वह कह रहा है—सचि ! तू क्या मेरे साथ विश्वासघात करेगी ?" विदा होते समय ग्रास तोड़ खिलाने की बात उसकी उंगली काट लेने की अपनी धृष्टता उस की बात पर वह जिस वेग से खिल-खिलाकर हंस पड़ी थी, वही बात एक एक कर स्मरण पड़ने पर उस का हृदय चीत्कार कर उठा।

सहसा उसे पिता की बात स्मरण हो आई, देवता स्वरूप उस के पिता उस के बिना एक क्षण भी नहीं रह पाते और अब ...."नहीं नहीं अब सोचूंगी नहीं अन्यथा तो मैं पागल हो जाऊंगी। उस ने कुछ और सोचना चाहा परन्तु उन विचारों ने, केवल छाती को चीरती लम्बी श्वास छोड़ने भर का ही अवकाश दिया—उस का विवाह स्थिर कर उसे पास बुला, पिता ने कहा था—'ले अब तू भी अपने घर चली जाएगी तेरे इस बूढ़े बाबू जी के दिन कैसे कटेंगे ?' और लज्जा वश वह चुप हो रही थी उन्होंने पुनः कहा था 'अच्छा बेटी तू आती रहेगी ना !' कहते-कहते उनकी आंखें भर आई थीं। पिता की

आंखें आंचल से पोंछ उस ने कहा था—'वाह बाबू जी आप भी यूं ही हैं—मैं क्या आज ही चली जा रही हूं, कहो तो विवाह ही नहीं करूंगी।'

उन्होंने कहा था—'नहीं बेटा ! स्वार्थ के कारण तुझे बैठाए थोड़ा रख सकूंगा, लड़की तो पराया धन होता है, "सभालखा" कौन सा दूर है, दो घण्टे में पहुंचा जा सकता है, जब मन करेगा तेरे घर में आकर ऊधम मचा आया करूंगा, और नहीं तो वहां तेरा मकान भी तो है, उसे ही ठीक करा हम दोनों वहीं पड़े रहेंगे।'

परन्तु आज एक झटके मे ही अपने पिता के आने की बात दूर रही उनके पास जाने की राहें भी वह बन्द कर आई। उनकी ओर आंख उठा देखने का भी साहस उसका नहीं पड़ेगा। मां है, उन के दुख की भी क्या थाह रहेगी ? यह ठीक है बज्जर की भांति कठोर होने के कारण वह उस की बात भी मुंह पर नहीं लायगी परन्तु इसी से उन का दुख चौगना हो उनके भीतर जो उथल पुथल मचाएगा वह तो और भी असहनीय हो उठेगा।"

इसी प्रकार सोचते-सोचते दिन भर उपवास रख संध्या को सुमित्रा विनोद के घर तक पहुंची थी वहां उस समय मित्र मण्डली जमी थी। जिस निस्संकोच भाव से वह लोग घुल मिल गए थे उसी कारण सुमित्रा कुछ समय के लिए अपना दुख भूल गई, उसे लगा मानो वह किसी मित्र मण्डली में आई हो, इसी कारण घड़ी में साढ़े दस बजा देख कर वह उठ खड़ी हुई उस के बोलने के पूर्व ही जब विनोद की बहिन राज ने पूछ लिया—"कहां चली सुमित्रा देवी !"

तब उसे स्थिति का पुन: भास हुआ, दीर्घ निश्वास छोड़ बोली—"कहीं नहीं बाथ रूम जाऊंगी।"

नौकरानी उसे शौचालय दिखा लौट आई वहां बैठे-बैठे पिछले

बीस घण्टे की रुलाई का वेग वह रोक नहीं पाई, "आज घर नहीं लौटा जा सकता।" यह विचार आते ही उसका हृदय फट पड़ा। जिस प्रकार हर बात का अन्त होता है, उसी प्रकार मनुष्य के रोने का भी अन्त होता है, हाथ मुंह धो जिस समय वह लौटी उस समय ग्यारह बज चले थे। प्रायः सब ही लोग जा चुके थे इसी कारण उस का कमरा दिखा आज थकी होने की बात कह उसे सो लेने का परामर्श दे, राज चली गई।

राज के घर में रहते सुमित्रा को दो दिन बीत चले थे। उस के पति वहां द्वितीय फायर आफ़ीसर थे, इसी कारण नित्य प्रति बड़े-बड़े आफिसरों का वहां सदैव डेरा लगा रहता था। राज की सखियां भी कम नहीं थीं, इस बीच राज ने नारी स्वतन्त्रता की बात ले कितनी ही बातें सुमित्रा से की थीं। जिस में उस ने स्पष्ट कह दिया था कि वह अपने पति को जभी तक पति समझती है, जब तक वह उसे पत्नी समझते हैं, न समझने पर वह सरलता से दूसरे से विवाह कर सकती है। सुमित्रा को उस की बात सोचने पर भी असंगत नहीं लगी, तर्क के आधार पर उसे फुसलाया नहीं जा सकता, परन्तु न जाने क्यों उस बात से एक प्रकार की ग्लानि का अनुभव उसे हुआ। बोली—"परन्तु बहिन! इस प्रकार क्या हम एक दूसरे की त्रुटि खोजने का मार्ग नहीं खोल देते हैं।"

"अवश्य खोल देते हैं, परन्तु इस से तो यह कहीं अच्छा है, सुमित्रा, कि मनुष्य घुल-घुल कर प्राण त्याग दे।"

तर्क करने का सुमित्रा का मन नहीं था इसी कारण वह चुप हो रहीं, कई बार राज ने उसे जीवन के सुख पूर्णतया भोगने की बात कही थी, उस का तात्पर्य क्या है, यह तो वह जान नहीं पाई परन्तु न जाने क्यों उसे वह रहस्यात्मक अवश्य लगा, एक ओर बात उस की

समझ में नहीं आई कि उस के पति शर्मा के मित्र कर्नल वर्मा यह कह कर—"आज राज मेरे यहां रहेगी !" राज को अपनी कार में बैठा घर ले गए।

जन्म के पड़े संस्कारों के कारण सुमित्रा को वह अटपटा सा लगा, एक स्त्री इस प्रकार बिना पति के दूसरे के घर में जाकर टिके और वह भी बिना किसी उत्सव के, बिना किसी विशेष कारण के बिना? यह ठीक है कि कर्नल वर्मा विवाहित है, वहां उनकी पत्नी होगी परन्तु राज तो उन की कोई सम्बन्धी भी नहीं, फिर......उस फिर का उत्तर वह खोज कर भी नहीं पा सकी, कोई भी अशिष्ट बात सोचने का धैर्य उस में नहीं था, फिर जिसकी छत के नीचे उस ने दो दिन बिताये हैं, उसे वह दुश्चरित्र क्यों कर मान ले।

दूसरे दिन दस बजे राज लौट आई! उन के साथ उसकी दो तीन सखियां भी थीं। उस में से एक सखी कृष्णा सुमित्रा की ओर अधिक आकृष्ट थी। वैसे कृष्णा और राज की मैत्री पर उसे आश्चर्य भी था, कारण कि कृष्णा राज से लगभग दस बारह वर्ष छोटी थी, ठीक से उसे राज की पुत्री भी कहा जा सकता था। उस दिन भी वह आकर सुमित्रा के पास ही बैठ गई थी।

भोजन उपरान्त राज अपने कमरे में जा सोई, कृष्णा को छोड़ कर अन्य सखियां विदा ले जा चुकी थीं, इसी कारण चाहने पर भी बिस्तर पर पड़ कमर सीधी करने का अवकाश सुमित्रा को नहीं मिला—शिष्टता के नाते कृष्णा को अपने कमरे में आ बैठने का आमंत्रण दे सुमित्रा उठ बैठी, कृष्णा ने भी उस आमन्त्रण को अस्वीकार नहीं किया। कृष्णा से पीछा छुड़ाने को एक प्रकार से वह उतावली हो रही थी, कारण कि एक बार बातचीत प्रारम्भ कर देने पर उस का चुप होना नहीं होता था। साथ ही जिस ढंग से गले में बाहें डाल वह

बहनापा जताती थी उस से सुमित्रा मन ही मन खीझ उठती। उपचार का कोई मार्ग न देख कमरे में घुसते ही सिर में दर्द होने की बात सुमित्रा ने कह दी—"अच्छा! क्या बात हुई तुम लेट जाओ जीजी। मैं दाब देती हूं।" फिर मना करने पर भी कृष्णा नहीं मानी आंख मूंद सुमित्रा लेट रही। थोड़ा समय चुपचाप कृष्णा उस का सिर दबाती रही परन्तु अधिक समय उस से चुप नहीं रहा गया बोली—"जीजी! एक बात कहूं।"

अनमने मन से सुचित्रा ने 'हूं' कर दी।

"तुम यहां क्यों आई हो। उसके स्वर में एक विचित्र प्रकार की उत्तेजना का भास सुमित्रा को हुआ, फिर भी उस के मुख से केवल "भाग्य!" शब्द ही निकल पाया।

"जीजी! तुम इस घर से चली जाओ।"

इस बार कृष्णा की बात को वह सहज भाव से नहीं ले सकी। आश्चर्य में पड़ बोली—"क्या बात है कृष्णा मेरा ठहरना क्या इन्हें अखरता है?"

विचित्र घृणा से मुंह बिसोर कृष्णा ने उत्तर दिया—"इन्हें क्यों अखरेगा जीजी! यह तो उल्टे प्रसन्न हुए थे, तुम इन लोगों को नहीं जानतीं। इन लोगों ने यहां व्यभिचार का अड्डा बनाया हुआ है।"

आश्चर्य से सुमित्रा उस का मुंह ताकती रह गई कृष्णा से भी उस का आश्चर्य छिपा नहीं रहा, परन्तु उस के कारण वह भी रुकी नहीं कहती गई—"आप कैसे आई हैं मुझे पता है, इन लोगों का तो यही कारोबार है, भाई बहका कर लाता है, बहिन लोगों के पास भेजती है।"

"क्या कह रही हो कृष्णा! इतना बड़ा घर होते हुए, क्या शर्मा जी की आबरू पर इससे बट्टा नहीं लगता।"

"शर्मा जी की आबरू !" मुंह बिगाड़ कृष्णा ने कहा—"घर में पैसे आते क्या इन्हें बुरे लगते हैं।"

"पर बहिन ऐसी बातें छुपी तो रहा नहीं करती पुलिस क्या इन्हें नहीं पकड़ती।"

"पुलिस क्या पकड़ेगी जीजी ! बड़े-बड़े अफसरों के घर राज जाती है, लड़कियां भेजती हैं, लोग कहते हैं मन्त्री तक नहीं बचे, और इस सब रोग की जड़ है विनोद। जानती हो मेरे साथ क्या हुआ ? मुझ से विवाह करने का बहाना कर यहां ले लाया, मेरा सब समाप्त हो जाने पर दांत निपोर बोला—'हो गया विवाह कृष्णा ! इसी काम के लिए तो··· ' छी छी ! जीजी आज भी मर जाने को जी चाहता है, इन हरामी कुत्तों ने मेरे फोटो ले लिए थे, पिता की आबरू के डर से जा नहीं पा रही हूं, मरा नहीं जाता इस कारण जी रही हूं।'

मारे भय से सुमित्रा के रोंगटे खड़े हो गए मानो मन का भय किसी प्रकार निकल बाहर फेंकने के लिए ही उस के मुख से निकल पड़ा हो। "विनोद ने मुझ से तो कोई अशिष्टता बरती नहीं।"

"यही तो उस का ढंग है जीजी।"

"तुमने बहुत बड़ा उपकार मुझ पर किया है, कृष्णा ! परन्तु बहिन निकलूं कैसे यह मार्ग भी तो तुम ही बताओगी ··· कहते-कहते अनायास ही सुमित्रा रो दी।

विचलित हो कृष्णा बोली—"छी जीजी ! रोने से काम नहीं चलेगा आज हम दोनों को राज कर्नल के यहां ले जायेगी। वहां से बहाना कर खिसक जाना, जो भी गाड़ी, और जहां की भी मिले पकड़ लेना फिर वहां से अपने घर चली जाना जीजी ! हां, हल्ला करोगी तो यह अन्यायी कमरे में रोक तुम्हारी हड्डी तक चूर चूर कर देंगे।"

वह सब बातें सुन सुमित्रा की नींद उड गई—"जिस कृष्णा से वह पीछा छुड़ाना चाहती थी उसी को पास रख सुरक्षित रहने का अनुभव होने के कारण उस ने कृष्णा को जाने नहीं दिया।

"देखो जीजी! तुम्हें कर्नल के लिए प्रस्तुत करने का काम मुझ पर ही छोड़ा गया है, इसी कारण वैसी ही बातें यदि करू तो अपनी इस छोटी बहिन को तुम क्षमा करना।"

कृष्णा को गले लगा सुमित्रा रो दी—"मुझे बचा लो बहिन जीवन भर तुम्हारा उपकार मानूंगी।"

छी, छी, जीजी! ऐसे क्या काम चल सकता है। साथ ही किसी बात का स्मरण हो आने के कारण बोली—"जीजी! तुम्हारे इस कमरे में मेरे वे फोटो रखे हैं।"

"कहां?"

उस अलमारी में!' कह संकेत से कृष्णा ने बता दिया उस की चाबी तो मेरे पास है, रात राज भूल गई थी, अच्छा हुआ लौटानी मुझे स्मरण नहीं रही।"

झटपट से उठ सुमित्रा ने अलमारी खोल डाली उस में से ढूंड कर फोटो और निगेटिव निकालने में उन्हें दस मिनट से अधिक नहीं लगे; वह फोटो अपने ही पास रख छोड़ने को कह कृष्णा ने कर्नल साहब को ले अनर्गल बकना प्रारम्भ कर दिया।

सायं को पांच बजे के लगभग कर्नल साहब आ पहुंचे। चाय इत्यादि पीते-पीते उन्हें सात बज गए तब ही उन्होंने उन सब को अपना अतिथि बनाने का प्रस्ताव रख दिया, सुमित्रा को झुर्झुरी सी छूट गई। उसी समय कृष्णा का संकेत भी उस ने देख लिया। बात निश्चित हो गई। कर्नल की गाड़ी में उन दोनों ने उसके घर के लिए प्रस्थान करना था।

रास्ते भर सुमित्रा कर्नल के बारे में सोचती रही। पचास पर्व पार करने पर भी वह मनुष्य इस प्रकार उन्मत हो भले घर की बहू बेटियों की आबरू से खेलना चाहता है, उसे पिशाच के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है। इन सब कुकर्मों को करते समय एक बार भी उसे ध्यान नहीं आता कि जिस के साथ प्रेम लीला कर रंग-रंगेलियां वह मनाना चाह रहा है वह उस की लड़की के समान है, वह और कृष्णा वह तो उस की पौती की आयु की है। मारे घृणा के उसकी आंखें जलबे लगीं, कर्नल के मुंह पर थप्पड़ मारने को उस का मन तड़प उठा तब ही कृष्णा की कोहनी का संकेत पा उस ने अपने संयत किया। उसे बातों में लगाने के अभिप्राय से कृष्णा ने बातें करनी प्रारम्भ कर दीं, उस की वह बातें प्राय: कर्नल की प्रशन्सा में ही थीं, उस के घर की सजावट उस का स्नेह, प्यार, सज्जनता किसी को भी बखाने बिना कृष्णा ने नहीं छोड़ा।

कर्नल के यहां पहुँच सुमित्रा को ज्ञान हुआ, वह कर्नल की पत्नी है, पुत्र है, उस की अपनी लड़की दो बच्चों की मां है, परन्तु वह सब लोग फ़िरोजपुर में रहते हैं, और यहां कर्नल साहब अकेले हैं।

भोजन उपरान्त कर्नल ने बोतल चढ़ाई, उस के पश्चात बातें चलने लगीं, बहाने से राज पहले ही उठ कर चल दी, दो क्षण बीतने पर सुमित्रा की बांह दबा कृष्णा यह कहती हुई चल दी—"क्षमा करना जीजी! मुझे उन से काम है, अभी आई।" उन के चले जाने के पश्चात दस पन्द्रह मिनट कर्नल उस की प्रशन्सा करता रहा किस प्रकार उसे देखते ही वह मुग्ध हो उठा। बात कहते ही बोला—"तुम्हें बुरा तो नहीं लगा।" सिर हिला सुमित्रा ने 'न' जता दिया। मारे भय के सुमित्रा का गला सूखा जा रहा था—यह ठीक है भाग जाने की योजना

उस ने बना ली है परन्तु नीचे भी तो कोई खड़ा हो सकता है। हो सकता है राज ही खड़ी हो, यह ठीक है, कृष्णा की सूचना के अनुसार राज ने डी०आई०जी० के यहां रात्रि बितानी थी, उसे और कृष्णा को वहां यदि कोई आशंका हो गई तो ? यह सोच उस के पांव शिथिल पड़ गए, समूचे शरीर में कम्पन दौड़ गई, फिर भी उस ने धीरे से कहा—"क्षमा कीजिए अभी आती हूं।"

अपने स्वर में स्वयं कम्पन का आभास सुमित्रा को हुआ कर्नल हंस दिया उस के अट्टहास से सुमित्रा कांप कई—"कहीं पता तो नहीं चल गया। फ़िर भी वह उठ कर खड़ी हो गई।"

"अच्छा-अच्छा हो आओ, यह तो सब ही लोग · पर शीघ्र आना।" कह कर्नल पुन: हंस दिया उस समय विधाना को धन्यवाद तक देने का अवकाश सुमित्रा को नहीं मिला।

घर से निकल द्रुत गति से वह सड़क पर जा रही अपनी चाल के वेग से स्वयं शंकित हो, वह थोड़ा सा धीमा हो गई तभी अंधकार में से किसी को अपनी ओर बढ़ते देख लगभग उस की चीख निकल गई होती परन्तु मुख पर हाथ रखे जाने से वह दब कर रह गई, कृष्णा को पहचान धीरे से उस का हाथ हटा कर बोली—"मेरी अच्छी बहिन मुझे स्टेशन छोड़ आ।"

"चलो !" कह कृष्णा साथ हो ली लगभग सौ गज चलने पर बोली—"हो सकता है तुम पैसे न ला पाई हो जीजी इस कारण मैं रुपये ले आई, है तो बीस ही। ······

"नहीं कृष्णा मेरे पास बहुत पैसे हैं ! चिन्ता मत कर।"

पिता की तिजोरी की चाबी सुमित्रा के पास रहती थी घर से आते समय पांच हजार रुपये उसने ले लिए थे, अपने वही रुपये राज के यहां से आते समय वह जम्फ़र की बीच की जेब में रख लाई थी।

"एक बात कहूँ जीजी ! मुझे भी अपने साथ ले चलो।" उस समय कुछ भी सोचने का मन सुमित्रा का नहीं था। कृष्णा के साथ होने पर उस का साहस बढ़ा रहेगा—इसी कारण झट से हां कर दी—"मैं जानती हूँ कृष्णा अपनी जीजी के उपकार के कारण ही तू चल रही है, चले चल तेरे पिता जी को पत्र लिख बुला भेजूंगी।"

कृष्णा के साथ गाड़ी में बैठ जाने पर भी मुंह बाहर निकाल झांकने का साहस सुमित्रा को नहीं पड़ा, मुंह बाहर निकाले गाड़ी चलने तक कृष्णा बाहर ताकती रही, गाड़ी के प्लेट फार्म से बाहर निकलते ही कृष्णा पुनः अपने स्थान पर आ बैठी—"अब भय नहीं !" कह प्रसन्नता से कृष्णा सुमित्रा से चिपट गई।

दुख की एक विशेषता है, जहां दुख में पाए अपने मित्र को मनुष्य आजन्म नहीं बिसार पाता, वहां तनिक सी सहायता, सहानुभूति से ही अपरीचित भी उसे सब से अधिक अपना दिखाई पड़ता है। वही कृष्णा जिसे कभी वह पास भी बैठाना नहीं चाहती थी। जिस की वाचालता के कारण ही बार-बार वह उठ कर भाग जाती थी, आज उस की अभिन्न सखी थी—सहसा उसे सम्बोधित कर बोली—"तू चिन्ता मत कर कृष्णा मेरे पास पांच हजार रुपये हैं, हम दोनों का निर्वाह दो तीन वर्ष तक सरलता से हो सकता है। तब तक मैं कोई नौकरी ढूंढ लूंगी, आखिर एम० ए० किया है, वह किस काम आएगा।"

चकित हो कृष्णा उस के मुख की ओर देख उठी—"तुम क्या घर नहीं जाओगी जीजी।"

"नहीं कृष्णा ! वहां से निकल अपना मार्ग स्वयं बन्द कर आई, अब अपने कारण इतने लोगों के मुख पर कालिख पोतने का साहस मुझ में नहीं।"

"परन्तु जीजी ··· ।"

'कुछ नहीं री ! बल लगा कर भी मैं जा नहीं पाऊंगी, इस बारे में सोच भी नहीं सकती ।"

कृष्णा चुप हो कर बैठी रही, दो तीन दिन में ही वह सुमित्रा को पहचान गई थी, भयानक कहे जाने वाले रूप के साथ, भयंकर हट भी उस में है, उस की बात का समर्थन हो किया जा सकता है, विशेष नहीं ।

—:o:—

१७

भयंकर परिस्थिति में फंस मनुष्य बौखला उठता है, तब उसे दुख-सुख का बोध नहीं रहता, उसकी समस्त इन्द्रियां एकत्रित हो अपने को उस परिस्थिति से मुक्त कराने में प्रयत्न शील हो जाती हैं, परन्तु उस से मुक्त होते ही उस भय से छुटकारा पाते ही, भूले बिसरे सब ही सुख उसे जा घेरते है। दुख का लेश मात्र भी वह स्मरण नहीं कर पाता परन्तु ठीक उस के विपरीत सुख ही उस की आंखों के सम्मुख नाच उठते है। वही सुख उस के अन्तर में जिस वेदना की भट्टी सुलगा देता है, उस के कारण श्वास तक लेना भी मनुष्य को नहीं होता। मुख खोल जी भर वायु सोख लेने के उपक्रम में मुख तो अवश्य खुला रहता है, परन्तु वायु वह नहीं सोख पाता, तब असीम पीड़ा से वह तिलमिला उठता है। उस तड़फड़ाने से बचने के लिए वह प्राण तक देने को उद्यत रहता है, परन्तु दे नहीं पाता है। इसी कारण वह अनजाने में चीख उठता है, 'ऐसे तो मैं मर जाऊंगा !' फटी-फटी आंखों से चारों ओर देखने पर भी उसे कुछ दिखाई नहीं देता। बावलों की भांति तब वह इधर-उधर अनिश्चित भाव से घूमता फिरता है, केवल इस आशा से कि किसी प्रकार उस से चिपटा दुख राह में कहीं भी छूट जाए।

सम्भवत: वह मनुष्य को उस से अधिक पहचानता है, इसी कारण उस का गला पकड़े वह अपने आसन पर आरूढ़ रहता है।

सुमित्रा की भी दशा ठीक वैसी ही थी, प्रातः ही नगर की सुन्दरता से प्रभावित वहां टिक उस ने जीवन चलाने की बात सोच ली, परन्तु संध्या को ज्यों-ज्यों धरती की छाती फोड़ ऊपर को उठता अंधकार प्रगाढ़ होता जाता त्यों-त्यों उस नगर को छोड़ने को उसका मन छटपटाने लगा। एक विचित्र भय उसे कहीं ओर से आ घेरता, हड़बड़ा कर वह कह बैठती—"नहीं नहीं कृष्णा, यहां नहीं टिका जा सकता, कहीं और चलना होगा।"

एक दिन मन कड़ा कर वह लोग एक होटल में टिके भी परन्तु ग्यारह बजते-बजते ही वह उठ बैठी—"यहां तो मेरा दम घुट रहा है कृष्णा।"

कृष्णा ने आपत्ति की परन्तु जीजी कहीं न कहीं तो टिकना ही होगा, फिर इस समय क्या गाड़ी मिलेगी।"

"न सही गाड़ी तू यहां से निकलेगी भी, या यूं ही मुंह चलाती रहेगी न होगा तो प्रतीक्षालय में सो रहेंगे।"

सुमित्रा विचित्र प्रकार के अनुताप का अनुभव कर रही थी, एक प्रकार की खीझ। एक विचित्र अवसर से घिरी असन्तुष्टी की भावना। बवंडर बीत जाने पर सब कुछ ज्यों का त्यों बना रहता है, परन्तु झकझोर देने वाले वायु के वेग से जिस पक्षी का घोंसला उड़ जाता है, विक्षिप्त हो वह उस डाल पर अपना घोंसला न देख अपने को समझ भटकता रहता है, अपने उन प्रियजनों को खो, वह उन्हें प्रत्येक स्थान पर खोजता फिरता है, न मिलने पर थकान के कारण कहीं भी, बैठ अवश्य जाता है, परन्तु आंखें मूंद सो नहीं पाता, उस समय उस के मन की जो दशा होती है, उस के आस पास मंडराने पर भी कोई

व्यक्ति किसी भी भाषा में उसे व्यक्त नहीं कर पाता। जिस पर बीतती है, वह विक्षिप्त की नाई मारा-मारा फिर रहा है, कितनी ही बार वह मन ही मन प्रश्न करता है, "बात क्या है ?" परन्तु उत्तर उसे नहीं मिलता। जिस वेदना से उसकी छाती फट पड़ती है उसी को वह नहीं जान पाता।

हां इतना अवश्य है, जिस धरती की छाती पर तांड़व करता बवंडर जब कहीं भी जाकर लोप हो जाता है, तब भी उस की लगी खरोंच धरती की छाती पर से लोप नहीं हो जाती। मुंह बाँय धरती आकाश की ओर निहारती सोचती है, क्या यह सब उत्पात उस पर हुआ है ? यह क्या उस ने भोगा है ?? परन्तु भोगने की शक्ति उस में थी कहां, तब अनायास ही—"नहीं-नहीं यह सब स्वप्न है, अथवा मेरी मिथ्या कल्पना है।' सोच वह मन को सांत्वना देना चाहती है, परन्तु दृष्टि उठा, झार-फूस, पशु पंक्षी, एवं वृक्ष इत्यादि देख, छाई नीरवता से परिपूर्ण उदासीनता देख अनुभव होता है कुछ हुआ अवश्य है।"

सुमित्रा की दशा ठीक लगभग वैसी ही थी, इतना बड़ा बवडर उस के अपने सिर पर से हो कर चला गया है, इस पर मानो विश्वास ही नहीं होता था। वह घर छोड़ कर आ सकती है, इस से बड़ी अविश्वसनीय बात उसे दूसरी कोई भी दिखाई नहीं पड़ती थी। परन्तु एकान्त में, रात्रि के अन्धकार में, छाती पर लगे मुक्के की भांति 'घर !' उस की छाती पर आ रहता, मन ही मन वह बुड़बुड़ाती, 'उसका घर नहीं !' फिर सोचती—"नहीं उस का घर है, उस के पिता है, सब कुछ है, केवल वह हतभागिनी ही उस के भीतर पाँव नहीं रख सकती।" तब दुख से बावली हो वह चीख उठती—'चल कृष्णा यहां से चल यहां तो मैं मर जाऊंगी।"

मुख से बड़ी बहिन कहते हुए भी सुमित्रा को एक प्रकार से छोटी ही समझ कर चलती थी। इसी कारण घूमते-घूमते उक्ता कर एक दिन दोपहर में भोजन करते-करते उस ने कह ही दिया—"ऐसे कैसे काम चलेगा जीजी ! सारे पैसे तो रेल भाड़े में ही समाप्त हो जायेंगे।"

"जानती हूं कृष्णा ! क्या करूं बहिन ? न जाने क्यों मन घुटने लगता है।"

"एक बात पूंछू ? नहीं, नहीं—तुम बुरा नहीं मान सकोगी तुम क्या इस से पहले घर से बाहर अकेली कभी नहीं निकली।"

सुमित्रा की आंखें भर आई—"नहीं कृष्णा—अभागों ने मुझे कभी एक दिन भी अकेला नहीं छोड़ा, कालेज की छात्राओं के घूमने जाने पर भी दोनों अभागे साथ हो लेते थे। और पिता जी ! पिता जी तो सहेली के यहां जाने पर भी साथ हो लेते थे।" मन का आवेग सुमित्रा बल लगा कर भी रोक नहीं पाई ! उसे फूट-फूट कर रोते देख उस का सिर गोद में डाल ढ़ारस बंधाते हुए कृष्णा बोली—"छीः ! जीजी ऐसे भी कोई रोता है।"

"तू नहीं जानती मुझे उन लोगों ने अपाहिज बना दिया है। किसी भी घर में प्रकाश देख, जी चाहता है भीतर घुस जाऊं—भीतर जाकर खूब रोऊं। कह दूं—"मैं आ गई हूं बाबू जी ! परन्तु दुसरे ही क्षण ध्यान आ जाता है कि वह दूसरों का घर है।" आंखें पोंछती बार-बार इधर-उधर सिर हिलाती सुमित्रा कहती गई, "ऐसा लगता है, घर देखे बरसों हो गए। और तू सच जान कृष्णा अब मेरे बाबू जी अधिक दिन नहीं जीयेंगे।"

"ऐसी बात नहीं बोलते जीजी ! भगवान करे तुम्हारे बाबू जी युग युग जिएं ······।"

"कृष्णा आगे कुछ कहना चाहती थी परन्तु सुमित्रा अपना उत्साह को रोक नहीं पाई।" कहने लगी—"तेरी ही बात सत्य हो कृष्णा ! तू नित्य भगवान से प्रार्थना किया कर मेरे कारण किसी के प्राणों पर न आ बने, हां मेरी बहिन ! मेरे कारण तुझे यह कहना होगा, मैं ठहरी पापिष्टा, मेरी बात तो वह सुनेंगे नहीं, तू नहीं जानती मेरे कारण कितने लोग दुख से बावले हुए प्राणों का मोह त्याग बैठे होंगे। बाबू जी, मां, कान्त ! वे भी अपने को इतना नहीं जानते जितना मैं जानती हूं। मुख से तो कुछ नही कहेंगे, मन ही मन कुढ़ेंगे, रोगी बन पड़ जायेंगे, पूछने पर कह देंगे, मैं उस का मुख भी नहीं देखना चाहता, पर यह उन के मन की बात नहीं है। कृष्णा सच जान मेरे कारण वह प्राण भी दे सकते हैं। एक ही दिन तो मुझे ज्वर चढ़ा था, और आप थे कि नहाना, खाना, बिसार पत्थर की भांति जो मेरे सिरहाने आ बैठे, फिर क्या उठे ? मैंने कई बार कहा—'बहुत हुआ ! मुंह हाथ धो आओ। भोजन कर लो, यहीं चारपाई बिछा कमर सीधी कर लो।' बस फिर क्या था खीझ पड़े—'नहीं नहाता, नहीं खाता !' उफ़ उन दो दिन की उन की कड़ी निगरानी में बन्दी बन रहना पड़ा, बाप रे ! अत्याचारी ने अचार तक भी मुझे नहीं खाने दिया।" बात कहते-कहते सहसा कान्त के दुख की बात स्मरण आते ही कह बठी "नहीं नहीं ! मुझे अभागिन के कारण उन्हें दुख पाने की आवश्यकता नहीं।"

सुमित्रा की बातें सुन कृष्णा व्यग्र हो उठी बोली—"अच्छा जीजी यह बातें फिर होती रहेंगी पहले तुम शान्ति से भोजन कर लो।"

"क्या भोजन कर लूं ?" कह लम्बी श्वास खींच कर वह उठ बैठी।

उस रात सुमित्रा को ज्वर चढ़ आया, रात्रि भर कृष्णा उस के

पास बैठी रही, ज्वर में अनाप-शनाप बकती सुमित्रा पड़ी रही, कृष्णा का हाथ पकड़ बोली—"मुझे किसी से डर नहीं कृष्णा, डर है तो उन की मां से, अरे वह क्या स्त्री है, बाप रे ! फ़ौज का कर्नल भी ऐसा नही होगा, एक बार उन के सामने पड़ने से मनुष्य के हाथ पांव फूल जाते हैं, मुझ पर उन का अपार स्नेह है, कहती थीं—"सम्बन्धी जी ने यह सोने की प्रतिमा अभी तक मुझ से छिपा रक्खी थी–"अन्यथा तो छोड़ती थोड़ा ही, वही मेरी शत्रु है कृष्णा, वही मुझे क्षमा नहीं करेगी, जो स्त्री अपने लड़के के घर का पानी तक नहीं छूती घृणा से नाम तक नहीं लेती, मेरी सब से बड़ी शत्रु वही है, मुझे अपने घर में वह कदापि नहीं घुसने देगी।"

"तुम एक बार जाकर देखो तो जीजी।"

"तू उन्हें नही जानती इसी से कह रही है, मनुष्य सिंह की मान्द में जा सकता है, परन्तु उन के सामने नहीं पड़ सकता, उफ़ देखते ही रगों का रक्त सूख कर रह जाता है, इसी विनोद के मुख पर ऐसा थप्पड़ मारा था, आज भी सोच कर कंपकपी चढ़ आती है, और विनोद बाबू, वह तो एक ही थप्पड़ में धरती पर बैठ रहा था। ना बाबा ना ! यदि वे क्षमा कर पातीं तो क्या मैं यहां पड़ी-पड़ी सड़ती ?"

"तुम कहो तो मैं हो आऊँ।"

"नहीं, नहीं कृष्णा ! ऐसी भूल तू कदापि मत करियो किसी को भेज मेरी बोटी-बोटी उड़वा देंगी तू भी जीती नहीं लौट सकेगी।"

चार घण्टे पश्चात सहसा कृष्णा को झिझोड़ बोली—"अच्छा तू एक काम करना, मेरे ज्वर उतरने पर चली जाना, मेरी बात मत बताना पर उन के मन की थाह तो लेना।"

सुमित्रा की बात का उत्तर न दे कृष्णा ने कहा—"सब बाद में देखा जायगा, अभी तो तुम्हें ज्वर है, चुप-चाप सोने की चेष्टा करो।"

"तू मेरी हँसी उड़ा रही है कृष्णा, मेरे भीतर आग-सी जल रही है, और तू कहती है सो जाऊँ।"

उदासीन स्वर में कृष्णा बोली—"तुम्हें ज्वर है इसी से……।"

"ज्वर है इसी से क्या मुझे मार डालेगी, खा जायेगी !" बात कहते-कहते कृष्णा की मुख की ओर देख उठी, उस की आंखों में छलकता जल देख वह चीख पड़ी—"यहाँ मेरे सिरहाने बैठ कर रो मत। अभी मैं मर नहीं रही हूं।"

चुपचाप आंखे पोंछ कृष्णा उठ कर जाने लगी उसे सम्बोधित कर पुन: सुमित्रा गर्ज उठी—"अब कहां चली, जाने के लिए ही क्या बहाने ढूंढ रही थीं, एक दिन ज्वर क्या चढ़ा है ,इसी से लोगों ने नखरे दिखाने आरम्भ कर दिये हैं।"

कृष्णा के लिए यह सब असहनीय हुआ जा रहा था, सुमित्रा को इस छोटी अवधि में. वह जितना प्यार करने लगी थी उतना तो कभी उस ने अपने किसी आत्मीय भी नहीं किया इसी कारण सुमित्रा का दुख देख उस का मन अशान्त हो उठा। यह ठीक है, दुख तकलीफ में मनुष्य का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, परन्तु एक ही दिन में कोई इस प्रकार की कटु बाते नहीं बोलता, सुमित्रा की अन्तर वेदना वह भली प्रकार समझती है, फिर भी क्या दूसरों को नौकर समझ इस प्रकार की उल्टी-सुल्टी बातें सुना डालनि चाहिएं। फिर भी उस के ज्वर को भुगता कही भी चली जाने की बात सोच वह बैठ गई बीस-पच्चीस मिनट ज्वर की वेदना से छटपटाती सुमित्रा चुप पड़ी रही सहसा कृष्णा का हाथ पकड़ कर बोली—"तू मेरी छोटी बहिन है न कृष्णा ?"

सिर हिला कृष्णा चुप बैठी रही।

"तब तो तू मेरी उन बातों का बुरा नहीं मान सकोगी! अपने ही हाथों अपना जो सर्वनाश तेरी यह बहिन कर आई है, सो तू नहीं जानती, वह सब कहने पर तो मारे लज्जा के लोग आत्महत्या कर बैठते हैं। इसी लिए यदि कुछ अनाप-शनाप बक बैठी हूं, तो उसी को ले अपनी इस बहिन को छोड़ तू जा नहीं सकेगी।"

"मेरी एक बात मानोगी जीजी! इस समय ज्वर से तुम्हारा शरीर फुक रहा है, भगवान के लिए अभी तुम चुपचाप लेटी रहो, अन्यथा तो मैं उठ कर चली जाऊंगी।

सात-आठ दिन पश्चात सुमित्रा का ज्वर जाता रहा, अपने साथ वह उस के मन का उद्वेग भी ले गया। उस के पश्चात घर वालों के बारे में पूछने पर उस ने एक भी शब्द नहीं कहा, उन का उल्लेख यदि कृष्णा कर देती तो वह कह देती—"जो बीत गया है वह लौटाया नहीं जा सकता कृष्णा! उन की मां के मन से एक बार निकल जाने के पश्चात वहां नहीं जाया सकता। फिर उन सब बातों को सोचने से क्या उपयोग।"

सप्ताह भर प्रातः से सायं तक घूमते रहने के कारण लड़कियों के स्कूल में अध्यापन का कार्य सुमित्रा को मिल गया था, वहीं प्रत्यन कर उस ने कृष्णा को भी एक स्थान दिला दिया था, दोनों वहीं होटल के एक ही कमरे में रहने लगीं।

नौकरी मिल जाने पर कृष्णा चिन्ता से मुक्त नहीं हो सकी, उस के अपने पिता की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी, इसी कारण उन्हें रुपये भेज उस ने सब बातों को स्पष्ट लिख दिया था, साथ ही उन से अनुरोध में लिख दिया था कि वह सरलता से नौकरी की बात कह सकते हैं, यही नहीं बल्कि उन्हें अपने पास आने का निषेध भी उस ने

कर दिया था।

कृष्णा के पिता का उत्तर सुमित्रा के हाथ में पड़ गया न दोपहर को उस के लौटने पर सुमित्रा बोली—"आज तू अपनी बड़ी बहिन से पिटेगी।"

मुख आगे बढ़ा कृष्णा ने कह दिया—"तो मार लो जीजी! तुम्हारे हाथों पिटने योग्य मेरे भाग्य कहाँ?" उसे मारते न देख हंस कर बोली—"बस मार लिया वाह जीजी! कहने भर की ही शेर हो तुम छोटी बहिन को भी मारने का साहस तुम में नहीं है।"

सुमित्रा भी मुस्करा दी—"बहुत हुआ री—बूढ़ी दादी! यह बता पिता जी को पैसे का इतना अभाव रहता है यह तू ने मुझ से क्यों नहीं बताया।"

कृष्णा सिर लटका कर चुप हो रही खुशामद के से स्वर में सुमित्रा ने कहा—"तू क्या मुझ बड़ी बहिन नहीं समझती।" साथ ही उठ कर ट्रंक में से रुपये निकाल बोली—"कल यह और भेज देना, मैं इतने रुपयों का क्या करूंगी।"

कृतज्ञता से कृष्णा की आंखें भर आई। बड़ी बहिन के मन पर जमा दुःख जान लेने की आशा इसे हो आई। बोली—"जीजी! तुम क्या एक बार मुझे अपने घर का पता नहीं बता सकती।"

स्नेह से आर्द्र हो सुमित्रा बोली—"क्यों री! अपनी बहिन का हिसाब भी क्या तुरन्त चुकता कर देना चाहती है, दो क्षण को भी बहिन का उपकार सिर नहीं चढ़ाना चाहती, और तेरी यह जो बड़ी बहिन तेरे उपकारों के बोझ से गर्दन तक नहीं उठा सकती वह क्या करे बता तो······ ?"

"नहीं-नहीं यह बात नहीं है, जीजी ······।"

"ठीक है, ठीक है—आवश्यकता पड़ने पर बता दूँगी।"

सुमित्रा के आवेश से डर नहीं लगता था, परन्तु उस के स्वभाव के विरुद्ध शान्ति देख कृष्णा का अन्तर भय से चंचल हो उठता, प्रयत्न कर वह उस का वही अल्हड़ रूप वही उतावलापन, वही आवेश, रोष में पाँव पटक-पटक उल्टी-सीधी बातें बकना ही वह देखना चाहती थी, यही सब उस के स्वाभावानुकूल है, परन्तु इस में वह सफल नहीं हो पाती। सुमित्रा केवल मुस्करा कर रह जाती।

माँझी जिस प्रकार सागर पर शान्त आवर्ण देख बवंडर की बात समझ लेता है, उसी प्रकार कृष्णा भी जान गई थी, तीन वर्ष सकर्कता बरतते-बरतते उसने बिता दिए थे। इस बीच वह भय भी दब कर रह गया था परन्तु एक दिन जब स्कूल से लौट सुमित्रा को आँखें मुंदे कुर्सी पर पांव फैलाए लेटे देखा, तब आशंका से वह सिहर गई, कुछ कहने से पहले उस के तमतमाये कपोल छू उस ने अपनी आशंका की पुष्टी की, चढ़ी हुई लाल-लाल आँखे खोल सुमित्रा केवल—"ऊँह—कौन? कृष्णा!" ही कह पाई।

उसे तीव्र ज्वर चढ़ा देख उस दिन वह चुप न रह सकीं, चाय बना प्याला उस कीं ओर बढ़ा बोली—"एक बात बताओ जी जी मुझे मारे बिना क्या तुम्हें कल नहीं पड़ेगी।"

धीरे से मुंस्का सुमित्रा ने उत्तर दिया—"ज्वर चढ़ आया, इस में भी क्या मेरा दोष है कृष्णा।"

"नहीं दोष तो मेरा है, जी जी? जो अब तक तुम्हें धक्के दे कर घर नहीं पहुँचा आई।"

"तू तो है पागल! तीन वर्ष तक क्या घर के बिना तेरी जी जी जीवित नहीं रही, जो आज मर जायगी और फिर छोटा मोटा ज्वर

किसे नहीं चढ़ता—"कल परसों तक ठीक हो जायेगा।"

"ठीक हो जायगा मेरा सिर! मुंह से नहीं कहती हो, इसी से क्या मैं नहीं समझती, मन ही मन तपते रहने से कहीं मन का दुख जाता है।"

"तू तो बहुत तंग करने लगी है कृष्णा! मेरा जी ठीक नहीं है, इस समय अधिक माथा पच्ची मैं नहीं कर सकूंगी।"

"कर सकने पर करने भी मैं नहीं दूंगी! केवल मुझे बाबू जी का पता बता दे, मैं सब ठीक कर लूंगी।"

कृष्णा का उतावलापन देख सुमित्रा हंस दी, "तू तो सब ठीक कर लेगी, पर बहिन-जी लोग ठीक होने देना नहीं चाहते उन्हें क्या तू मना पाएगी।"

"तुम्हारा यही दोष है जी जी! व्यर्थ में उल्टी-सीधी बातें सोचोगी स्वयं दोष मढोगी, दूसरों के सिर पर।"

"नहीं कृष्णा! इस बार यह बात तेरी जीजी की आशंका मात्र ही नहीं है, सत्य है, बिल्कुल सत्य! दस दिन पहले वे आये थे। स्कूल में सहसा उन पर दृष्टि पड़ जाने के कारण मैं खड़ी हो गई, परन्तु जानती है, मुझे देख घृणा से मुंह फेर के चले गए।"

आश्चर्य से कृष्णा पूछ बैठी—"कौन कान्त भैया आए थे।"

"हां! वही थे उन के क्लान्त मुख, एवं सुख कर आधे रहे शरीर की ओर देख कर दुख से मन भर आया, अन्यथा तो ऐसी कुचेष्टा नहीं करती, तुरन्त ही अपने मघुआ को उन के पीछे भेजा पता करा लिया कहाँ ठहरे हैं, उसे साथ ले वहाँ पहुंची भी, जिस घृणा से उन्होंने मुंह घुमा लिया इस कारण जी चाहा लौट आऊं परन्तु लौट नहीं

सन्ी केवल इतना ही पूछा—"क्या मेरा मुख भी तुम देखना नहीं चाहते।"

संक्षिप्त सी—"नहीं !" ही मेरे भाग्य में बदी थी।

"अपराध जाने बिना ही दण्ड दोगे ? कहते-कहते कण्ठ भर आया, परन्तु उन्होंने आंखें उठा कर भी नहीं देखा। पाषाण की मूर्ति की भाँति चुप बने रहे, उनका वह चुप साध लेना मेरे हृदय को बींधे दे रहा था, अनायास ही मुख से कुछ नहीं फूटा।

वे सहसा पूछ बैठे—"और कुछ कहना है ?"

मारे क्रोध के जी चाहा कहीं सिर फोड़ के मर जाऊँ संसार में और सब से मुझे ऐसे व्यवहार की आशा थी, परन्तु उन मे नहीं, फिर भी मन में भरे आवेग के कारण बात कह नहीं पाई धीरे से बोली—"हां ! सुन सकोगे।"

"सुन सकूंगा, परन्तु जो कुछ कहना हो शीघ्र कहो, मुझे गाड़ी पकड़ अभी जाना है।"

अधिकार पूर्ण ढंग से मैंने कहा—"तुम्हें अभी दो दिन टिकना है।"

मुझे बीच में ही टोक दिया बोले—"आप मैं भी कहलवा सकता हूं ?"

छी ! एक दिन मैंने क्रोध में उन्हे आप कहने पर बाध्य कर दिया था। बोली—"नहीं कहने पर तुम सिर काट कर फेंक सकते हो, जानती हूँ फिर भी कहूँगी नहीं ! तुम ने कहा था कि मुझे खोज मेरा सिर उतार कर फेंक दोगे वही करने आये हो, यही सोच कर आई हूं।"

"मेरा क्यों कहती हो हमारा क्यों नहीं कहतीं।"

सच जानना कृष्णा उन की बात से कलेजा फटने को हो गया,

परन्तु धीरे स्वर में कहा ।

'वह तुम्हें कानपुर में मिल जायेगा ! परन्तु यह मेरे प्रश्न का उत्तर तो नहीं हुआ।"

उस के उत्तर में जो कुछ उन्होंने कहा वह सुनने योग्य नहीं था कृष्णा फिर भी तुम्हारी यह भाग्य जली जीजी चुपचाप सह आई । बोले—"अपराध करने पर सिर अपनों का काटा जाता है, संसार भर के लोग दिन भर अनाप शनाप करते फिरते हैं, मैं क्या सब के सिर काटता फिरूंगा । और हां, वह तुम्हारे पास क्यों नहीं है शौक पूरा हो गया क्या ?"

"हाँ वह शौक तो पूरा हो गया, परन्तु तुम्हें अपने हाथों कफ़न देने का शौक अभी शेष है ?" कह मैं लौट आई ।"

"मुझे क्यों नहीं बुला लिया था जीजी !"

तुझे बुलाने पर भी कुछ नहीं होता कृष्णा एक बार मुख से निकलनें पर मानने वाले जीव वे लोग नहीं हैं ।

सुमित्रा की बात सुन दो क्षण को कृष्णा गम्भीर हो बैठी रही, सहसा कहने लगी—"तुम मुझे एक बार अपने पिता जी का पता बता दो ।"

"तू क्या समझती है बाबू जी आयेंगे ? उन को गए दस दिन हो गए, यदि बाबू जी को आना होता तो जाते नहीं ।"

जिस प्रकार सुमित्रा आस तोड़ कर बैठी थी, उसकी भाँति कृष्णा अभी भी निराश नहीं हुई थी । इसी कारण बोली—"तुम एक बार बता तो दो ··· ।"

"रहने दे कृष्णा कुछ भी लाभ नहीं होगा, मैं जानती हूँ ।"

उस के पश्चात् बात चलाने का साहस कृष्णा को नहीं हुआ ।

सुमित्रा के "एक दो दिन में ठीक हो जाऊँगी" कहने पर भी ठीक होना उस का नहीं हुआ, धीरे धीरे उस की दशा बिगड़ कर

शोचनीय से होती हुई 'अब आशा नहीं है कि स्थिति में जा पहुंची। कब किस घड़ी, यह सब मोह, सारे स्नेह बन्धन तोड़ संसार त्याग कर वह चली जाए कहा नहीं जा सकता था डाक्टरों ने अपना मत प्रकट कर दिया था—"दो चार दिन और जिएगी। यही सोच दिन रात कृष्णा मन ही मन कल्पा करती थी कि सहसा पत्र में सुमित्रा को सम्बोधित करता विज्ञापन देख वह असमंजस में पड़ गई! घर पर बाबू जी मृत्यु की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे हैं, यहां बेटी भी वही करने जा रही है, आखिर वह क्या करे यही निश्चित नहीं कर पाई, अन्त में एक दिन हस्पताल की नर्स को समझा कि चेत होने पर उसे सोने गई कह दे–दिल्ली जाने का निश्चय कृष्णा ने कर लिया।

—:o:—

१८

पाठशाला अपने सात वर्ष पूरे कर चुकी थी, सरकार द्वारा मान्यता भी उसे प्राप्त हो चुकी थी। स्वतन्त्रता के पश्चात उसे एक विशेष महत्व प्राप्त हो गया था, विश्व विद्यालय के रूप में वह एक अदभुत सी दिखाई पड़ती थी, जितने समय में दूसरी पाठशालाएँ कठिनता से एफ० ए० बी० ए० करा पातीं उतने समय में पाठशाला के विद्यार्थी कहीं के कहीं जा पहुँचते, बहुत से तो ऊंचे पदाधिकारी हो गए थे।

सरकार की ओर से ऐसी पाठशालाएं प्रत्येक गांव में खोलने का सुझाव रखा गया था। उस के लिए कान्त की सेवाएं भी सरकार की ओर से प्राप्त करलीं गईं थीं यही नहीं, उस का क्षेत्र भी कान्त के परामर्श से ग्रामों में ही रखा गया था।

समालखा भी एक आदर्श ग्राम बन गया था, बिजली, पानी, साफ-सुथरी सड़कें और इस के अतिरिक्त सब से बड़ी विशेषता जो लोगों को वहां दिखाई पड़ती थी, वह थी आपस में भाई चारे की भावना, सहयोग की भावना ! धीरे धीरे वह मिट्टी का ग्राम एक प्रकार से सोने की प्रतिमा की नाईं दमकने लगा था, जिसे वास्तव में शिक्षित

कहा जा सकता है, वहाँ का प्रत्येक व्यक्ति उस से भी कहीं आगे पहुँच गया था, एक और बात जो उस ग्राम के लिए गौरव पूर्ण हो उठी थी, वह थी उस ग्राम से निकले प्रचारक जो भिन्न-भिन्न ग्रामों में जाकर इस प्रकार के ग्रामों का आयोजन करते। पाठशालाओं का निर्माण करते विद्यार्थी।

जिस प्रकार गंगोत्री से निकली गंगा का रूप केवल एक नाली के समान होता है, परन्तु धीरे-धीरे वह गंगा का प्रबल रूप ग्रहण कर सागर में जा उसे अपने रूप में ही समा लेती है, उसी प्रकार कान्त का प्रारम्भिक कार्य गंगा का वह रूप दिखाई पड़ा था परन्तु उस की विशालता का अनुभव लोगों को होने लगा था। लोगों को आशा थी कि एक बार पुनः भारत के सच्चे दर्शन उन लोगों को ग्रामों में ही मिलेंगे। इस प्रकार आत्म निर्भर हो, यह देश अपनी खनिज-पदार्थों के कारण एक बार फिर से धनी कहा जाने योग्य हो जायेगा।

इतना सब कुछ होने पर भी सुखदेई की सन्तुष्टि नहीं थी, पाठशाला के कुलपति के आसन पर आरुढ हो जाने पर वह आवश्यकता से अधिक व्यस्त हो गई थी। परन्तु कुछ भीतर ही भीतर उसे कान्त की चिन्ता खाए जा रही थी, उसका यह लड़का किस कारण धीरे २ अपना स्वास्थ्य समाप्त कर मृत्यु की ओर किस वेग से बढ़ रहा है, यह उस से छिपा नहीं था, कार्य के भार के कारण ही वह दुर्बल नहीं हो गया, चिड़चिड़ापन तथा खीझ कुछ भी तो उसका कारण नहीं जिस बात को ले वह अपना सर्वनाश कर रहा है, उस के पूरे होने की पूरी आशा उसे थी, परन्तु किस स्थिति तक पहुँच कर वह पूरी होगी, क्या उस समय तक के उसका अपना लड़का बचा रहेगा, यह ठीक है उसका उल्लेख करने मात्र से घृणा से वह मुँह फेर लेता है, परन्तु इतनी बड़ी

घृणा कितने स्नेह का द्योतक होती, यह भी उस से छिपा नहीं था। केवल मुख से घृणा करता है। कह देने भर से वह घृणित व्यक्ति मन से दूर जाकर नहीं बैठ जाता, उस के विपरीत मुंह फेर कर खड़े होने पर अथवा व्यस्त रहने का ढोंग रचने पर तो वह मनुष्य के चेतन अवचेतन मस्तिष्क पर छा कर रह जाता है। प्रयत्न कर अनेकों युक्तियां दे मनुष्य उसे मस्तिष्क से निकाल बाहर फेंकना चाहता है, परन्तु मस्तिष्क की बात मस्तिष्क मान सकता है परन्तु मस्तिष्क की बात हृदय नहीं मान पाता, इसी कारण बल लगाने पर वह व्यक्ति दूने वेग से उसके हृदय को मथता बैठा रहता है। कान्त जैसा व्यक्ति अपने दुख का ढिंढोरा पीटता नहीं फिरता इसी से उस जैसे व्यक्ति की दशा उस फोड़े के समान हो जाती है जो बाहर से नहीं दीखता, प्राण ले लेने पर भी वह दीखे अथवा नहीं, यह भी नहीं कहा जा सकता।

इस बीच एक और घटना हो गई, जिस ने सुखदेई को एक दम से विचलित कर दिया। कचहरी में पेशी भुगताने कान्त गया था वहीं से जब ट्रक में शव के रूप में उसे लाया गया तब सुखदेई एक दम से पत्थर की मूर्ति बनी खड़ी देखती रही। सहसा किसी का स्वर कान पड़ आने से चौंक पड़ी। दादी ! हमारा दोष नहीं है, भैया अकेले ही सब से भिड़ पड़े। बोले—"मेरे कारण तुम्हें प्राण देने की आवश्यकता नहीं है।" और यह क्या उन के वस में आते, बड़े भैया दूर एक वृक्ष के नीचे खड़े थे। उन्हें देख भैया उन के पास जा पहुंचे उन के पैरों पर लाठी रख बोले—भैया इस प्रकार दूसरों को क्यों मरवाते हो तुम्हारे भाई होने के नाते इन लोगो के वस में मैं नहीं आ सकता। चाहो तो अपने हाथों मार दो। नहीं तो मुझे आज्ञा दो........इतनी ही बात मुख से कर पाई कि रामचन्द्र डाका के आदमियों ने भैया की खोपड़ी चूर चूर कर दी तौरा कर भैया गिर पड़े तब कहीं हमें चेत हुआ, उन सब को तो ठिकाने लगा

आए परन्तु भैया बच जायें तब तो।

सुखदेई उन स्त्रियों में से नहीं थी जिनके लिए अपने बड़े से दुख से पहले, अपना मान और उस से भी पहले प्रतिशोध होता है बोली—"अपना ट्रक कहां है ?"

"बाहर है दादी !"

"अपने कितने आदमी हैं ?"

सुखदेई की बात सब लोग समझ गए उस दिन जैसी उसकी मूर्ति उन्होंने कभी नहीं देखी थी। उसमें से एक ने विनम्र हो कहा—"तुम भैया को देखो, दादी उन्हें हम भुगत लेंगे।"

"तुम भुगतने वाले होते तो मुझे मुंह दिखाने से पहले डूब मरते।"

"भैया की दशा ऐसी ही जो थी ......।"

"ठीक है प्रातः होने से पहले रामचन्द्र यहां होना चाहिए, जीवित ! मृतक नहीं।"

रात्रि के लगभग तीन बजे कान्त को चेत हुआ, क्षीण स्वर में बोला—"मैं कहां हूं......।" सहसा मां को देख बोला—"इस बार नहीं बचूंगा मां।"

क्रोध के कारण सुखदेई भीतर ही भीतर सुलग रही थी, इसी कारण सहसा कान्त की बात का उत्तर उसके मुख से नहीं निकल पाया कान्त ने फिर स्वर में कहा—इस में बड़े भैया का दोष नहीं है मां !"

बात सुन मारे जलन के सुखदेई के अंग अंग से मानों चिंगारियां फूट पड़ीं हों—"तेरे बड़े भैया का दोष है, अथवा नहीं यह तेरे ठीक होने पर सुन लूंगी।"

"परन्तु मां !"

"चुप रह नालायक तू मुझे अपनी मां कहता है फिर भी पिट कर चला आया, शत्रु के चरणों पर लाठी रख कर दया की भीख मांगता है।"

"वह बड़े हैं मां !"

"शत्रु घोषित करने पर बड़ा छोटा कोई नहीं रहता, और फिर इस प्रकार समर्पण कर अन्याय को जो प्रोत्साहन मिलता है, यह भी सोचा है, अन्याय करने से बड़ा अपराध अन्याय सहना होता है, इतनी छोटी सी बात क्या तुझे बतानी पड़ेगी।"

उन लोगों की वह बातचीत वहीं रुक गई—रामचन्द्र को एक प्रकार से बन्दी की भांति पकड़े वह लोग आ पहुंचे थे। रामचन्द्र को देख सुखदेई एक दम कठोर हो उठी—"तो मेरा अनुमान झूट नहीं था, तुम्हें स्मरण होगा रामचन्द्र, एक दिन इसी घर में पुलिस से प्राण बचाने में तुम्हें सहायता मिली थी, उस समय यदि मेरे श्वसुर तुम्हें पुलिस में दे देते तो आज उसी कुल लड़के पर हाथ छोड़ने का साहस तुम्हें नहीं होता, ये काम आज भी हो सकता है, परन्तु तुम्हारी बात सुने बिना वह करूंगी नहीं, कारण कि तुम एक बार इस कुल के शरणागत रह चुके हो, वही ध्यान यदि न होता तो तुम्हारी बोटी-बोटी काट कर फिकवा देने की शक्ति मुझ में है।"

रामचन्द्र एक विख्यात डाकू रह चुका था, उसका आंतक चारों ओर फैला था। समपर्ण कर, डकैती न डालने की प्रतिज्ञा लेने भर से सरकार ने उसे दस हजार रुपये और डेढ़ सौ बीघे जमीन दे दी थी। एक दिन अपनी डकैती के दिनों में उसने कान्त के दादा की शरण ली थी। उन्होंने निर्भीक भाव से इन्सपेक्टर को कह दिया था—हां आडे से, पर मेरी छत तळे उसे पकड़े इसा माई का लाल कूण जन्मा है।"

वही बात स्मरण करा विमल ने उसकी सहायता ली थी, परन्तु जिस पर उसने हाथ छोड़ा था वह इस प्रकार उसे छका जाएगा इसकी आशा उसे नही थी, मन ही मन कान्त की वीरता पर वह मुग्ध हो गया था इसी कारण धोखे से हाथ छोड़ने वाले अपने आदमियों का खूब पिटाई उसने की थी—जिस समय वह लोग पहुँचे उस समय दूसरे दिन कान्त को ही देख आने की बात रामचंद्र स्वयं सोच रहा था—लोगों पुकार सुन निर्भीक भाव से बाहर आ गया। तेरे भाग्य अच्छे हैं रामचन्द्र दादी ने जीवित ले चलने को कहा है, अन्यथा तू हमारे हाथ से बचता नहीं।"

ठहाका मार कर रामचन्द्र हंस पड़ा—"अरे बावले हुए हो रामचन्द्र से ऐसी बातें आज तक किसी ने नहीं कही। पर उस छोकरे को देखने अवश्य चलूंगा, वह सिंह है सिंह।"

इसी कारण सुखदेई की बात सुन आश्चर्य का वेग सम्भाल वह कान्त की चारपाई के पास पहुँचा—"शाबास दादा! मैं भी कहूँ इस भांति रामचन्द्र का कन्धा तोड़ जीवित कैसे चला आया।" फिर सुखदेई को सम्बोधित कर बोला—"दादी! रामचन्द्र मरने से कभी नहीं डरा, बदनामी के विचार से फांसी नहीं चढ़ना चाहता था, इसी से तुम लोगों की शरण ली थी, उस दिन इस घर ने मुझे प्राण दिए थे, आज चाहे ले भी सकता है। पर दादी उसके लिए इन लोगों की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, तू एक बार कह दे, यहीं तेरे सामने रामचन्द्र मर कर दिखा देगा। एक और बात है, मुझे पता नहीं था ईभी हमारा दावा है, बड़े भाई ने मुझे कुछ बताया नहीं था बताने पर मैं इस पचड़े में नहीं पड़ता।"

दो चार क्षण विचार कर सुखदेई बोली—"तब ठीक है,

रामचन्द्र तुम जाओ, जिससे निपटारा करना है, उससे मैं स्वयं निपट लूंगी।"

रात्रि भर अचेत अवस्था में कान्त जो कुछ बड़बड़ाता रहा, उसे देख सुखदेई के विचारों की पुष्टि हो गई कि सुमित्रा उसके मस्तिष्क पर पूर्णतया छाई हुई है। अपने मन के उद्वेग के कारण दिखाई पड़ने पर वह कुछ भी कर सकता है।

लगभग कान्त की बात सोचते-सोचते ही उसने प्रात: कर दी थी। जिस प्रकार प्रयत्न करने पर भी अपने को असमर्थ पा मनुष्य की छाती के भीतर कोलाहल-सा मच जाता है, तब भीतर ही भीतर घुसे श्वांस उस छाती को बेध कर बाहर के उपक्रम में सफल न हो पा उसका समस्त अन्तर झिझोड़ कर रख देते हैं, विचलित हो भावावेष में वह विचित्र प्रकार की उथल-पुथल अनभव करता है, चैन से दो क्षण को भी बैठना उसका नहीं होता, उसी प्रकार सुखदेई भी एक विचित्र प्रकार की उद्विगनता का अनभव करते रात्रि बिता दी।

दूसरे दिन प्रात: ही कान्त को चेत हुआ, मां को सिराहने किसी विचार में रजलग्न देख उसका हाथ छू बोला—"मां!" कान्त की ओर देख सुखदेई ने आंचल से मुंह पोंछ लिया। कान्त को समझने में समय नहीं लगा कि जो दादी सब के सम्मुख पत्थर की नाईं कठोर बनी घूमती है, जिसे कभी विचलित होते नहीं देखा, वही उसके लिए मन ही मन दुख पाती स्वयं उससे छिपा, उसी के लिए दु:ख पा रात्रि के निस्तेज अंधकार में आंखों का पानी बहा देती है। कोई भी उसके उस दुख को नहीं पहचानता, पहचानने की तो बात दूर रही, वह भी दुख पा सकती है, उसके अन्तर में भी पीर उठ सकती है, कुल मर्यादा के अतिरिक्त दूसरा कोई शब्द अंकित है, इस पर कोई भी विश्वास नहीं करेगा। दूसरों की बात छोड़ो उसे स्वयं कितनी ही बार संशय हो

आया है कि वह उसे वास्तव में स्नेह की दृष्टि से देखती भी है, अथवा नहीं।"

द्रवित हो मां की गोद में बांह डाल करवट बदल बोला—"मां मेरी ओर देखो, मां सच जानो इस में बड़े भैया का कुछ भी दोष नही है।"

सुखदेई ने जिस ढंग से कान्त की ओर देखा, उस से कान्त एक प्रकार से सिहर गया, यह ठीक है, उसकी उस दृष्टि में क्रोध नहीं था, जलती वह अग्नि नहीं थी, जिस के पड़ने पर कठोर-कठोर पाषाण भी पिघल कर रह जाते हैं, कठोरता थी परन्तु उस कठोरता में भी ऊपर तक स्नेह भरा था, धीरे-धीरे कान्त की छाती पर हाथ फेरती कुछ समय तक सुखदेई बैठी रही, सहसा बोली—"अच्छा कान्त! मां से भी कोई तेरी भांति मिथ्या बात कहता है। अपने बड़े भैया को तू प्राणों से भी बढ़ कर चाहता है, यह मैं जानती हूं, परन्तु मां पर तेरा तनिक भी प्यार नही।"

"है क्यों नही मां! एक बार कह देखो, तुम्हारा यह लड़का अपने हाथों से अपना सिर उतार कर तुम्हारे चरणों पर रख सकता है।"

"वह तो तू सरलता से कर सकता है, मेरे बच्चे! पर इस प्रकार यदि किसी दिन तेरी मां को अपना पुत्र नहीं मिला तो वह कहां टक्कर मार कर मरेगी, बता तो।"

कान्त के आश्चर्य की सीमा नहीं रही, जिस प्रकार स्वप्न संसार में भी पहाड़ के पिघल जल धारा बन कर बह जाने का विश्वास मनुष्य को नहीं होता, उसी प्रकार विमाता का विश्वास मनुष्य को नहीं होता, उसी प्रकार विमाता को इस प्रकार उद्वेगों के प्रवाह में बहते देख, सहसा कान्त को अपने कानों पर विश्वास नहीं हो पाया, मुंह फाड़े पागलों की भांति वह उसका मुंह ताकता चुप पड़ा

रहा, पल भर पश्चात सुखदेइ पुनः बोली—"तू अपने बड़े भैया का अनिष्ट नहीं चाहता इसीसे क्या मां के प्राण लेने पर तुला है।"

"नहीं मां ऐसी बात नहीं है··· ।"

"न सही, मैं तेरा मन दुखाना नहीं चाहती, तू यदि अपने भैया को बचाना ही चाहता है तो उससे कह दे यह उत्पात भविष्य में न करे। अन्यथा एक के मर जाने पर दूसरे को अपने हाथों मार बाँझ बनने का सामर्थ्य तेरी मां में है।"

"कह दूंगा मां, परन्तु सच जानो इस बार उनका तनिक भी दोष नहीं था—जिस समय यह सब हुआ उस समय वे कह रहे थे, तू वास्तव में मेरा भाई है।"

"वह सब तू जाने, मुझसे इस बात का कोई सम्बन्ध नहीं! और देख अब तू शीघ्र ठीक हो जा तुझे इस प्रकार पड़ा देख मेरी छाती फटने लगती है।"

मां को अनुकूल देख विनीत स्वर से कान्त ने कहा—"एक बात कहूँ मां! तुम क्रोध नहीं कर सकोगी। पहले ही बताए देता हूँ। भाभी और कमल को बुला दो।"

नहीं! "वह नहीं आयेगी।" उठती हुई—सुखदेई ने कठोर स्वर में कहा—"मेरे घर में उस घर के किसी प्राणी का आना नहीं हो सकता है। चुपचाप पड़ा रह!" बात पूरी कर वह जाने को मुड़ी ही थी, कि सहसा अपने सम्मुख सलोचना को देख वह ठिठक कर रह गई—पास आ सास के पांव छू मुस्कराते हुए सलोचना ने मधुर स्वर में कहा—"घर तुम्हारे बेटे का ही नहीं है मां, मेरे लाला जी का भी है।"

सुखदेई तनिक भी पसीजी नहीं—"नहीं तुम्हारे देवर का नहीं

हैं, यह घर जिस कुल का है, उस में एक बार आने के लिए मना करने पर किसी का आना नहीं होता।"

"तुम्हारी बात माने लेती हूं मां! परन्तु तुम इस घर की बहू हो, उसी प्रकार मैं भी हूं, काम होने पर घर न आने से उस के द्वार बन्द नहीं हो जाते हैं, हो जाने पर मालिक के आने पर उन्हें खुलना ही पड़ता है, चाहे वह छोटा ही मालिक क्यों न हो। इस घर की बहू होने के कारण मेरा वह अधिकार तुम भी नहीं छीन सकोगी मां!"

"यह सब बकवास सुनते रहने के लिए मेरे पास समय नहीं है बहू, अपने कान्त के पास में तुम लोगों को कदापि नहीं आने दे सकती।" बात असंगत निकल गई है, यह स्वयं सुखदेई को खटक गई।

सलोचना सास के स्वभाव को जानती थी परन्तु हार मानने वाली वह नहीं थी, सास के प्रचण्ड प्रभाव के तले रहने पर भी उस ने सदा अपनी बात मनवा ली है, और उस दिन तो बात मनवाए बिना उसका काम नहीं चलेगा, गम्भीर स्वर में बोली—"तुम्हारा कान्त! तुम्हें लाला जी मां कह कर पुकारते है, मुझे नहीं कहते क्या इसी से क्या वे तुम्हारे ही होकर रह गए हैं और किसी का क्या कोई अधिकार नहीं रहा। उस दिन तुम कहां थी जिस दिन आ कर मेरे पांव पर सिर रख कर लाला जी ने कहा—"भाभी मैं हूं तुम्हारा देवर कान्त!" उस दिन उनकी इस भाभी ने सोच लिया अब तक एक कमल था, अब दो हो गए। यह सब तुम क्या समझोगी मां, समझूंगी मैं जिस दिन सचि घर छोड़ कर चली गई उस दिन लाला जी ने तुम्हारी गोद में सिर डाल कर तुम से नहीं कहा था। अभागिन मेरा सर्वनाश कर गई। भाभी! कहा था मुझ से।" बिना रुके ही सलोचना कहती गई। उस दिन मेरे सूने कान देख कर बोले यह क्या भाभी! गहने क्या हुए?

मैंने उदास स्वर में कह दिया—"कुछ नहीं भाई, बेच दिए।"

दो क्षण चुप खड़े रहे फिर कहने लगे—'तुम चिन्ता मत करो, मैं अभी ले आता हूं !'

मैंने मना कर कह दिया—"नहीं लाला जी ! मैं किसी प्रकार भी उन्हें नहीं ले सकूंगी।"

बोले—"लोगी कैसे नहीं, मैं क्या तुम्हारा देवर हूं, तुम तो मेरे पिछले जन्म की मां हो, तुम्हें खोजता हुआ मैं इसी कारण शीघ्र चला आया हूँ, कि कहीं दूसरा कोई और अधिकार न जमा कर बैठ जाये, फिर भी देखता हूँ वह जन्म छोड़ने में मुझे चाहे देर न लगी परन्तु तुम्हें खोजने में देर अवश्य लग गई, इसी कारण तो कमल अधिकार जमा कर बैठ गया है, परन्तु उस से डर मुझे नहीं है मुझ से छोटा है, जब चाहूंगा कान मल दूंगा।" तब तुम कहां थीं, मां ! तब यही तुम्हारी बहू, उन की यह भाभी कितना समय उन्हें वक्ष में भर रोई है, यह तुम क्या जानो, सचमुच तुम मेरी मां हो इसी से उन्हें अब तक ले जा नहीं सकी अन्यथा सूख कर आधे रहे अपने लाला जी को कदापि नहीं छोड़ती—तुम बुरा मत मानना, तुम तो मेरे लाला जी की कसाई मां हो, तुम से भय खा वह मेरे पास आ मन का दुख सुख कह जाते हैं, तुम से वह भी नहीं देखा गया, इस से डाह कर रोक लिया, पर मां एक बात आज तुम भी समझ लो, जिस के कारण पति को छोड़ आई हूँ उसके कारण तुम्हें भी छोड़ दूंगी, इसमें तनिक भी संशय तुम मत रखना।

आश्चर्य से सुखदेई बहू का मुख ताकती रही, उस की वह बहू सर्वदा से अल्प भाषी रही है, कभी किसी समय में उच्च कण्ठ से उसे कुछ कहते नहीं सुना उस दिन भी उस का कण्ठ स्वर ऊंचा नहीं था, परन्तु उस कोमल कण्ठ स्वर में जो दृढ़ता छिपी थी, उस से सुखदेई

पहले कभी परिचय नहीं हुआ था, उस की उस बहू ने कभी हट कर कुछ माँगा नहीं, मांगने पर, किसी प्रकार भी छोड़ने वाली नहीं है, इस बात का ज्ञान भी उसे उस दिन ही हुआ, साथ ही उस की "कसाई माँ" होने वाली बात उस के अन्तर तक को बींध गई, उस की सत्यता में उसे स्वयं भी तनिक भी संशय नहीं रहा, इतनी भी बात आजतक वह नहीं समझ पाई, उस जैसी पाषाण के पास पलने योग्य उसका कान्त नहींहै, दुलार के अभाव में उसके उस लड़के पर क्या बीतती होगी। उसे लगा हो मानो उसकी अन्तरात्मा कह रही हो सुख देई पाषाण के मध्य मधु नहीं उपजता, रह भी नहीं पाता। फिर वह लड़का क्यों कर रह सका, मातृहीन होने के कारण उस का हृदय स्नेह शीतल छाँव ढूढ़ने के लिए तड़पता रहा और वह स्वयं पत्थर की मूर्ति बनी वन्दना पूजा ही पाती रही, अधिक से अधिक श्रद्धा भी उसे मिली-परन्तु आदर स्नेह तो दूसरी ही कोई लूट ले गई-और फिर ठीक भी तो है, पत्थर की प्रतिमा के सम्मुख जो कुछ चढ़ाया जाता है हाथ बढ़ाकर वह उसे ग्रहण भी तो नहीं कर पाती, फिर किस बलबूते पर मनुष्य उस से चिपट मन का सुख दुख कहे-कान्त का सिर वक्ष में भर-मेरे बच्चे ! तेरी यह माँ तुझे स्नेह नहीं करती, तुझे पुचकार तेरे सिर पर हाथ नहीं फे पाती तो, केवल एक कारण कि विधाता ने-उसकी छाती में हृदय के स्थान पर पत्थर रख दिया है उसकी रगड़ से कहीं वह तुझे कष्ट न हो, इसी से ! अन्यथा मेरे लाल तुझे छोड़ तेरी इस अभागिन माँ की दूसरी और कोई पूँजी नहीं है। बात सोचते ही उसकी आंखें भर आई, न जाने क्यों उस दिन प्रयत्न करने पर भी उसकी आँखों का जल नहीं रुक सका। कान्त की खाट के पास पहुँच, उसके कपोलों पर हाथ रख बोली-"मैंने तुझे बहुत दुख दिया है कान्त !" साथ ही पास कुर्सी पर बैठी सुलोचना का सिर गोद में डाल बोली "तेरे लाला जी !" तुझे सौंप कहीं तीर्थ करने निकल जाऊं बहु। यही चाहती हूँ, वह पाजी भी इस के सिर पर हाथ रख पिता का स्थान

ग्रहण कर ले तो... सच-जान अपने इस बटे को दूर से देख भर लेने का अधिकार ही तुझ से माँगूंगी, और कुछ नहीं बहू-तू मुझे उस से वंचित नहीं रखेगी, यह भी मैं जानती हूँ ।"

देवर भाभी दोनों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, अपने को संभाल सुलोचना धीरे से उठी- "वाह माँ तुम भी खूब हो, दो क्षण भी अपनी बड़ी बहू को अधिकार जमा कर बैठने नहीं देना चाहती, चलो न सही अधिकार और हाँ, रही तीर्थ की बात, वहाँ तो मैं, लाला जी और कमल हम सभी चलेंगे ।"

बहू की बात सुन सुख देई को हंसी आ गई- "चल कल-मुही तुम लोग क्या बुढ़े हो गए हो ! जो मेरे साथ चलोगे, देखती हूँ मुझे छुट्टी देने को तुम लोगों का मन नहीं करता ।" पर बहू अब कहां तक तुम लोगों की राह का रोड़ा बनी रहूँगी ।

चट से सुलोचना ने उत्तर दिया—रोड़ा यहाँ रह कर नहीं बन सकोगी माँ ! हम सब एक हो तुम्हारे विरुद्ध षड़यन्त्र रचते रहेंगे, वहां जाने पर तो तुम हम लोगों को कोसती रहोगी ! ना, बाबा, ना ! वहाँ हम लोग नहीं जाने देंगे ।

"ओ री चांडाल ! तू क्यों हमें बदनाम करने पर तुली है," कान्त को लक्ष्य कर कहा— "तू मुझे छोड़ आयेगा ना कान्ता !"

इस बार माँ की बात का उत्तर कान्त ने दिया—"छुट्टी की बात नहीं है माँ ! तुम्हारी यही आज्ञा मैं नहीं मान सकूंगा, इसके अतिरिक्त और चाहे जो आज्ञा दे देना परन्तु यही आज्ञा तुम मत देना ।"

"दूसरी आज्ञा देने का समय जब आयेगा देखा जायेगा पर अब तू चुपचाप पड़ा रह ।" कह सुख देई जाने लगी ।

कमल अब तक चुप बैठा था । धीरे उठ दादी के पांव छू चाची के पायँते जाकर बैठ गया था, धीरे धीरे उस के पांव दबाता वह उन सब की बात सुन रहा था अनायास ही दादी से बोला-"बड़ी माँ हमें अब

निकालोगी तो नहीं ?"

पोने की बात सुन सुखदेई उठ बैठी. " वाह रे शैतान तू भी इन लोगों में मिल गया-सलोचना को सम्बोधित कर बोली-" देख लो पाजी को कैसा सीधा बना बैठा है- चल आ रे मेरे साथ मैं तेरे चाचा के लिए दूध गर्म कर दूं तू तब तक मेरे पास बैठेगा ना ?" अन्तिम बात कमल से कह सुख देई सुलोचना को सावधान करते हुए बोली तनिक इसे देखियो बहू ! और देख अधिक बड़ बड़ तुम लोग मत करना समझे ।"

सुख देई के जाते ही कान्त ने हंस कर भाभी से कहा- वाह भाभी आज तो तुमने मोर्चा मार लिया, सच तुम्हारा ही कलेजा है भाभी ! मैं तो मां के सम्मुख बोल भी नहीं पाता ।"

"अरे तुम नहीं जानते लाला जी, मां ऊपर से कड़ी इसी कारण रहती है कि कोई उनकी दुर्बलता न पकड़ ले-और हां तुम भी ध्यान रखना, बड़े से बड़े कठोर को रास करने की शक्ति तुम्हारी इस भाभी में है ।"

धीरे से कान्त हंस दिया—"यहां आओ भाभी ! तनिक मेरे पास आकर बैठो ।" सलोचना के सिराहने बैठने पर बोला—" यूं नहीं तनिक अपने यह हाथ हटा लो, तुम्हारी गोद में सिर रखूंगा ।"

सहारे से उसका सिर गोद में रख सुलोचना ने परिहास किया—तुम भी क्या दूध पीते बच्चे जो गोद में सिर डाल सुलाना होगा-ना बाबा ना ! यह सब करना है तो सुमित्रा को बुला भेजो । "मेरा बस का यह सब नहीं है ।"

"भाभी तुमसे कितनी बार कहा है उसका नाम भी मैं सुनना नहीं चाहता ।"

"और तुम ने यह समझ लिया कि मैं भी मां के समान मान जाऊंगी । पागल हुए हो लाला जी, तुम्हारी भाभी इन धमकियों में आने वाली नहीं है ।"

दोपहर को कान्त की आंखें लग गई थीं। रात्रि भर सुमित्रा का नाम ले बड़ बड़ाता रहा। रात भर बड़ बड़ाने की बात कह सुखदेई ने अपना मत सलोचना पर व्यक्त कर दिया-सुख देई को सांत्वना दे सलोचना ने इतना ही कहा-"वह सब मैं सुलट लूंगी मां, तुम उसे खोज मंगवाओ बस।"

"वह यदि उस ने कुछ ऊंच नीच कर ही दी हो तो ?"

"ऊंच नीच करने वाली वह नहीं है मां! मुझ से तो वह मिलती रहती थी, मैं उस की नस नस को पहचानती हूँ।" परम प्रतापी मां के प्रबल तेज को वह पागल सहार न पाई, तुम्हारी बड़ी बहू थोड़े ही है जो तुम्हारा मन पा जाती, जब पा जायेगी तब वह भाग जली-भी तुम्हारे चर्णों को छोड़ संसार में और कहीं नहीं जायेगी, विश्वास रखो मां! तुम्हारी छोटी बहू कोई भी पाप करने योग्य कार्य नहीं कर सकती इतना मैं समझती हूँ।

बात वहीं समाप्त हो गई- सलोचना की बात से सुख देई को कुछ धीरज बंधा, मानों छाती पर रखा भारी पत्थर सलोचना के उस विश्वास ने एक क्षण में ही उतार कर फेंक दिया हो।

आज तक अपनी उस बड़ी बहू को सरल सीधी ही वह समझती आई थी, उस की उस बहू का मन कितना उदार है, कितना बुद्धिमान है यह मानो आज उसे किसी दूसरे ने सुझाई हो, अब तक एक प्रकार से जिसकी ओर से आंखें मूंदे वह चैन से बैठी थी, उसे अकस्मात अन्नपूर्णा की मूर्ति देख, उसे आश्चर्य भी हुआ और श्रद्धा भी, तब स्नेह से गद्‌गद् स्वर में वह कह बैठी- "एक अन्नपूर्णा है दूसरी लक्ष्मी। बस भगवान अब मुझे कुछ और नहीं चाहिए, एक तू उस अभागे को सम्मति और दे दे, फिर चाहे तू मुझे अपने पास बुला लेना, तनिक भी आपत्ति मुझे नहीं होगी।"

—:o:—

१६

कान्त से संघर्ष करते करते विमल को लगभग आठ वर्ष हो चले थे, आरम्भ में उसने सोचा था कि कान्त उसे भूलभुलयों में रखने के लिए ही वह सब स्वांग रच उसके समक्ष आ उपस्थित हुआ था, धीरे धीरे उसे कान्त के एक आचरण से एक प्रकार की खीज का अनुभव होने लगा था !

इसी कारण जब दयाल बाबू ने उसे कचहरी में ही चेतावनी दे कहा "देखो विमल ! यह सब अच्छा नहीं लगता।"

तब आदर पूर्वक उसने उत्तर दिया था-" चाचा जी ! हमारा समझौता नहीं हो सकता।"

उत्तर में दयाल बाबू ने तनिक आवेश में कहा था- "तुम यह समझते हो, कि वकील होने के कारण तुम्हें पैसे नहीं खर्च करने पड़ेंगे और कान्त वकीलों की फीस में नष्ट हो जायगा मैं भी वकील हूं, तुम से अधिक मुकदमे मैंने लड़े हैं, मेरे रहते कान्त को भी वकीलों पर धन व्यय नहीं करना पड़ेगा, यह बात तुम ध्यान में रखना।"

दयाल बाबू की बात सुन एक प्रकार की अज्ञात प्रसन्नता विमल को हुई थी, वास्तव में वह उन व्यक्तियों में से था जो अपने सम्मुख प्रति-द्वन्दी देख जिनका मन भिड़ जाने को छटपटाता है, वह प्रतिद्वन्दी जितना

ही सशक्त एवं बुद्धिमान होता था परन्तु दुर्भाग्य से जिसे प्रतिद्वन्दी के रूप में उसने चुन लिया था, वह तो किसी प्रकार ठीक उसके सम्मुख नहीं पड़ता, केवल चुप चाप खड़ा एक प्रकार से उसका मुँह चिड़ा रहा हो, जब भी पूरी शक्ति से उससे झूझ पड़ता है तो अपने ही बल के कारण भूमि पर आ रहता है, इसी कारण उसकी खीझ की सीमा भी नहीं थी, आज तक उसे जितने भी प्रतिद्वन्दी मिले थे, उन से दो दो हाथ कर कम से कम मन की संतुष्टि तो हो गई थी, परन्तु इस प्रकार धराशय हो जाने पर भी वह कान्त के आक्रमी होने की बात नहीं मान पाता, यह ठीक है, इन सब के पीछे प्रबल प्रतापी मां का हाथ रहता है, परन्तु जग की दृष्टि में तो उस पर वह करारी चोट कान्त की ओर से ही की गई दिखाई पड़ती है।"

विमल की यह मनोस्थिति भी अधिक समय तक टिकी नहीं रही एक प्रकार से जब वह आर्थिक संकट में आ घिरा तब कान्त के आच-रण ने मानो उसे बौखला दिया हो, यह तो प्रतिद्वन्दी का सा आचरण नहीं ? तो क्या कान्त वास्तव में उसे बड़े भाई के रूप में देखता है, उसी कान्त का कर्जा बीस हजार से ऊपर जा पहुँचा था, उस ने कर्जा समझ कर नहीं दिया, लेने को उतावला भी वह नहीं । एक ऐसे व्यक्ति के विनाश की बात उसने क्योंकर सोची यही बातें घूम फिर कर उसके सम्मुख आ खड़ीं होतीं ?

कारण भी स्पष्ट था, पितृहीन बालक के रूप में वह इतना बड़ा हुआ यह बात दूसरी है कि पिता यदा कदा पहुंचते थे परन्तु उससे ही क्या मनुष्य की अतृप्त इच्छा की तृप्ति हो जाती है, यह ठीक है कान्त का इस में दोष नहीं था, परन्तु कान्त को जो पिता का स्नेह प्राप्त रहा, वही उसका शत्रु बन बैठा, बाल्यकाल से ही यदि पिता कान्त का परिचय घनिष्ट भ्राता के रूप में दे देता तो सम्भवतः अपने उस छोटे भाई को छाती से चिपटा अपने मन का ताप भुला वह चुप हो रहता, सम्भवतः

तब अपने उस भाई के लिए वह सारे संसार भर से लड़ने को तत्पर हो जाता।

कई बार मन में आता वह उस का भाई है और फिर इसमें उस का क्या दोष है, प्रथम भेंट में ही वह अपनी जो छाप विमल के हृदय पर अंकित कर गया था वह कभी विमल के मन से निकल नहीं पाती थी, उस के मुख से जो शत्रु शब्द निराशा का जो अधकार कान्त के मुख पर पुत गया था वे किसी दिन भी विमल प्रयत्न करने के पश्चात् भी विसार नहीं पाया।

कान्त की इन्हीं बातों से प्रभावित एक दिन सब मुकदमे उठाने की बात उस ने सलोचना से कही थी, परन्तु दूसरे ही क्षण सोचा, हो सकता है रुपये दे वह यह दिखाना चाहता हो कि उसके पास रुपया रहने पर भी कान्त को हराया नहीं जा सकता। इस के पश्चात् फिर समझौता करना उस का नहीं हो सका। सलोचना के कहते रहने पर भी वह माना नहीं। न मानने पर भी कान्त का व्यक्तित्व उस पर इस प्रकार छा कर रह गया था कि प्रतिक्षण वही उसके समक्ष रहता। इसके अतिरिक्त वह और कुछ वह सोच भी नहीं पाता। इतना कुछ होने पर भी वह कान्त से समझौता नहीं कर पाया, उस का कारण अज्ञात रूप में सलोचना और कमल थे जिस समय वह लोग मुग्ध कंठ से कान्त की सराहना करते सलोचना कह बैठती ओह, लाला जी ! वह तो देवता है, देवता।"

तब खीज कर वह कह देता "हां, हां ! राक्षस तो मैं ही हूं।"

तब सलोचना शान्त स्वर से उत्तर देती "यह तुम हर बात अपने ऊपर क्यों ले लिया करते हो।"

कितनी ही बार जब कमल कहता, "आज चाचा जी ने मुझे साईकिल दी।"

अथवा किसी और वस्तु का उल्लेख करता तो विमल झुंझला कर कहता "तो मैं क्या करूं।

इन सब बातों के होते रहने से धीरे धीरे विमल में घृणा समाप्त होती जा रही थी, न जाने क्यों वह चाहता था उस के उस छोटे भाई की प्रशंसा करने का अधिकार भी दूसरे को न हो चाहे वह उस के कितने ही अपने क्यों न हों।

एक और भी कारण था, न जाने क्यों कान्त की अनुपस्थिति में उस का मन उसके लिए छटपटता परन्तु साक्षात्कार होने पर अपने मन के वह भाव व्यक्त न कर पा केवल क्रोध ही उसे चढ़ आता था, सम्भवत: उस का कारण कान्त के विनम्र स्वभाव एवं अन्याय को सहलेने के कारण से हो। बड़े से बड़ा अन्यायी भी यह नहीं चाहता कि मनुष्य चुप-चाप सहज रूप में मुस्कराता वह सब शान्त भाव से सहता चला जाय और ऐसा अत्याचार जिस के कारण सम्भवत: संसार का प्रत्येक मनुष्य चीत्कार कर उठे। तब अत्याचारी दूने वेग से उसे परास्त करने में जुट जाता है दिन प्रति दिन उसके अत्याचार उनमें छिपी क्रूरता बढ़ती चली जाती है।

जिस दिन कान्त उसे पाठशाला का कुलपति बनाने आया उस दिन आश्चर्य से वह कान्त के मुख की ओर देख उठा, प्रयत्न करने पर भी मन में छिपा स्नेह वह छिपा नहीं पाया- "क्यों रे। तू क्या अपने बड़े भैया को इस प्रकार घूस देने पर तुला है।"

नहीं बड़े भैया, घूस तो कहने से दी जाती है, मैं तो केवल तुम्हारी वस्तु तुम्हें देने आया हूं।"

"मेरी कैसे हो गई, इतना जी जान खपा कर उस का निर्माण किया तूने, अब जब मान मर्यादा का समय आया है, दूसरो को बांटता फिरता है। "मैं पूछता हूं कान्त! तुझे सूझ बूझ कब आयेगी।"

दूसरों को कब बांटता तुम कोई दूसरे हो? पिताजी हैं नहीं, उन के स्थान पर हो तुम! रही मान मर्यादा की बात, वह भी तुम्हारी ही है बड़ों के सम्मुख छोटों की मान मर्यादा नहीं होती, बड़े भैया।"

"अच्छा कान्त ! मैं तेरे साथ इतनी शत्रुता निभा रहा हूँ, तू क्यों इस प्रकार आकर घिघयाया करता है, शत्रु के सम्मुख यह सब करना क्या शोभा देता है विमल।"

विमल के पाँव छू कान्त बोला, "यह मत कहो भैया, अपने छोटे भाई से शत्रुता करने वाले तुम नहीं हो, मेरी परीक्षा ले रहे हो, परीक्षा ! मैं जानता हूँ जिस दिन मैं उत्तीर्ण हो जाऊंगा उस दिन इन चरणों में स्थान मिलने में मुझे समय नहीं लगेगा।"

"अरे वाह देवर जी ! सच पूछो तो इस प्रकार बात बात में तो स्त्रियां भी पाँव नहीं पड़ती।" कहती सलोचना आ पहुँची थी, उसे साड़ी पहने देख विमल समझ गया, देवर ने एक और साड़ी भाभी को ला दी है। हंस कर बोला- "देखती हो इस पागल की बात मुझे पाठशाला का कुलपति बनाने आया है।" फिर गम्भीर होकर बोला—" नहीं, कान्त ! यह काम मैं नहीं संभाल पाऊंगा ! इस काम के लिए माँ से उपयुक्त और कोई दूसरा तुम्हें नहीं मिल सकता।"

दोनों भाइयों को इस प्रकार की बातें करते देख सलोचना प्रसन्न हो उठी "क्या बात है, आज तो दोनों भाई घुल मिल कर बातें कर रहे हो, क्या किसी के विरुद्ध षड़यन्त्र चल रहा है।"

उत्तर दिया विमल ने- "अरे इस पाजी के साथ षड्यन्त्र करूंगा, यह तो मेरा जन्म जन्म का शत्रु है, पितजी तो इसके पक्ष में थे ही, आते ही मां को भी ले गया ?"

कान्त हंस कर रह गया, परन्तु सलोचना चुप नहीं रही, "इसी से तो कहती हूँ मेरे देवर से अब भी संधि कर लो, अन्यथा घाटे में रहोगे।"

जाने विमल किस मनोस्थिति में था, झट से बोला "हां रे कान्त ! मां क्या सहमत नहीं होंगी।"

परन्तु जहां क्षति पूरी किये बिना सुखदेई का मानना नहीं हुआ,

वहाँ वकील होने के नाते एक बात विमल भी समझ गया कि एक ओर से समझौता नहीं हो पाएगा। और जो दस पांच मुकदमे उसने उलझा रखे हैं, उनके सरकारी मुकदमे भी कम नहीं बन गये समाप्त नहीं होंगे अपने चारों ओर बने जाल में फंस जाने का सा बोध विमल को हुआ, यह ठीक है, इसका कारण हार जाना कदापि नहीं था—था केवल कान्त पर उसका स्नेह।

कान्त के साथ उस दिन वह पाठशाला गया था, वहां अपने और सलोचना के बड़े बड़े चित्रों नीचे लिखा था "अपने आदरणीय सँगरक्षक श्री विमल कुमार पारावर," पाठशाला की प्रेरक श्रीमति सलोचना देवी !" चित्रों की ओर देख सहज मे ही वह समझ गया था कि दो चार दिन के बने वह नहीं है, वर्षों पहले उनका निर्माण हुआ है।

इन सब छोटी मोटी बातों ने मिल कर विमल को एक प्रकार से असहाय बना दिया था, एक प्रकार से क्रांति के विरुद्ध और अधिक षड्यन्त्र करना उसने छोड़ दिया था।

सुमित्रा के चले जाने के पश्चात कान्त पर उसका स्नेह प्रगाढ़ होता गया अब जब कभी वह कान्त से मिलता तो आधा पौना घंटा बैठ गप शप लगाने का मोह भी वह सरलता से नहीं त्याग पाता। इस बीच मुकदमे बाजी केवल एक यंत्र चलित कार्य का रूप धारण कर रह गई थी।

सुमित्रा के घर छोड़ कर चले जाने के पहले से लगभग दयाल बाबू के यहाँ जाना विमल ने छोड़ दिया था, उस घटना का पता चलते ही बड़े भाई का उत्तरदायित्व समझ वह वहां जा पहुँचता, धीरे धीरे दयाल बाबू की गिरती दशा देख, एक प्रकार से दयाल बाबू की सेवा सुश्रुसा में ही उसका अधिक समय लगता था, एक बार कान्त से उनके रोगी होने की बात भी उसने कही थी, परन्तु कान्त ने उसे सुना अनसुना कर दिया।

कई बार सुमित्रा और कान्त की बात ले उस ने सलोचना से परामर्श भी लिया, सलोचना ने कह दिया, तुम देवर जी को नहीं जानते मरने पर भी वह सुमित्रा को क्षमा नहीं करेंगे।"

"करेगा कैसे नहीं, मेरी आज्ञा टालने का साहस तुम्हारे देवर में नहीं है।"

"आज्ञा ! आज्ञा किस आधार पर देने जाओगे, सुनूं तो ?

पत्नी के मुख की ओर देख कर वह आश्चर्य में पड़ गया—"किस आधार पर, तुम यह जानना चाहती हो, या तुम्हारा देवर जानना चाहता है ?"

"अभी तो मैं ही पूछ रही हूँ !"

"ठीक है जब वह पूछेगा तो उत्तर दे दूंगा।"

इस बीच विमल के मामा गंगाचरण का देहांत हो गया था, तब एक बार माँ के सम्मुख उपस्थित हो, पांव पकड़ यह सब झंझट निबटाने की बात विमल ने सोची थी। परन्तु घर गये पिता के चचेरे भाई नरेन्द्र के कारण इसका जाना नहीं हुआ, वास्तव में नरेन्द्र इन सब मामले में सुलझा हुआ खिलाड़ी था, पिता से प्राप्त लाखों रुपयों की सम्पत्ति उस ने मुकदमे बाजी में ही स्वाहा कर दी थी, अपने हिस्से की दुकाने उस ने जयपाल के पास गिरवी रख दी थीं, लिखा पढ़ी न होने के कारण उस भी कान्त पर मुकदमा कर दिया था। मनसे न चाहने पर भी विमल को उसे सहायता देनी पड़ रही थी। अपनी वाक्य चातुर्य के कारण नरेन्द्र पुनः विमल के मन में घृणा उपजाने में समर्थ हो गया था, "तू नहीं जानता विमल, जयपाल तो तेरी मां को ले आना चाहता था, मेरे तो सामने की बात है, जयपाल ने इस से पूछा तो इसने मना कर दिया।"

उस पर विश्वास विमल को नहीं हुआ परन्तु इसी प्रकार छोटी मोटी बातों से कान्त के प्रति शंका विमल के मन में उपजने लगी। जिस प्रकार विमल सें अपने पास से पैसे व्यय कर दूसरों से मुकदमें लड़वाता

था, उसी प्रकार उसकी पीठ पर हाथ रख नरेन्द्र ने कहा "अरे तुझे क्या चिन्ता है, जितने पैसे लगेंगे मैं दूंगा। तू केवल अड़ा रह।"

वार बार आ कर वह कहता "देख लिया रे ! आज वह कान्त का बच्चा तुझे गाली दे रहा था, वह भी मेरे सामने, मैंने कहा- "नहीं भैया ! कान्त ऐसा नहीं है, पैसे की कमी से पिछड़ा जा रहा है, वरना तो तुम्हें वह क्या समझता है।"

अकड़ कर बोला- "अरे चाचा ! इसी कारण तो उसे रुपया देता हूँ कि कल को वह यह न कह सके कि रुपए के कारण......

बिगड़ कर विमल बोला- "क्या कहता था इसी कारण रुपया दिया है।" "हां भैया और वह भी मेरे सामने मैंने ताड़ दिया।"

बोला अरे चाचा ! पर उसका आपने देखा उस के हाथ का लिखा मेरे पास है, वह मुझे भिकारी गनाने की बात कहता था, अब देखता हूँ कौन भिकारी बनता है।"

यह सब बातें जिस समय बीती थीं, उस समय नरेन्द्र वहां उपस्थित नहीं था, इसी कारण उस की यह बातें विमल के मन में घर कर गईं। दुर्भाग्य से विमल को यह ध्यान नहीं रहा कि उन बातों का उल्लेख प्रत्यक्ष परोक्ष में उस के सम्मुख वह स्वयं कर चुका है, इसी कारण मारे क्रोध में उस का अन्तर तक कांप गया, बोला "और मेरे पास आ ऐसा ढ़ंग रचता था मानो उसे से बड़ा भगत दूसरा कोई न हो।"

और ढ़ोंग की बात मत पूछो, "पक्का ढ़ोंगी है, पक्का, कहता है, देख चाचा कैसे मां बेटों को लड़ा दिया।" "मैं तो लाग लपट रखता नहीं भाई ! स्पष्ट कह दिया" यह तो तुम्हारा अन्याय है कान्त !" बस फिर क्या था बकने लगा ऊट पटांग।"

उत्सुकता से विमल ने पूछा "क्या कहता था-"

"नहीं भैया ! मैं नहीं वताता, कल को तुम दोनों भाइयों का

मेल हो जाये और मैं व्यर्थ में बुरा बनूं, ना बाबा, मैं तुम्हारे झगड़े में नहीं पड़ना।"

"नहीं चाचा! उस से मेरा समझौता नहीं हो सकता, अब तक मां के कारण चुप था, अब देखूंगा कितना उड़ता है।"

"उड़ने में क्या कमी छोड़ रखी है। दुनिया भर से कहता फिरता है मैंने घास नहीं खाई विमल जैसे मेरे नखों में भरे पड़े हैं, मां और बेटे दोनों को भीख न मंगवा दी तो कहना, राम राम! ऐसा पाजी लड़का हमारे कुल में आज तक पैदा नहीं हुआ।"

तभी किसी काम से सलोचना उधर से जा रही थी बाहर से उनकी बातें सुन घूंघट निकाल वह भीतर कमरे में आ पहुंची, नरेन्द्र को को लक्ष्य कर बोली "चाचा जी! देवर जी भीख मंगाएंगे तो हमें, तुम्हें नहीं। वह हम निबट लेंगे। तुम्हें व्यर्थ में माथा गरम करने की आवश्यकता नहीं है।"

सकपका जाने वाले लोगों में नरेन्द्र नहीं था, कहने लगा तुम्हारा दोष नहीं है बहू! वह लड़का है ही ऐसा पाजी ऊपर से इतना सीधा है पर सच जानियो उसके पेट में जलेबी जितने बल हैं। अब तुम हो देखो, तुम्हारी सास की पाई पाई उस ने छीन ली है, उसका क्या बिगड़ता है, इधर से भी तुम्हारा पैसा, उधर से भी तुम्हारा पैसा, और आप भला का भला।"

कठोर स्वर में सलोचना बोली "आप हम लोगों के आदरणीय हैं, इसी से अब तक की गई आप की बातों को ले झंझट नहीं करूंगी परन्तु इस घर में आप का मान अब से मान नहीं हो सकेगा।"

विमल कुछ कहने ही जा रहा था, उसे कुछ भी कहने का अवसर न दे, उसे सम्बोधित कर बोली– "घर तुम्हारा ही नहीं है, इस प्रकार अपने घर में अपने ही देवर के विरुद्ध बातें सुनने का धैर्य मुझमें नहीं है तुम्हें भी यह सब अनाप शनाप कहने नहीं दे सकती।"

घबराते हुए विमल बोला- "हम लोगों की बातों में पड़ने की आवश्यकता तुम्हें नहीं, भीतर जाकर अपना काम देखो।"

उसकी हां में हां मिला कर नरेन्द्र बोला- "हां बहू मर्दों की बातों में नहीं बोला करते। और हां कमल को भी उस के पास मत जाने दिया करो कहीं कुछ दे दिया तो ... ..."

सलोचना टस से मस नहीं हुई, नरेन्द्र को सम्बोधित कर कहने लगी "अपने देवर को मैं जानती हूं चाचा जी, तुम्हारे जैसे वे नहीं हैं, मां होती तो बताती कि उन्हें विष किस ने दिया था, भाग्य था जो वे बच गई इसी कारण पच्चीस वर्ष तक तुम्हारे दर्शन भी नहीं हुए, पूछ सकती हूं आज इतने दिनों पश्चात भतीजे पर इतनी ममता क्यों उपज आई, अब तक क्या यह आपके भतीजे नहीं थे।

हाथ से डोरी खिसका देने वाला नरेन्द्र नहीं था, "अब झूठ को कैसे झुठलाऊं बहू, दिया था, तुम्हारे तायसरे ने, मढ दिया मेरे मत्थे। अच्छा मैंने दिया होता तो विमल तो क्या थाने में रपट लिखी नहीं होती। विष ने जब काम नहीं किया तो घर से निकाल दिया, यह भी क्या मैंने किया था।

इतनी मिथ्या बात कह कोई इस प्रकार दबंग रूप से बैठा रह सकता है, इस प्रकार इतनी निर्लज्जता से अपमान सहने की भी सीमा होती है ! जल कर सलोचना ने कहा "बहुत हुआ चाचा जी ! मेरे घर से आप इसी समय निकल जाइये।"

सलोचना का वाक्य पूरा होने से पहले ही विमल ने सलोचना पर हाथ छोड़ दिया- आश्चर्य से छुटकारा पाने में सलोचना को अधिक विलम्ब नहीं लगा, बोली, "देखती हूं ! इन लोगों का रंग तुम पर खूब चढ़ा है, घर बिगाड़ डालने को तुम तुले बैठे हो, परन्तु यह सब मैं नहीं होने दूंगी ! आप दोनों अब मेरी बात समझ लीजिए।"

नरेन्द्र ने अपना अस्त्र छोड़ा- "तुझे ऐसा उस से क्या मोह

है बहू !"

उस के कहने में जो कटाक्ष छिपा था वह सलोचना से छिपा नहीं रहा, फिर भी संयत स्वर में उसने उत्तर दिया- "वे मेरे देवर है चाचा जी !"

"पर बहू ! देवर के कारण पति से भी कोई लड़ता है, जीवन तो देवर के साथ नहीं पति के साथ चलाना है ।"

मारे क्रोध के सलोचना के तन बदन में आग लग गई । पति को सम्बोधित कर बोली- "थू है तुम पर ! तुम्हारे सामने मुझे अपमानित होना पड़ा और तुम इस प्रकार सुनते रहे, "साथ ही नरेन्द्र को सम्बोधित कर बोली "तुम्हारे भाग्य अच्छे है जो लाला जी यहां नहीं हैं अन्यथा आज के पश्चात फिर कभी ऐसी बात मुंह से निकालने के लिए आप बचते नहीं ।"

इस बार नरेन्द्र ने भी कुछ ऊंचे स्वर में कहा "मैंने कोई झूठ नहीं कहा, देवर के साथ तुम्हारी क्या खुसर फुसर होती है, यह क्या मुझ से छिपा है ? ठीक है, बहू तेरे मन में पाप नहीं हो सकता, पर यह संसार तो यह नहीं समझता, और वह भी क्या सोच कर तुम्हारी गोद में पड़ जाता है, सच बात है बहू हमारे समय में तो कभी ऐसा होता नहीं था ।"

पत्थर सी बनी सलोचना सब सह गई-केवल इतना कह पाई "तुम कितने नीच हो चाचा जी ! मुझसे से छिपा नहीं नहीं था परन्तु इस प्रकार अपने लड़के पर कलंक थोप सकते हो यह आज जान पाई हूं ।" वह बाहर चली गई ।

उस के जाते ही नरेन्द्र ने विमल से कहा- "मैं जानता हूं बहू के मन में पाप नहीं है परन्तु शत्रु पर क्या भरोसा करना चाहिए ! और फिर ऊंच नीच होते क्या समय लगता है ?"

इस बातों से विमल संयम खो बैठा था, उखड़ कर बोला भगवान

के लिए अपनी यह बातें बन्द करो चाचा !"

खिसया कर नरेन्द्र बोला- "ठीक है भाई ! बुरा तो लगना ही हुआ. यह बातें अच्छी कैसे लगती हैं, पर अपना ही पैसा खोटा हो तो परखने वाले का क्या दोष।"

"तुम्हारे पांव पड़ता हूं चाचा तुम जाओ।"

"अच्छा ! तेरा मन ठीक नहीं है, मैं भी चलूं—फिर आऊंगा।" कह नरेन्द्र ने विदा ली।

उस घटना के पश्चात पति पत्नी के बीच एक प्रकार की खाई सी खिंच गई, आपस में बात चीत कितने ही दिनों तक नहीं हो पाती।

काम में उलझा रहने के कारण विमल से कान्त का मिलना भी नहीं हो सका था फिर माँ की आज्ञा का उलंघन कर वह विमल के घर चला आता था, परन्तु महीनों से उसका आना नहीं हुआ इसी कारण विमल का संशय बल पकड़ गया था, तभी एक दिन एक आदमी कान्त की ओर से आकर विमल को धमका गया- " देखले ! तू यदि अपने आपने बड़ा लाट समझता हो तो बता दे हम सुलट लेंगे, या फिर ये मुकदमा उठा ले, अन्य था तो सिर फाड़ देंगे, समझा।"

उस समय नरेन्द्र भी वहीं था, उत्तर उसी ने दिया था, " जा जा आया है सिर फोड़ने वाला। जा अपने हिमायती से कह दिये हम मिट्टी के बने ना सें,

"अच्छा तो फिर देख लेंगे !" कह वह व्यक्ति चला गया उस के दूसरे दिन विमल पर आक्रमण हुआ, यह ठीक है आक्रमण कारियों को इस के आदमियों ने भगा दिया, उसे कुछ चोट भी नहीं आई इस प्रकार कान्त के ओछे हथकन्डों पर उतर आने की आशा उसे नहीं थी।"

अपने बचाओ के लिए आदमियों को जुटाने का काम उस ने

नरेन्द्र पर छोड़ दिया था चार दिन पश्चात पेशी है, वहाँ भी आक्रमण न हो जाए इस भय से नरेन्द्र ने आदमियों का प्रबन्ध करने की बात कही थी- विमल भी सरलता से सहमत हो गया था, परन्तु उस दिन कान्त के साथ नित्य प्रति आने वाले दो चार व्यक्ति देख उसे कुछ आश्चर्य भी हुआ, और जब बिना किसी कारण नरेन्द्र के लाये आदमी उस पर टूट पड़े तब अपने आदमियों को रोक कान्त को अकेले लड़ते देख उस के अश्चर्य की सीमा न रही, आश्चर्य मिश्रित सराहना से कान्त को देखता का देखता रह गया। सहसा आक्रमण कारियों में उस दिन आ धमकी देने वाला और अपने पर आक्रमण करने वाले लोगों को देख बात समझने में विमल को देर नहीं लगा जब तक लाठी ले वह कान्त की सहायतार्थ पहुंचने के निर्णय को वह पूरा करे तब तक कान्त उस के सम्मुख आ उपस्थित हुआ, उस के चरणों पर लाठी पटक जिस समय कान्त ने कहा- "बड़े भैया ! इस प्रकार मेरे विरुद्ध आदमियों की आवश्यकता तुम्हे पड़ेगी जानता नहीं था, तुम्हारा छोटा भाई होने के कारण इन लोगों के हाथ से नहीं मारा जा सकता, परन्तु बड़े भैया ! इन को आज्ञा न दे अपने इस छोटे भाई को आज्ञा दी होती, अब तक कान्त का सिर तुम्हारे चरणों में होता ।"

विमल कुछ कह पाये, इस के पहले ही तीन चार लाठियां कान्त के सिर पर आ पड़ी, भौंचक्का सा जड़ हुआ वह ज्यों का त्यों खड़ा रहा कहने सुनने की शक्ति उस की मानो लोप हो गई हो, जिस समय उस को चेत हुआ उस समय पुलिस पहुंच चुकी थी । दू रे लोगों के साथ विमल भी हवालात में बन्द कर दिया गया, मारे आत्म ग्लानि के विमल का आत्म हत्या करने को हुआ, नरेन्द्र के बीच में पड़ जाने से गड़बड़ हो गई जिस की उसे चिन्ता नहीं थी, परन्तु बड़े भैया ने यह सब किया है. यही सोच कान्त का मन असीम घृणा से भर उठेगा, उसकी कल्पना करते वह स्वयं ही सिहर उठा। कान्त को क्या पता कि

नरेन्द्र के हाथों में पड़ बड़े भैया ने अपना सर्वनाश अपने हाथों से कर लिया है। सहसा सलोचना की कही बात उसे स्मरण हो आई। "कुछ लोग दूसरों का वंनाश करने में ही प्रश्न्न रहते हैं। तुम्हारे चाचा उनमें से हैं।"

मय ही सलोचना को खो देने की बात स्मरण हो आई पत्नी पर इतने ओछे आरोप लगाने पर क्या उसे पुनः प्राप्त किया जा सकता है? इसके अतिरिक्त और बहुत उसने सोच डाला, और कितना सोचता परन्तु हवालात से निकाल सिपाही उसे थानेदार के पास ले गया, थानेदार ने उसे सम्बोधित कर कहा- "आप की जमानत हो गई है।"

"अच्छा।"

कह मुंह उठा गिरीश को देखते ही वह समझ गया कि उस की जमानत कान्त के उस मित्र ने ही दी है, तभी गरीश बोला- "विमल बाबू। वचन बद्ध हूं, अन्यथा तो तुम्हें जेल में सड़ा देने को मन करता है, सच मुच यदि कान्त मुझे बांध न जाता तो ···एक बात सुन लीजिए आत्मा नाम की वस्तु आप के पास नहीं है, आप के लिए घृणा ही मेरे मन में है चलिए आपको दिल्ली छोड़ आऊं—कारण मां के भेजे आदमी मेरे न रहने पर तुम्हें जीवित नहीं छोड़ेंगे।"

"चलिए!" कह विमल साथ हो लिया।

सुचित्रा की बात ले जिस दिन गरीश पर कान्त बिगड़ बैठा था उस दिन से वहां जाना उस का नहीं हुआ था। पिछले दो सालों से वह वहां रहता भी कम था पेशी वाले दिन वह गरीश से मिले बिना नहीं जाता था, इसी कारण उस दिन भी उस के मिलने की आशा उसे थी, परन्तु यह सब उत्पात हुआ जान कर वह घटना स्थल पर पहुंचा था, उसके पहुंचने से पहले ही लोग पकड़ लिए गए थे, वह विमल को ठीक उल्टी सीधी सुनाने के अभिप्राय से वहां से थाने की ओर चला था, वहां पहुंचते ही उसे कान्त की बात स्मरण हो आई उसका विनीत स्वर उसे

स्पष्ट सुनाई पड़ा, "गिरीश तुमसे मेरी एक विनती है, भाई ! किसी भी कारण खिन्न हो तुम बड़े भैया का अनिष्ट मत करना उस के स्थान पर आवश्यकता पड़ने पर उन्हें बचाना भी तुम्हारा ही कर्तव्य है।"

"मुझ से यह सब नहीं होगा।"

"होगा कैसे नहीं ! सच जानो गिरीश बड़े भैया को कुछ भी हो जाने से तुम्हारा यह मित्र सर्वदा के लिए संसार त्याग कर चला जायेगा, मेरी इस बात में संशय तुम मत रखना।"

"अबे चला जायगा तो मेरी क्या भैंस खोल लेगा, अभी चला जा ना धौंस क्या देता है ?"

हंस कर कान्त ने कहा था- "पागलों के कहने से कुछ नहीं करता।"

और फिर वह बात परिहास में उड़ गई थी- परन्तु जाने से पहले फिर गम्भीर हो कान्त ने वह बात पुनः कही थी" तुम पर मुझे बहुत भरोसा है गिरीश ! देखना मेरी लाज तुम्हारे हाथ है।"

अपनी गाड़ी में विमल को बिठा मन का रोष वह संभाल नहीं पाया बोला- "ऐसे भाई पर आदमी छोड़ते आपको लाज नहीं आई।"

विमल की मनोस्थिति बात-चीत करने योग्य नहीं थी, खीझ कर बोला—"कृपया आप मुझसे इस समय बातचीत न करिये।"

मारे क्रोध के गिरीश का समस्त शरीर कांप उठा—"सच मुच कभी अपराध नहीं किया, आज करने को मन करता है, गाड़ी टकरा दोनों मर सकते हैं, परन्तु उस पाजी ने मुझ से यह अधिकार भी छीन लिया है—'बड़े भैया को कुछ हो गया तो संसार त्याग कर चला जाऊंगा।' उल्लू कहीं का, मरण प्राप्त दशा उस की नहीं होती तो यही कहता—पर रहने दो तुम यह सब क्या समझोगे।" उस के पश्चात

गिरीश कुछ नही बोला। आत्म—ग्लानि से कुढ़ता विमल लगभग दो बजे घर पहुंचा।

कुंडा खोलने सलोचना आई थी—उसे सम्बोधित कर गिरीश बोला—"लीजिए सभालिए अपने पति देव को और धन्यवाद दीजिए कान्त को जो यह फांसी से बच जायेंगे।"

गिरीश की बात सुनते ही वह कौन है, यह समझते सलोचना को विलम्ब नहीं लगी—अपने उस मित्र का उल्लेख कितनी ही बार कान्त ने किया था। उसे इस प्रकार उलझन में छोड़ कर जाते देख, वह अपने को रोक नही पाई आगे बढ़ कर बोली—"बात क्या है लाला जी! इस प्रकार इतनी रात्रि में भाभी के घर में क्रोध कर लौट जा रहे हैं।"

मुड़ कर गिरीश खड़ा हो गया—"मुझ से क्या पूछती हैं आप! पूछिए इन से जिन्होंने अपने आदमियों से आज कान्त की हत्या करा दी है।"

जड़ होना यदि किसी को कहा जाता है, एक प्रकार से वही सलोचना हो गई थी सहसा उस के मुख से कुछ भी नहीं निकला, म्युनिसिपैलटी द्वारा लगी गली की बत्ती के धुंधले प्रकाश में उस के मुख को पीला पड़ते गिरीश ने देखा, भाभी कान्त पर कितना स्नेह है यह बात उस से छिपी नहीं थी, बिल्कुल पुत्र की भाँति वह समझती है यह बात कान्त के मुख से कितनी ही बार वह सुन चुका था, एक बार झोंका लेते हुए सलोचना को उस ने देखा, जब अचेत हो गिर जाने का भय उस के मन में उपजा, इसी कारण उसे सम्भालने को वह आगे बढ़ा—परन्तु उसे रोक सलोचना बोली—"नहीं देवर जी! प्राण नहीं निकलेंगे।" साथ ही विमल को सम्बोधित कर कहा—"आज तो ठंडक पड़ गई तुम्हारे कलेजे में, मैं पूछती हूँ उन्होंने क्या बिगाड़ा था

तुम्हारा !" और फिर बावलों की भांति भीतर घुस कमल का हाथ पकड़े बाहर आ गई —"एक को मार दिया इसे भी मार दो ! मार दो इसे भी तुम्हारी बहुत बड़ी कृपा होगी। नहीं मार सकते तो मैं मारे देती हूँ, फिर तुम सुखी मे रहना—अरे ओ कसाई ! जिस भाई ने तेरे पेट में रोटी ठूंसी, तेरे बीवी बच्चों को बचाया, उसी को मार आया, खड़ा क्या है, मार दे, हम दोनों को भी मार दे, नहीं मार सकता, ले इस का गला मैं घोट देती हूँ, मुझे फांसी हो जायेगी फिर तू सुख से रहना।" कह बालक का गला उसने घोटना प्रारम्भ कर दिया—कमल की आंखें बाहर निकलती देख गिरीश को चेत हुआ। झपट कर उसने सलोचना का हाथ पकड़ छुड़ाना चाहा, उस के हाथ को झटक बोला—"पागल हो गई हो भाभी !"

"हां भाई पागल ही तो हो गई हूँ। जब तीन-तीन दिन की भूखी प्यासी इस घर में पड़ी थी तब वही लाला जी ! मुझे सिर की कसम दे रोटियां खिलाते थे, वह मेरे लिए क्या थे, तुम लोग क्या जानो ? कमल मेरे पेट से जन्मा यह तो एक दिन भी रोटी खिलाने को नहीं मचला और वह, हाय रे ! यहीं इसी घर में न रो रो कर पीछे पड़ जाते, एक दिन नही खाने पर फर्श पर सिर पटकने लगे, सच जानो एक दिन तो आलू जैसे गोले पड़ गए, बोले—"तुम मेरी मां हो ! मुझे मरते देख सकती हो तो 'मत खाओ !" और फिर विमल से बोली, कसाई एक बार तो सोचा होता, जिस के सिर पर बाप नहीं, तुम्हें बाप समझ जो तेरे पास आता था—कहता था, 'बड़े भैया पिता के स्थान पर हैं भाभी !' उन के अनिष्ट की बात मत सोचो। परन्तु तुम नही समझोगे। तुम कैसे समझ सकते हो, इस जन्म में मेरी कोख से जन्मे होते तो समझते।"

गिरीश को अपनी त्रुटि समझते विलम्ब नहीं लगा—पास आ

सलोचना के दोनों हाथ पकड़ बोलो—"कान्त अभी जीवित है, भाभी ! हां चोटे बहुत लगी हैं, घर पर हैं।"

अभी जीवित है ? "पागलों की भांति गिरीश के पांव पकड सलोचना कहने लगी जीवित है ! तो मुझे ले चलो भाई। सच जानो मैं उन्हें बचा लूंगी—मेरे बिना वह मर नहीं सकते, भगवान के लिए मुझे ले चलो।"

"तुम कपड़े बदल आओ भाभी ! मैं यहां खड़ा हूँ।"

"कपड़े बदल आऊं ! कौनसा उनके विवाह में जा रही हूँ भाई ? और फिर इतना समय भी कहां है, नहीं भाई, मैं यूं ही चलूंगी मेरी छाती के बीच जो बवंडर मच रहा है वह तुम क्या समझोगे।" कह कमल का हाथ पकड़ बोली—"चल रे कमल-तेरे चाचा के पास रहेंगे बटा अन्यथा तो तेरा बाप तुझे मुझे दोनों को मार देगा। विमल आरम्भ से सिर झुकाये खड़ा था- उसे सम्बोधित कर बोली- "सच जानो उन्हें कुछ हो गया तो तुम्हारा गला मैं घोट दूंगी।" गिरीश की ओर देख बोली—"चलो लाला जी।"

भरे स्वर में विमल ने कहा—,'मैं भी चलू ?"

सलोचना के मानो किसी ने हन्टर मार दिया हो बोली—"क्यों जीवित है इसी से क्या विष दे कर मार डालना चाहते हो, अब इतनी पागल मैं नहीं रह गई हूँ, तुम्हारी छाया भी उन पर नहीं पड़ने दूंगी समझे।"

विमल की भरी आंखें गिरीश से छिपीं नहीं रही थीं बोला—

"चलो बड़े भैया ! तुम भी चलो।"

सलोचना ने पुनः कहा—"ले चलो परन्तु लाला जी के पास

इन्हें नहीं जाने दूंगी ।" पर समझ लेना।

समालखा पहुँच, मनोचना को छोड़ दोनों बाहर खड़े रहे, विमल की मनोस्थिति गरीश से छिपी नहीं थी. कुछ कर न बैठे इसी कारण उसे अकेला छोड़ कर मित्र के पास भी जाना उसका नहीं हुआ ।"

तीसरे दिन कान्त के बच जाने का समाचार प्राप्त कर गिरीश को बुला विमल ने कहा—"गिरीश बाबू ! तुम्हारा मित्र महान है, उस के सहारे सब कुछ छोड़ा जा सकता है, परन्तु उस के समान हर कोई नहीं है, हमारे कुन्बे में एक चचा है, जिन्होंने यह सब उत्पात किया है, मेरे कहने पर आप को तो क्या कान्त को भी वश्वास नहीं होगा, होना भी नहीं चाहिए चार मास में उन का पैसा ले मुकदमा लड़ रहा हूं दिल्ली जा उन के कर्जे के लिए उन्हें मकान देना पड़ेगा, उसके पश्चात् सारा कुछ दोष स्वीकार कर जो कुछ भोगना होगा उस के लिए तत्पर हो कर आप के पास आऊंगा ।"

आदर से विमल का हाथ पकड़ गिरीश बोला—"सब ठीक हो जायेगा आप चिन्ता मत कीजिए मेरे होते... ... ।"

उसे बीच में ही रोक गिरीश बोला—"नहीं गिरीश बाबू मेरे कारण न्याय को आप नहीं छोड़ सकेंगे। आप को मेरी सौगन्ध है जो ऐसा करें तो ! और कान्त का विश्वास खो मैं जी भी नहीं सकता ।"

"उस की ओर से चिन्ता करने की आप को आवश्यकता नहीं है, उसे मैं समझा दूंगा !"

"नहीं, गिरीश केवल यह

एक ही नहीं है, मां है, सलोचना है। नहीं-नही वह सब नहीं होगा। आप को कष्ट करने की आवश्यकता नही है।"

गिरीश के बहुत कहने पर भी विमल रुका नहीं उस के जाते ही गिरीश के मुख से निकल गया—"यह लो भगवान ने सुन ली।"

—:०:—

२०

स्वछन्द रहने वाला मनुष्य जब स्नेह के बन्धनों में चारो ओर घिर जाता है, तब उस की वह स्वछन्द विचरण करने वाली प्रकृति न जाने कहाँ जा कर लोप हो जाती है। तब एक प्रकार से उस का समूचा समय उस के चिन्तन में भरने जाता है, उस के दुख-सुख को वह अपने निजि दुख सुख से अधिक महत्वपूर्ण समझता है, यही नहीं, उसी चिन्ता में खाना पीना त्याग अपनी समस्त शक्तियां को विकसित कर जिस असाधारण शक्ति का परिचय देता है, सम्भवतः किसी अन्य के बारे वह विश्वास नहीं कर पाए, विश्वास तो वह स्वयं अपने पर भी नहीं करता, केवल इतना कह मन को सांत्वना देने की चेष्टा करता है, कि वह सब मेरे पागलपन में वह कर बैठा। परन्तु उस के उस पागल पन का जो परिणाम निकलता है, उस के कारण उस के स्नेह का वह पात्र जीवन प्रयन्त कृतज्ञ रह जन्म जन्मान्तर का दास तक हो जाने को प्रस्तुत दिखाई पड़ता है। तब मनुष्य की प्रसन्नता, पाई गई सफलता से कहीं अधिक होती है, मन ही मन अपने को वह धन्य समझने लगता

है। दुर्भाग्य से यदि उसे असफलता मिलती है, तब इसी दुख से कातर स्वयं अपने क्रोध की सीमा मनुष्य को नहीं रहती।

सुमित्रा के कारण ही कृष्णा इस प्रकार अकेले यात्रा करने को प्रस्तुत हो गई थी, अपने इस जीवन में कभी इस प्रकार का अवसर उसे नहीं मिला था, सम्भवत: सुमित्रा की बातें सोचते अथवा सोते रहने से, इस ओर नहीं ध्यान देने का अवकाश उसे नहीं मिलता, यदि सहसा विनोद को अपने डिब्बे का चक्कर काटते वह न देख लेती, विनोद किस प्रकार का व्यक्ति है, यह कृष्णा से अधिक और कोई नहीं जानता था, वह क्या बवंडर खड़ा कर दे, उस बवंडर के कारण उस का कितना अमूल्य समय नष्ट होगा, यही सोचते-सोचते उसका माथा दुखने लगा था, उस का वह सशय बहुत कुछ ठीक भी निकला, मथुरा के स्टेशन पर दो तीन स्त्री कान्सटेबल ने डिब्बे में आ उस का पूरा पता ही नहीं पूछा, बल्कि उसे घर से भागने के संशय में उतार भी लिया, उस के अनुनय विनय का कोई भी प्रभाव उन पर नहीं पड़ा, दुविधा व असमंजस समाप्त कर कृष्णा कठोर हो उठी।" जब मैंने आप को बताया मैं अपने चाचा के यहां दिल्ली जा रही हूं, तो आप मुझे इस प्रकार तंग क्यों कर रहे हैं यदि आप चाहे तो साथ चल कर पता कर सकती हैं।"

"इतना अवकाश हमें नही है, उन से लिख कर पूछ लेंगे, संतोष हो जाने पर आप को पहुंचा दिया जायगा।"

"पहुंचा दिया जायेगा, कब, जब वह मर जायेंगे, देखिए इस का उत्तरदायित्व आप पर होगा।"

'रहने दीजिए उस की चिन्ता हम लोग करेंगे।"

मन मार कर कृष्णा को उतर जाना पड़ा, उन लोगों ने उसे प्लेटफार्म की चौकी में बैठा दिया. उसी प्रकार बैठे-बैठे उसे आधा घंटा

हो गया, सहसा वहां बैठे हवलदार को किसी काम से भीतर जाना पड़ा, अवसर से लाभ उठा वह चुपचाप भाग खड़ी हुई सौभाग्य से हवलदार को भीतर अधिक समय लग गया था, बाहर आने पर भी उस ओर उस का ध्यान नहीं गया, जब उसे उस का ध्यान हुआ, तब समय आधा घण्टे से ऊपर व्यतीत हो चुका था—"बड़ी तेज लड़की है ?" कह वह पुन: अपने काम में लग गया इस प्रकार के अपराधी पर एक उदासीन दृष्टि पुलिस वालों की रहती है। परन्तु उन की भांति विनोद उदासीन नहीं था। उस के चौकी में पहुंचने पर वह एक प्रकार से निस्संकोच हो गया था, इधर,उधर टहलते रह उस ने काफी समय व्यतीत कर दिया था, कृष्णा को पुन: अधिकार में लेने की युक्ति उसे समझ में नहीं आ रही थी, स्टेशन पर बने अल्पहार ग्रह में एक प्याली चाय पीने के विचार से वह वहां जा बैठा था। वहीं बठे-बैठे हवलदार को कुछ दे दिला सहमत कर लेने की योजना उस ने बना ली। लौटने पर कोई भी उसे दिखाई नहीं पड़ा, घूम कर उस ने एक चक्कर और लगाया, तब तक हवलदार आ गया। उस के पूछने पर कोई गड़बड़ नहीं थी इसी कारण उन्हें छोड़ दिया गया है।" कह हवलदार अपने काम में जुट गया, वह कहां जाएगी यह विनोद भली प्रकार जानता था। सुमित्रा भी दिल्ली में हो सकती है, सोच वह सीधा मोटर के अड्डे पर पहुंचा। पास से जाती मोटर में उसे कृष्णा की झलक दिखाई दी भी, हाथ के संकेत से जाती हुई मोटर उस ने रोकनी चाही, परन्तु यात्री पूरे होने के कारण मोटर नहीं रुकी। टिकट ले वह दूसरी गाड़ी में बैठ गया। लगभग आधे घण्टे के अन्तर से दोनों गाड़ियों ने पहुंचना था। कृष्णा को घर ढूंढने में भी समय लग सकता है खैर ! वहां चल देखा जाएगा—सच मन ही मन योजनाएं विचार बनाता रहा।

दिल्ली पहुंच कृष्णा सीधी दयाल बाबू के घर गई। बाहर खड़ी वह किसी को पुकारने का विचार ही कर रही थी, तब ही टैक्सी में आते विनोद को देख वह अधिक नहीं रुकी सीधी भीतर पहुंच गई, बैठक पार कर जिस कमरे में वह पहुंची वहां बड़े वृद्ध को देखते ही समझ गई कि दयाल बाबू यही हैं, उन के पास इस समय कोई नहीं था, इसी कारण कुर्सी खींच कर चुपचाप बैठ गई, मारे आशंका के उस का हृदय टक-टक कर धड़क रहा था, सहसा पार्वती को द्वार पर वह देख चौंक उठी, उसे लक्ष्य कर पार्वती ने पूछा, कौन हो बेटी ?"

"जी मैं... कृष्णा—बात यह है।"

स्नेह से कृष्णा की पीठ पर हाथ रख बोली—"प्रतीत होता है भयभीत है। कोई बात नहीं, मन सम्भाल लो उस के पश्चात बता देना।

पार्वती के धैर्य बंधाने से कृष्णा का भय जाता रहा था, बोली—"मैं सुमित्रा की सखी हूं मां जी ! वह मरन प्राय है इसी से आप लोगों को लेने आई हूं।"

"मरन प्राय है ! चलो छुट्टी हुई, मर जाएगा ना, मर जाने दो सम्भवतः उस ने यही सोचा होगा, हमारी आबरू चौखट पर रख देने पर भी हम लोग उस के प्राणों का मोह कर उसे बचाने चले आयेंगे, उस से कह देना बेटी ! मेरी ओर से तो वह जिस दिन इस घर की चौखट पार कर गई थी, उसी दिन मर गई थी। रही इन की बात, यह बेटी का मोह त्याग नहीं पाए, इसी कारण प्राण त्याग प्रायश्चित करने पर तुले हैं।"

धीरे से आंखें खोल दयाल बाबू ने क्षीण स्वर में पानी मांगा, सहसा एक अपरीचित लड़की को बैठा देख बोल पड़े, कौन है ? क्या सचि आई है।"

"नहीं आई नहीं, 'मरण प्राय है !' यही सूचना भिजवाई है। सहज भाव से पार्वती ने उत्तर दिया।"

"आई नही ! नहीं, नहीं ! अपने बूढ़े बाबू जी से वह रूठ नही सकती मैं जाउंगा पार्वती उसे लिवा लाऊंगा··· भूल किस से नहीं होती ······।"

पार्वती ने तनिक कठोर स्वर मे कहा—"नहीं इस घर में आना उस का नहीं हो सकता।"

"देखो पार्वती ······।"

"अच्छा पहले तुम ठीक तो हो जाओ फिर ······।"

"मैं ठीक हूं बिल्कुल ठीक हूं, तुम्हारे पांव पड़ता हूं इस बार उसे क्षमा कर दो। ··· आंखों में उमड़ता जल, कुर्ते की बाँह से पोछ धम से वह बिस्तर पर पड़ गए।"

पार्वती का पल्ला पकड़ खींच एक ओर ले आकर कृष्णा बोली—"पहले आप मेरी बात सुन लीजिए।"

कृष्णा की सारी बात सुन दीर्घ निश्वास छोड़ पार्वती बोली—"अभागिन ने अपना भाग्य अपने हाथों फोड़ लिया—'फिर कृष्णा को सम्बोधित कर कहने लगी—"सच जान मेरे हाथ में कुछ नहीं है, कान्त की मां चाहे तो उसे ला सकती है, उन के बिना मेरे इस घर में लाने का साहस किसी में नहीं हो सकता।"

अपनी उन बातों के बीच मार्ग में बीती घटना और विनोद का उल्लेख भी कर दिया था—धीरे से निराशा पूर्ण स्वर में बोली—"देखती हूं मुझे उन के पास जाना होगा। परन्तु मेरे पीछे वह पाजी लगा हुआ है इसी से कहीं विलम्ब न हो जाए।"

उसे मैं सुलट लूंगी—अच्छा बेटी, थकी हुई होगी, अभी समय भी काफी हो गया, कुछ खा पी लो।"

भोजन करते समय सुखदेई का जो परिचय पार्वती से कृष्णा को मिला, उस से कोई विशेष आशा कृष्णा को नहीं रही थी — 'फिर भी एक बार, प्रयत्न करने में कोई हानि नहीं है।' यही सोच प्रात: ही वहां जाने का संकल्प उस ने कर लिया। पार्वती को सम्बोधित कर बोली—"अच्छा मां जी! जीजी, के इतने बड़े दुख के दिनों में भी मां होकर तुम सहारा नहीं दोगी तो पराए लोग कैसे देंगे?"

"पराय वह नहीं है कृष्णा! मैं सुखदेई को पहचानती हूं, स्वभाव की कठोर वह अवश्य है, फिर भी जिसे अन्याय कहना चाहिए—उस के हाथों वह बन पड़ना कठिन है, वैसे भी सचि पर उस को मोह है। सम्भवत: उस हतभागिनी को वह क्षमा कर दे, हां! इस के लिए तेरी जीजी के बहुत बड़े भाग्य होने की कदापि आवश्यकता है।"

"तुम क्यों नहीं चल सकती हो मां जी।"

"नहीं! जिस दिन सुखदेई उसे अपनी बहू बना गई थी उस दिन से उस के बारे में कुछ भी सोचने समझने का अधिकार मुझे नहीं रहा।"

कृष्णा को कुछ कहने का उपक्रम करते देख उसे बीच में ही रोक बोल पड़ी—"नहीं नहीं मुझ से कुछ कहने का उपयोग नहीं होगा, जहां कहने से यह सब होगा, उन्हीं के पास तुम जाओ। कड़ी होने पर भी स्नेह का अभाव उनमें नहीं है, विश्वास रखो, उस के निष्कलंक होने की बात सुनते ही, तुम्हारी इन सब बातों को भली प्रकार सोचने विचारने वाली स्त्री वह सुखदेई है। बिना विशेष कारण के मना भी नहीं करेगी तुम एक बार जाकर तो देखो।"

दूसरे दिन दस बजते-बजते कृष्णा सुखदेई के सम्मुख जा उपस्थित हुई जिस नारी के पास अपनी जीजी के सुख की भिक्षा वह लेने

आई थी, उसके मुख पर बिखरे सौजन्य को देख उस ने मन ही मन सोचा कौन कहता है वह कठोर है। परन्तु उस के बात प्रारम्भ करने के ढंग से कृष्णा क्षणभर को बोखला उठी—"कहो क्या बात है? तनिक शीघ्र कहना अभी मुझे पाठशाला जाना है।"

अपने को सम्भाल कृष्णा ने कहा—"थोड़े समय में समाप्त होने वाली बात मेरी नहीं है।"

अन्तर तक को झिंझोड़ देने वाली दृष्टि डाल सुखदेई ने बहुत कुछ समझ लेना चाहा, उस की उस तीखी दृष्टि को सहार न पा कृष्णा ने सिर झुका लिया। तभी सुखदेई ने कहा—"तब तो कठिन है, न हो तो फिर किसी समय मिल लेना।"

कह सुखदेई जाने को प्रस्तुत हो गई। उस समय उसे इस प्रकार जाते देख कृष्णा बोली—"देखिए मैं बाहर से आई हूँ यहां की रहने वाली भी मैं नहीं हूँ ।"

"जानती हूँ, तुम्हें चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है यहाँ तुम सरलता से ठहर सकोगी।"

"झिझकते हुए कृष्णा ने कहा—"देखिए! मैं सुमित्रा जीजी का समाचार देने आई हूँ।"

जिस प्रकार बात सुन, पलट कर सुखदेई खड़ी हो गई। उसे देख कृष्णा सिर से पाँव तक कांप गई, वास्तव में उस स्त्री के बारे में जो सिंह की भांति 'खा जाने वाली!' शब्द जुड़े हैं उन की सत्यता का विश्वास उसे हो चला था उस की पैनी दृष्टि के कारण उस के समस्त शरीर में फुरेरी-सी दौड़ गई—जीजी के नाम का उल्लेख कर कहीं उस से बड़ी भारी भूल तो नहीं हो गई। अपनी बात का स्पष्टिकरण वह किया ही चाहती थी तब ही सुखदेई बोली—"मेरी बहू का उल्लेख

करने का तुम्हे अधिकार है भी अथवा नहीं, जाने बिना एक भी बात मैं नहीं कर सकूंगी ।"

वास्तव में कृष्णा के भयभीत हो जाने के कारण, तथा संकोच के ढंग से सुखदेई को सन्देह हो गया था, कहीं वह लड़की वास्तव में उसकी बहू का नाम उछालने तो नहीं आई ? कहीं वास्तव में उस की बहू ?

बल पूर्वक सुखदेई ने उस विचार को मस्तिष्क से निकाल सोचा—"पहले इसके बारे में जान लेना आवश्यक समझ यह बात कही थी ।"

इस बार संकोच त्याग कृष्णा ने कहा—"आप बैठिये तो !"

"नहीं ऐसे ही बताओ ।"

देखिए सुमित्रा जीजी मेरी सखी है—"कहते-कहते सुखदेई पर दृष्टि डाल वह क्षण भर को चुप हो गई ।"

"कहती जाओ रुको मत ! जो कुछ कहना हो शीघ्र कह डालो ।"

कृष्णा ने पुन: कहना आरम्भ किया—"विनोद को जीजी नही पहचानती थी, इसी से कान्त भैया पर क्रोध कर वह विनोद को साथ ले गई थी, उस पाजी को जानती हूँ मैं ! इसी कारण जब सारी बातें उन को बताई तो सच जानना माता जी । जीजी कांप कर गई—भाई के साथ मिल कर उन की बहिन का यही कारोबार है । उसी दिन जीजी को किसी के पास भेजने की योजना उन लोगों की थी । उस योजना का मुझे पता चला था—इसी कारण वहां से भाग आने की योजना हम ने बना ली । साथ ही किस प्रकार वहां से भाग कर वह लोग इन्दौर पहुँचे, सब कुछ विस्तार—पूर्वक कृष्णा ने कह सुनाया ।"

कृष्णा की बात सुनते ही सुखदेई जड़ बनी खड़ी रही, बहिन भाई के पवित्र संबन्ध के रहते भी लोग इस प्रकार का नीच कार्य कर सकते हैं, इस का विश्वास उसे नहीं हो पाया। उसकी बहू के सिर पर से कितना बड़ा बवंडर आ कर चला गया, और वह इस सब से अनभिज्ञ घर में बैठी रही और उसकी वह बहू कलंक का कितना बड़ा भार केवल उस के भय के कारण ढोती फिर रही है, छोटी मोटी भूलें किस से नहीं हो जाती। फिर इतनी छोटी सी भूल के कारण जो दण्ड उसे भुगतना पड़ा है वह तो उस से सहस्त्रों दोषों से भी अधिक है—अपने विचारों के प्रवाह में वह पूछ बैठी—"फिर वह यहां क्यों नहीं चली आती।"

मैंने तो कई बार कहा माता जी, परन्तु मेरी क्या वे सुनती हैं। कह देती हैं, अपनी जुटाई हुई कालिमा उन लोगों के मुख पर कैसे पोत दूं।"

"वह क्या पागल हो गई है, उद्यम करने से ही क्या घर के द्वार बन्द हो जाते हैं। ताड़े जाने के भय से कोई घर से बाहर नहीं पड़ा रहता है, वाह रे भाग्य! कैसी पागल बहू मुझे मिली है। इतना कुछ भोगने पर भी तुझे भेजा, स्वयं नहीं आई। अब भी क्या अपनी इस माँ पर उसका क्रोध बना है।"

सुखदेई का इस प्रकार का बदला हुआ भाव देख आश्चर्य करने का भी धैर्य कृष्णा को नहीं रहा। "तुम से वह डरती थी माँ जी। परन्तु कान्त भैया पर उन्हें विश्वास था। तीन मास पहले कान्त भैया वहाँ गए थे जीजी उन के पास गई थीं। परन्तु एक प्रकार से कलंकनी कह उन्होंने मुंह फेर लिया और यहाँ चले आए। जीजी उस धक्के को सहार नहीं पाई······।"

आशंका से सुखदेई पीली पड़ गई। उसकी आशंका कृष्णा से

छिपा नहीं रहा, बोली—"नहीं आप डरें नहीं, परन्तु अधिक विलम्ब करने से काम नहीं चलेगा। जीजी का रोग पर्याप्त मात्रा में बढ़ गया है, उन्हें अचेत अवस्था में नर्स के सहारे छोड़ कर आई हूँ, आप के पहुँचने पर उनके मन में जो विवाद की कालिमा लग गई है, वह छूट जायेगी- माँ जी ! आप नहीं जानतीं, मेरी जीजी आप से क्षमा पाने को कितनी छटपटा रही हैं। मन ही मन आप से भय खाती है, कई बार तो मुझ से कहती हैं—"तू देख लेना कृष्णा मरने से पहले अपनी उस कसाई सास के पास जाऊंगी और उन के सामने ही प्राण त्यागूंगी तो उनकी छाती में ठण्डक पड़ जाएगी। कभी कहती हैं—"और देख तो कहती तो हैं मेरी लक्ष्मी बहू। और वैसे उसे घर से निकाल रक्खा है।"

मैं कहती हूँ—"परन्तु जीजी बिना जाने वह कैसे आ सकेंगी।" उत्तर देती है—"तू नहीं जानती ! इच्छा होने पर तो वह मुझे पाताल से भी खोज लेतीं परन्तु इच्छा हो तब ना, मैं तो उनकी शत्रु हूँ— शत्रु ! मुझे मारे बिना उन्हें कल थोड़े पड़ेगी। अभी पाँच दिन पहले की बात है, दस घण्टे पश्चात् चेत आया था। बोलीं—"कृष्णा ! अब बचूंगी नहीं बहिन ! मेरी सास, हां, हां सास ही तो है, माँ होती तो मुझे क्या यूं ही मरने देती, अपने उस लड़के का कान पकड़ कह सकती थीं, मेरी बहू को निकालने वाला तू कौन है।"

बोलते-बोलते श्वास चढ़ आया था। मैंने शान्त रहने को कहा तो बिगड़ पड़ीं—"शान्त कैसे रह जाऊं मेरी छाती के भीतर जो चक्की चल रही है, उसे तू नहीं जानती। एक बार आ जातीं तो उनका क्या बिगड़ जाता।" थोड़ा समय रुक कर बोली—"मेरी सास देवी है कृष्णा देवी ! मैंने उन्हें समझा नहीं, देखिए उनके आए बिना मेरी मिट्टी नहीं उठेगी—"सच जानना माँ जी प्रयत्न करने पर भी रोये बिना नहीं

रह सकी, तुम अच्छी हो जाओगी। जीजी !" कह सांत्वना देनी चाही उत्तर में कहने लगीं अब नहीं बचूंगी। और बच कर भी लेना क्या है, जब उन की दृष्टि में कलंकनी हो गई तब अवश्यमेव कलंकनी हूँ—मेरी सास अन्याय नहीं करती !" उफनती श्वास रोक लेने से जिस प्रकार छाती फट पड़ने को होती है, मुंह खोल भरपूर प्रत्यन कर वह फेफड़े भर लेना चाहता है, परन्तु निष्फल होने पर पराश्य होने में उसे समय नहीं लगता ठीक वही दशा सुखदेई की हो चली थी। एक प्रकार से जड़वत सी हुई शून्य में दृष्टि इधर-उधर फेंकती वायु में कुछ भी पकड़ न पा हाथों में सिर ले वह बैठने जा रही थी, आगे बढ़ कृष्णा ने उसे पकड़ना चाहा—उसे रोक सुखदेई बोली—"रहने दे बेटी !"

अपने को संयत करने में सुखदेई को अधिक समय नहीं लगा—कान्त की भेंट सुमित्रा से हुई थी इसका उल्लेख सुखदेई से उसने नहीं किया था। इसी कारण जब कान्त के लौट आने पर भी सास नहीं पहुँची तब सुमित्रा के मन में उसके प्रति शंका उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक था, उसकी वह बहू उस पर इतनी अटूट श्रद्धा, इतना अनन्त प्यार रहने पर भी उसके समक्ष नहीं आ सकी।

केवल इसी कारण ना कि वह उससे भय खाती है, सुलोचना के शब्द मुझे स्मरण हो आए—"पत्थर बन जाने पर मां बना जा सकता, इसी कारण पत्थर बन जाने की चेष्टा में तुम्हारी ममता से कोई परिचित नहीं हो पाता लोग यदि तुम्हें नहीं पहचान पायें तो वह तुम्हारी भूल है। उनकी नहीं, इसी से कहती हूँ मां, नियमों पर चलने वाली यन्त्र बन कर तुम मत रह जाओ, जानती हो यन्त्र से केवल काम लिया जाता है, अद्भुत होने के कारण रक्षा की, और कराई जा सकती है, परन्तु मां मन का दुख सुख नहीं कहा जा सकता।"

वही यन्त्र बने जीवन के प्रारम्भ से वह बूढ़ी हो चली हैं, मृत्यु

तक पहुंचने में केवल चारो मास, दो चार वर्ष की सदियां लांघनी शेष रह गई है। परन्तु इस प्रकार अपने उस कठोर व्यवहार पर कभी उसे खेद नहीं हुआ, एक बार भी लज्जा ग्लानि का अनुभव उसने नहीं किया यहां तक एक प्रकार से अपने ही हाथों अपना सुख वैभव भस्म करके उसने रख दिया है। पति के कहने पर भी वह गई नहीं, अपनी उस हठ के कारण विवाहित होने पर भी वह कंवारी की कंवारी बनी रही। जिस अग्नि में वह स्वयं जलती रही, उस में पति को भी झुलसाए रखा, उसकी बात जाने दो, आज वह दो पुत्रों की मां है, परन्तु अपने को क्या वह मां कह सकती है, कोई भी पुत्र उसके समक्ष अपने मन का दुख नहीं रख पाता। यह ठीक है बड़ा अयोग्य है, परन्तु छोटा तो उसके स्नेह के पूर्णतया योग्य है, उसे ही क्या सुख उसने दिया है, यह ठीक है गोद में बैठाने योग्य वह नहीं रह गया, परन्तु गोद में लेने योग्य पौते को भी तो उसने कभी दुलार से पास नहीं बैठाया, वह भी तो आज उससे डरता है, उसके पास आने तक का साहस उसका नहीं होता, वह तो फिर भी अपना है। उसे देखते-देखते इतना बड़ा हुआ है, परन्तु दो दिन के परिचय से ही जिस बहू को उसने खो दिया है क्या कभी उसका विश्वास वह पुनः पा सकेगी यह ठीक है, अग्नि की प्रचण्ड ताप से लोहा पिघल कर अधिक शक्तिशाली हो जाता है, परन्तु इसी से कोमल लकड़ी को कोई अग्नि में नहीं झोंक देता। परन्तु सारा दोष उसका अपना भी तो नहीं है, वह कलमुंही जो इस प्रकार वनवासी बन कर बैठी है—क्या एक बार भी उसे लिख कर नहीं भेज सकती थी, परन्तु लिखती कैसे उसके मुख पर कालिख जो पोतनी थी, न जाने कौन से जन्म का वैर निभा रही है। सहसा कृष्णा को सम्बोधित कर एक प्रकार से विनीत स्वर में कह उठीं—"क्षमा करना बेटी! अपनी इस मां के घर से तुझे भूखा ही चलना पड़ेगा। तेरी बातों से मेरी

छाती के बीच जो उथल-पुथल मच रही है। उसे तू ही समझ सकती है, न हो तो मार्ग में खा लेना बेटी ! इस समय एक क्षण का भी विलम्ब मुझ से नहीं सहा जायेगा—मैं भी कितनी निर्भाग हूं, वहां मेरी बच्ची रो-रो कर प्राण देने को तुली है और मैं यहां आराम से बैठी हूं। तू सच जानियो मुझे उस पाजी ने बहू के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा, कहने पर अपनी बहू को वहां उजड़ प्रदेश में नहीं छोड़ती, चल बेटा अब खड़ी मत रह।"

उसी समय सलोचना किसी काम से बाहर आई थी, बोली—"वाह मां तुम तो यहीं हो मैं तो समझी थी तुम चली गई।"

"पाठशाला नहीं आऊंगी बहू !" सुखदेई ने उत्तर दिया—और देख मैं बाहर जा रही हूं, मुझे दस पन्द्रह दिन, यहां तक एक महीना भर भी लग सकता है, कान्त से कह देना काम से जा रही हूं, आकर बताऊंगी।

"मुझे भी नहीं बताओगी मां !" सलोचना ने कुछ ऐसे विनीत ढंग से कहा कि सुखदेई की आंखों के कोरों से पानी की दो बूंदे छलक आई। स्नेह से सलोचना के सिर पर हाथ रख बोली—"क्या बताउं बेटी ! मेरी एक पागल लड़की मां से रूठ, हठ किये बैठी है, न जाने से उसकी हेटी होगी, परन्तु मैं ठहरी बुढ़िया। उस बेटी को घर लौटा लाने में मेरी क्या हेटी ? फिर मानो अपने से ही कहती गई हो—"पागल ने इतना भी नहीं सोचा, मेरे भी क्या दस-पांच लड़के बैठे हैं, जो एक दो बहू को सरलता से घर के बाहर खड़ा कर दूं, मेरे तो कोई लड़की भी नहीं है जो कुछ भी हो तुम ही लोग हो चाहे बहू कह लूं, चाहे लड़की कह लूं।"

"किस की बात कह रही हो मां ! सुमित्रा की ?"

"तू भी धन्य है री ! और मेरी कौन सी बहू घर से रूठ

तू जाकर बैठ गई है ! तू देख तो उसके कुकर्म ! वहां रो रोकर प्राण देने पर तुली है, यु ही नहीं हुआ आकर मेरी छाती से लग जाती—तू सौगंध खा कर कहना बहु मैं क्या उसे धक्के मार कर बाहर निकाल देती, दो क्षण को मान भी लूं ऐसा ही करती, तो क्या वह कह नहीं सकती थी, घर मेरा भी है और तुम भी मेरी हो, तुम्हारे पाँए पकड़ कर बैठी हूं, देखती हूं कैसे निकालोगी ? परन्तु करती कैसे, अपनी मां के बुढ़ापे में राख कैसे डालती, तू देख लियो बैंत लेकर उसकी चमड़ी नहीं उतार ली तो मेरा नाम सुखदेई नहीं, एक बार पहुंच लेने दे।"

हंस कर सलोचना ने उतर दिया—"चमड़ी तो तुम उतार लेना मां ! परन्तु वह दृश्य देखने के लिये तुम्हारी यह बहु भी चलेगी, जिससे जो कुछ कमी रह जाये उसकी पूर्ती वह स्वंय कर सके !"

"नहीं री ! तेरे जाने की आवश्यकता नहीं यहां कान्त के खाने पीने का ...."

"वह सब अपने आप कर लेंगे नौकर को पुकार बोली—"देख हरिये ! अपने भाई जी का ध्यान रखियो हम लोग बाहर जा रहे हैं, उनसे कह देना हमें महीना भी लग सकता है" पलट सुखदेई से बोली—"चलो मां।"

"फूट गया भाग्य ! क्या यूं ही कपड़े तो बदल लें !" तुम चिन्ता मत करो मां ! मेरी बहिन भूकी नगीं नहीं बैठी होगी—सहसा कमल का स्मृण कर बोली—"पर हां, तनिक ठहरना होगा, मां, कमल को भी ले चलना होगा, जिससे सिर हिला मना करने का स्थान भी उसे नहीं मिले !"

इन्दौर जाने से पहले दयाल बाबू को भी साथ ले लेना चाहिए। यही सोच सुखदेई उनके घर जा पहुँची। परन्तु दयाल बाबू की दशा देख वह एक प्रकार से सन्न रह गई और विशेष कर जब उस के पहुँचते ही विनीत स्वर में दयाल बाबू ने कहा—"समधन जी, इस बार तुम सचि को क्षमा कर दो बेटी के लिए उसका बूढ़ा बाप तुम्हारे सम्मुख पल्ला पसार भिक्षा मांग रहा है।"

सुखदेई बड़ी कठिनता से अपने पर नियन्त्रण कर पाई, उन्हें देख कर धीरे से बोली—"वाह समधी जी, तुमने तो कमाल कर दिया, मैं तो तुम्हें साथ ले चलने को आई थी और तुम हो रोगी बन कर खाट पर पड़े हो—मैं अपनी बहू को लेने जा रही हूँ। तुम लोगों ने मेरी बहू को नहीं समझा, समझ पाने पर क्या उसे इस प्रकार घर छोड़ कर भाग खड़े होना पड़ता।" दो क्षण को रुक बोली—"चल सकोगे समधी जी।"

"तुमने मुझे उबार लिया समधन जी, अब यदि वह अभागिन मर भी जाय तो, तुम ने उसे क्षमा कर दिया है, यही सोच मुझे दुख नहीं होगा।"

तब तक पार्वती भी बाहर से आ गई थी सुखदेई की बात भी उसके कान में पड़ गई थी। पति की ओर से उत्तर उसी ने दिया—"आप के जाने पर इनके जाने की आवश्यकता नहीं रह जाती बहिन! अपनी बहू लेने जा रही हो, घर ले जाओगी, तो हम भी बेटी पी जायेंगे। देखने को मन करेगा तो बुला लेंगे, तुम्हारी सास बहुओं की बात में हम कैसे पड़ सकते हैं? बताओ तो!"

"ठीक है बहिन, अब तो जा ही रही हूँ, भगवान करे मेरी बहू मुझे मिल जाये!" कहते-कहते, सुखदेई का कण्ठ भारी हो आया।

सुखदेई को दुखी देख पार्वती ने कहा—"मिलेगी क्यों नहीं बहन !

पार्वती के बाहं पकड़ सुखदेई ने रोक लिया—"वह सब फिर कभी देखूंगी बहिन ! पहले मुझे उस चांडालनी से निपट आने दो, फिर जीवन भर तुम लोगों के यहां रह, महिनों पकवान उड़ाया करूंगी, परन्तु इस समय तुम लोग मुझे छुट्टी दे दो।"

उन लोगों से विदा ले सुखदेई आकर गाड़ी में बैठ गई, गांव से वह अपनी गाड़ी लेकर चली थी, रास्ते में बिना रुके सीधे इन्दौर हस्पताल में जा उपस्थित हुई, परन्तु न जाने क्यों भीतर पहुँचते ही अकस्मात कुछ भी पूछने का साहस उसका नहीं हुआ। सलोचना ने जब नर्स से सुमित्रा के ठीक होने की बात पूछ ली तब कहीं जा कर वह उसका कमरा पूछ पाई।

सुमित्रा द्वार की ओर पीठ किये पड़ी थी, बहू को इस प्रकार से रोगियों की दशा में पड़ा देख सुखदेई का हृदय चितकार कर उठा, चुपके से पास पड़े स्टूल पर न बैठ सुमित्रा के सिरहाने ही सुखदेई जा बैठी।" धीरे धीरे उसके सिर पर हाथ फिरा केवल 'बहू' शब्द ही वह कह पाई परन्तु मानो वह शब्द भी उसके कण्ठ में फूंक कर रह गया हो, करवट बदल आश्चर्य से फटी आंखें सुखदेई के मुख पर गढ़ा सुमित्रा देखती रही सहमा कुछ कह नही पाई। सास आई है इस पर उसे विश्वास भी नहीं हुआ, दुर्बलता के कारण अनन्त क्षीण स्वर में वह केवल इतना ही कह पाई—"आ गई मां !"

"आ गई बहू ! तुझे लेने आई हूं एक दिन तो तूने टाल दिया था परन्तु आज तुझे ले जाए बिना नहीं टलूंगी।" सुमित्रा का सिर गोद में डालते ही एक प्रकार से सुखदेई के संयम की बांध टूट गई—"बहुत बड़ा बदला तूने मुझ से लिया है बहू ! मेरा सोने की प्रतिमा मुझे इस प्रकार झुलसी हुई दशा में मिलेगी जानती नहीं थी, बता

ता यह क्या दशा तूने बना रखी है ?" उसके कान के पास मुंह ले जा धीरे से कहा—तेरी इस मां का हृदय दुख से फटा जा रहा है, जानती है ।"

सर के संकेत से सुमित्रा ने 'हां' जता दी—सुखदेई की गोद में मुंह छुपा अपने मन की समस्त ग्लानि, समस्त पीड़ा, हृदय का समूचा ताप सुमित्रा ने आंसुओं में बहा दिया । उसके सर को थपथपा सुखदेई बोली—"बहुत हुआ री ! बहुत हुआ !" साथ ही सुखदेई स्वयं रो दी ।

तभी नर्स ने आकर चेतावनी दी—"देखिए इस प्रकार रोगी ."

"कुछ नहीं होगा मेरे रहते से इसे उठा कर ले जाये इतनी शक्ति यम के दूतों में नहीं है, तुम्हें चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं अब मैं आ गई हूं, मैं सब कुछ देख लूंगी ।"

———

१२

घर आकर जब कान्ता को सब के चले जाने का समाचार मिला तब उसे आश्चर्य तो हुआ परन्तु अपनी मां के विभिन्न स्वभाव के कारण उसे अधिक कुछ उधेड़ बुन नहीं हुई, परन्तु विमल के लिये एक प्रकार की चिन्ता भी उसे हुई, परन्तु अपनी व्यस्तता के कारण वह भी एक प्रकार से दब कर रह गई थी।

उन दोनों को करनाल से लेकर सोनीपत तक 'ट्यूबवेल' की नहरें निकालने का काम चलरहा था। उस से पानी लेने के इच्छुक गाँवों से पर्याप्त धन एकत्रित कर वह उसी काम की देख भाल में जुटा था उस के अतिरिक्त कई गाँवों में पाठशाला की शाखायें की भी देख-भाल उसे करनी पड़ती थी। नहर लगभग खुद चुकी थी स्थान-स्थान पर कुंए भी खुद गये थे, उन पर पानी खींचने वाले यंत्र भी लग चुके थे सब से बड़ी

प्रसन्ता की बात तो आज के लिये यह थी उस में से एक पाई का भी सामान्य पाठशाला के अतिरिक्त और किसी स्थान से उसे मंगवाना नहीं पड़ा था।

उस दिन पानी निकाल नहर में छोड़ एक प्रकार से उद्घाटन करने के लिए कान्त ने जाना था उसी समय पाठशाला के एक छात्र ने आकर पाठशाला चलाने का आग्रह किया। पाठशाला जाने का समय उसके पास है, देख वह स.थ हो लिया न जाने क्यों उस दिन पाठशाला का विराट स्वरूप उसे अद्भुत दिखाई दिया। आठ वर्ष पूर्व जब पाठशाला आरम्भ का था तब उसने स्वप्न मे भी आज के इस विराट स्वप्न की कल्पना तक नही की थी। पाठशाला के अधार से प्रयोगशाला तक उसे सब कुछ रमणीक दिखाई पड़ रहा था। पिछले आठ वर्षों से एक प्रकार से एक यंत्र की भांति वह पाठशाला आता और चला जाता। मां को कुलपति के आसन पर बैठा वह एक प्रकार से निश्चित सा हो गया था तो उसी पाठशाला के साथ उसका नाम सम्बन्धित है सोचा तो एक प्रकार के गर्व का अनुभव कान्त को हुआ जो विद्यार्थी उसे लेकर आया था उसकी उपस्थित अनभिज्ञ अपने विचारों में तल्लीन आश्चर्यचकित सा वह ज्यों का त्यों खड़ा रहा तभी पाठशाला के लेखाचार्य रजिस्ट्रार ने आकर आदर से कहा कान्त भैया! आज हम लोगों ने एक यंत्र का अविष्कार किया है।

स्नेह से लेखाचार्य के कन्धों पर हाथ रख कान्त ने विनम्र उत्तर दिया "यह सब आप लोगों की कार्य कुशलता का परिणाम है ओंकार जी!"

"रहने दीजिए। हम लोगों की प्रशंसा तो आप सदैव किया करते हैं कभी भूल से अपनी प्रशंसा भी कर दिया कीजिए।"

"वह भी किए देता हूं आप लोगों के कान्त भैया बहुत बड़े त्यागी हैं। उन जैसा दूसरा कोई जन्मा नहीं न ही कोई जन्मेगा। कहिए अब तो आप प्रसन्न हुए ना।" बात समाप्त करने-करते कान्त अट्टहास कर हंस दिया।

उलहना देने के से स्वर में ओंकार ने कहा। "आप के उपहास करने से ही हमारे कान्त भैया छोटे नहीं हो जाते चलिए भीतर चल कर देखिये तो आप के विद्यार्थियों ने इस बार क्या निर्माण किया है।"

भीतर पहुंच जो छोटा सा यन्त्र कान्त ने देखा उसका आकार कुछ अधिक बड़ा नहीं था। एक प्रकार से हाथ पम्प की सी ऊंचाई उसकी थी उसी प्रकार का हत्था भी उसमें लगा था उस यंत्र का उपयोग तेल निकालेने के कोलहू के स्थान पर होना था। पम्प की भांति हत्था चलाते रहने से उस यंत्र में शूय (वैक्यूम) का निर्माण हो जाता था। विशेष दबाव के कारण तेल के बीच पिस जाते और तेल निकल पड़ता था एक और विशेषता उस यंत्र में थी उसके उपयोग से तेल की मात्रा पांच प्रतिशत अधिक निकलती थी।

इस प्रकार के कितने ही अविष्कार पाठशाला के विद्यार्थी कर चुके थे छोटे-मोटे यंत्रों से लेकर विशालकाय कपड़े बनाने के यंत्र और बड़े-बड़े कारखानों के सम्पूर्ण यंत्र उसी पाठशाला मे निर्मित हुए थे। परन्तु यह अपना अलग ही महत्त्व रखता था कारण कि अब तक जितने भी यन्त्र बने थे उनका केवल निर्माण ही किया था। उन्होंने अविष्कार नहीं परन्तु यह तो उन का अपना अविष्कार था। घटों व्यस्त रह कान्त तथा अन्य लोगों ने माथा पच्ची कर इस यंत्र के पत्र इत्यादि बनाए थे परन्तु इस में उन्हें दो बार असफलता ही पल्ले पड़ी थी, परन्तु आज इस अविष्कार के कारण पाठशाला गर्व करने योग्य हो गई थी। इस यंत्र का सब से बड़ा गुण था कि बड़ों को छोड़ एक पांच वर्षीय बालक भी उसे

सरलता से चला सकता था दूसरे यंत्रों की अपेक्षा वह घंटे भर का काम ४५ मिनट में हो कर देता था। यन्त्र देख प्रसन्नचित हो कान्त ने पूछा। "इस यन्त्र पर किन-किन लोगों ने काम किया है।"

लेखाचार्य ने उत्तर दिया "जी ! राधेश्याम, मनमोहन, गोपालकृष्ण, प्यारेलाल, तथा आनन्द ने।" ओंकार बाबू कान्त का अभिप्राय समझ गए थे वैसे भी काम करने वालों के नाम पर अविष्कार का नाम पड़ेगा इस बात का निर्णय पहले ही कर लिया गया था उसके साथ उन्हें विशेष पारितोषिक भी मिलता रहेगा, यह ठीक है कि पाठशाला ही उसकी एक मात्र निर्माता होगी फिर भी वह अविष्कार उन लोगों का ही अविष्कार समझा जायेगा।

ओंकार की बात सुन कान्त बोला—"फिर तो ठीक हुआ ओंकार जी इस का नाम" 'रामगोपानन्द' रख दिया जाये। कहिये आप का क्या विचार है।"

ओंकार ने विनम्र भाव से अपना विचार प्रस्तुत किया—"यह तो अन्याय हुआ कान्त भैया ! आप ने जो इतना परिश्रम किया है उसका क्या कोई महत्त्व नहीं ?"

ओंकार की आयु २५ वर्ष की थी। उसे छोटे भाई के रूप में कान्त समझता आया था उसके गले में बाहें डाल एक प्रकार से शरीर का सारा भार डाले हुए खड़ा था। थोड़ा हंस उसकी ओर झुक कर बोला. ओंकार, अपने भैया से बड़ा क्या तुझे और कोई दिखाई नहीं पड़ता—अरे पागल ! तेरे भैया ने क्या किया है ! दिन भर परिश्रम कर यह लोग मरे और नाम चुरा लूं मैं, क्यों रे ! तू क्या मुझे इतना क्षुद्र समझता है।"

दीर्घ निश्वास छोड़ ओंकार ने कहा—"नहीं भैया क्षुद्र तुम नहीं

हो, हूँ मैं ! जानता था तुम से कही गई बात स्वयं मुझ पर आ रहेगी फिर भी कह बैठा।"

खिलखिला कर कान्त हँस दिया, "समझ गया भाई ! चलो तब तो ठीक ही हुआ। अब तू चिन्ता मत कर, तेरे यह भैया किसी बड़े अविष्कार को चुरायेंगे इन छोटी-मोटी चोरियों से क्या तेरे भैया का पेट भरना है।"

कृत्रिम क्रोध दर्शाते हुए लेखाचार्य बोले—"रहने दीजिये ! चुराने वालों में से आप नहीं हैं झूट-मूट मुझे बदनाम करने से क्या उपयोग।"

उन पांचों विद्यार्थियों को बुला कान्त ने उन्हें बधाई दी, इस काम से निपट कारखाने के अधिकारी योजना विस्तारक एवं प्रसारक (पब्लिसिटि इंचार्ज) से परामर्श करने में उसे लगभग दो घंटे लग गए उसकी अपनी गाड़ी वहां थी नहीं। ओंकार की गाड़ी लेने के अभिप्राय से बोला—"हाँ रे ओंकार ! तेरी वह गाड़ी खड़ी-खड़ी नष्ट हो रही है तू उसे उपयोग में लाता नहीं, परन्तु भाई गाड़ी तो किसी प्रकार चलानी ही होगी। इसी कारण सोचता हूँ आज तेरी वह गाड़ी ही ले जाऊं।"

सिर हिला स्वीकृति देता ओंकार केवल मुस्करा भर दिया।

उस दिन ग्राम के बीच से जाते समय न जाने क्यों कान्त को वह भी अद्भुत प्रतीत हुआ। आठ वर्ष के अल्प काल में उसका वह ग्राम एक प्रकार से स्वर्ग की भांति दमकने लगा था। नगर की भव्य अट्टालिकाएं स्वच्छ मार्ग स्थान-स्थान पर बने उद्यानों के अतिरिक्त उत्तरी भारत की प्रमुख मंडियों का भी आदर्श बन कर रह गया था। नगर का वैभव विद्या गुण सब कुछ उसने अपने ग्राम के अर्पण कर दिया था, परन्तु नगर की की हाय-हाय दुख लेश का क्लेश मात्र भी गांव के भीतर प्रवेश नहीं हो पाया था आपितु भाई चारे तथा सहयोग के कारण चारों ओर धन, सुख-अश्वर्यं की आभा ही दिखाई पड़ती थी। यही सब सोचते-सोचते

उसे अपनी आरम्भिक कठिनाइयों तथा विपत्तियों का ध्यान हो आया। आरम्भ में दस पाँच मुकदमों के अतिरिक्त मार पीट भी उसे सहनी पड़ी थी परन्तु वह सब स्वमेव ही समाप्त होती चली गई। बनियों का मुकदमा आरम्भ में उसे बड़ा जटिल दिखाई पड़ता था। वह भी समाप्त हो गया, वैर विरोध शनै ! शनैः लोप होते चले गए बदलू के छूट आने के पश्चात से गांव में मार-पीट भी लगभग समाप्त हो चुकी थी।

सहसा उसे लगा कि जिसके लिए यह सब विपत्तियाँ मोल ले इस ग्राम का रूप ही उसने पलट दिया वही आज उससे कोसों दूर बैठी है यदि एक बार आकर देख लेती कि उसके कान्त ने उसके लिए कैसे स्वर्ग का निर्माण किया है। परन्तु देखती कैसे ? उसने तो उसका सर्वनाश करना था ना ! विचार ने पलटा खाया उस दिन वह जो इन्दौर में मिलने आई थी वह क्या उसके मन का पश्चाताप तो नहीं था। परन्तु पश्चाताप से क्या बनता है—मन ने प्रश्न किया—विनोद तो वहां कहीं दिखाई नहीं पड़ा, क्या उनका विवाह नहीं हुआ ? क्या उसने सचि को छोड़ दिया।'—आगे और कुछ सोचने का साहस उसका नहीं हुआ सोचा वह भी कितना पागल है इतना कुछ पास रहने पर भी केवल सचि के कारण वह अपने कार्य तक का महत्व नहीं समझ पाया।

ग्राम में आठ वर्ष रहने पर भी उन लोगों में ठीक से रहना उसका नहीं था, उन लोगों में उठना बैठना भी प्रायः नहीं होता था। सब कुछ कहते रहने पर भी एक प्रकार से गाँव के लोगों से अलग अलग ही वह रहता था। आचार विचार, हो सकता है वह नगर में रहने के संस्कार हों परन्तु उन लोगों का विश्वास पाजाने पर भी एक प्रकार से बड़प्पन की भावना उसे उनसे परे धकेलती रही है। कान्ता ने निर्णय किया अब से वह उन लोगों में से एक बनकर रहेगा, सचि की चिन्ता करने से भी अधिक सुख यहां है।

उद्घाटन करने के पश्चात भी प्राय: उसे ट्यूबवैलों की देख भाल के लिए जाना पड़ता था काम की अधिकता के कारण उस दिन भोजन के लिए भी घर लौटना उसका नहीं हुआ तब वहाँ के कर्मचारी ने अपने यहां भोजन करने का अनुरोध कान्त से किया। दस पांच दिन पहले वह उसे टाल देता परन्तु उस दिन वह बिना झिझक मान गया। भोजन करने बैठ मक्की की रोटी सरसों का साग देख उसकी भूख जाती रही। अनादर कर लौट जाने वालों में से कान्त नहीं था, इसी कारण चमचा मांगा खाने बैठ गया, चमचा देते हुए कैलाश की मां बोली—वाह बेटा वाह ! भगवान ने दो हाथ दिए हैं, फिर इस कड़छे का क्या होगा ?

कान्त को कुछ बुरा अवश्य लगा परन्तु चुपचाप हंस दिया। न जाने क्यों उस दिन का भोजन उसे इतना स्वादिष्ट लगा, हो सकता है महत्व की भावना के कारण हो, साग और रोटियों में पड़ा मक्खन और छाछ का गिलास उसे स्वादिष्ट से स्वादिष्ट पकवानों से भी अधिक स्वादिष्ट प्रतीत हुआ मानों जीवन में भर पेट भोजन उसने पहली बार किया हो। खा पी कर पेट पर हाथ फेरते हुए बोला—"पेट भर गया मां ! पर मन नहीं भरा।

कृतज्ञ मन से कैलाश की मां ने उत्तर दिया—"ऐसा मैंने क्या खिला दिया रे ?"

"नहीं मां ! मुझे तो आज पता चला कि मक्की की रोटी और सरसों का साग इतना स्वादिष्ट होता है।

भोजन के उपरान्त घन्टाभ भर लेटे बिना कैलास की मां ने उसे आने नहीं दिया। बिछौने पर लेटते ही एक बार पुनः उसके मन में विचार आया—"वास्तव में इन लोगों का स्नेह की सीमा नहीं है इन का स्नेह पाने के लिए एक सुचित्रा तो क्या अनेकों सुचित्राओं का त्याग किया जा सकता है।,'

मुखदेइ को गए डड़ मास हो चला था उस दिन कान्त को कचहरी में उपस्थित होना था, कचहरी में जाने से पहले वह गिरीश से अवश्य मिल लेता था, उस दिन भी आठ बजे वह उसके पास पहुँच गया। गिरीश उसे आवश्यकता से अधिक गम्भीर दिखाई पड़ा। मित्र की वह उदासीनता कान्त को खटकी। उसकी पीठ पर धौल जमा बोला—"क्यों बे तुझे क्या हुआ किसी ने मारा या सांप सूंघ गया?

"नहीं कान्त! बड़े भैया की बात सोच रहा हूं।"

गिरीश प्रायः विमल को नाम लेकर ही पुकारता था। इसी कारण उसके मुख से बड़े भैया सुन उसे आश्चर्य कम नहीं हुआ परन्तु व्यक्त नहीं किया, सहज में ही पूछा—"क्यों क्या हुआ।

हुआ कुछ नही, यह मुकदमा उसका सर्वनाश करता दिखाई पड़ता है अपना रहने तक का मकान आज वह बेच रहे हैं।

कान्त कुछ बोला नहीं इस बारे में और कोई बात गिरीश ने भी नहीं कही।

मित्र के हां से भोजन कर निकलने निकलते उसे दस बज गए।

"बड़े भैया अपने रहने का मकान भी बेच देंगे? क्या खड़े रहने को भी स्थान वह छोड़ना नहीं चाहते, कमल और भाभी का क्या होगा? "यही प्रश्न उलट पलट कर उसके मस्तिष्क में आते और चले जाते सहसा उसने निर्णय किया आज वह सदा के लिए इसका निपटारा कर देगा यही संकल्प कर वह कचहरी जा पहुंचा।

कान्त के मुकदमे का क्रमांक २१ वां था इसी कारण इधर उधर घूम कर वह समय बिता रहा था कि सहसा विमल को कचहरी के कमरे में घूमते देख लपक कर, वह सामने जा खड़ा हुआ—"मैं पूछता हूं बड़े भैया? आपने समझ क्या रखा है।"

"बात क्या है रे!" उस घटना के कारण कान्त क्रोध कर रहा

है यही सोच विमल ने प्रश्न किया था परन्तु जब कान्त ने रोब भरे स्वर में कहा—"देखो बड़े भैया ! अपना सर्वनाश करने का अधिकार तुम्हें है छोटा भाई होने के कारण मेरा नाश भी तुम कर सकते हो और वह करोगे, मैं तुम्हें रोकूंगा भी नहीं ! चाहो तो आज मुझसे सौगन्ध ले लो परन्तु कमल और भाभी को इस प्रकार नष्ट होते नहीं देख सकता, वह अधिकार भी तुम्हें नहीं है।

विमल हंसे बिना नहीं रह सका—"तू तो है गधा।"

"गधा हूं ना ! तो मेरी भी एक बात समझ लो, प्राण रहते वह सब तुम्हे नहीं करने दूंगा बड़े भैया होते हुए भी तुम्हारा सिर तक उतार देने में संकोच नहीं करूंगा। नहीं यही मेरी इस बात को तनिक भी झूठ मत समझना "सहसा गम्भीर हो दुखी कंठ से बोला—"मुझे भिकारी ही बना देना चाहते होना बड़े भैया ! वही सही मुझे तनिक भी आपत्ति नहीं ! मेरा क्या है, कहीं भी मुंह छिपा कर निकल जाऊंगा।

"अपनी बात समाप्त कर एक प्रकार से विमल-का हाथ पकड़ खींच कर बाहर ले आया, जिलाधीश होने के कारण गिरीश के कमरे में उसे ले गया, और गिरीश से कहा—"आदरणीय न्यायधीश मैं अपनी सारी सम्पत्ति बड़े भैया के नाम करता हूं तब तो यह मुकदमा समाप्त हो जायेगा।

कान्त के इस उतावले पन से सब लोग भौंचके रह गए। विमल ने कुछ कहना चाहा। तड़फ कर कान्त बीच में ही बोल पड़ा। एक शब्द भी नहीं सुनूंगा बड़े भैया, एक शब्द भी नहीं। बोलने मात्र से हीं तुम्हारा सिर काट कर फेंक दूंगा। मेरी यह बात गांठ बांध लेना।

किसी की बात सुने बिना लिखा पढ़ी कर रजिस्ट्री कराते कराते

कांत को ५ बज गए, इस बीच कई बार विमल ने बोलना चाहा-परन्तु कान्त ने उसे बोलने नहीं दिया। हाथ पकड़े एक प्रकार से बन्दी की तरह भांति घसीटता सा साथ लिए फिरता रहा। कचहरी का काम निपटा कर एक प्रकार से बल पूर्वक उसे गाड़ी में धकेल कहने लगा— 'तुम चिन्ता मत करो। मां को गए डेढ़ मास होने को आया है। दो एक दिन में आती ही होंगी। आज अपना हिसाब किताब संभाल लो, मां के जाते ही उन्हें सहमत करना मेरा काम है, रही मेरी बात उनके आते ही मैं कहीं भी निकल जाऊंगा तुम्हें चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।

कान्त की बात का उत्तर देने की चेष्टा विमल ने नहीं की। उसकी बात सुन मन ही मन मुस्कराता वह शांत बना रहा।"

जिस तेजस्वी मां को सहमत करने की बात कान्त ने इतने काम के साथ कही थी घर में पांव रखते ही उससे साक्षात्कार होने पर उसका वह दम्भ हवा हो गया। घूर कर जब सुखदेई ने उसकी ओर देखा तब तो उसका रहा सहा साहस एक दम से छिन्न भिन्न हो गया। फिर भी हृदय का सम्पूर्ण साहस एकत्रित कर बोला— 'मैंने आज सारे मुकदमे निपटा दिए हैं मां! तुम्हारे आज्ञा के कारण कमल और भाभी को भूखा मरने नहीं देख सकता था। इसी से·········

"इसी से सब कुछ विमल को दे दिया, यही ना।"

"मां ···" विमल ने सुखदेई की बात का उत्तर देना चाहा।

'नहीं नहीं यह सब अभी देखने सुनने का अवकाश मुझे नहीं। यहां तुम लोगों में खड़े रहकर तर्क वितर्क करने की आवश्यकता भी मुझे प्रतीत नहीं होती, लिखा पढ़ी करने के पश्चात ही तुम लोग यहां आए होगे। यह मैं समझ गई हूं, अन्यथा तो तुम दोनों इस प्रकार छाती ठोक अपना यशोगान करने यहां नहीं आते, चिन्ता नहीं, सुखदेई कहीं भी जाकर रह सकती है कचहरी भी मास दो मास का समय

देनी है परन्तु सुखदेई घंटे भर के भीतर ही मेरा यह मकान खाली कर देगी विमल !! एक आवश्यक काम निपटाना है, अन्यथा तो क्षण भर भी रुकती नही ! कान्त की ओर पलट कर कहने लगी, आज तुझसे भी एक अन्तिम निपटारा करना है तनिक भीतर चल !"

भीतर पहुँच कहने लगी—"मैं बहू को घर लाना चाहती हूं कान्त ?

आश्चर्य से सुखदेई के मुख की ओर ताकते कान्त मुख से क्षण भर को एक शब्द भी न निकला, परन्तु तुरन्तु ही अपने को संयत कर बोला "तुम्हारी दुहाई है मां, वही आज्ञा तुम मत दो और जो चाहो कर सकता हूँ।"

आज्ञा ! आज्ञा करने पर मैं यह और वह नहीं सुनती कान्त ! अपनी आज्ञा की बात भी मैं पूछ नहीं रही थी ! बहू को ले आना चाहती हूँ – केवल इतना ही कहा था।"

कांत विचलित नहीं हुआ बोला—तब ठीक है मां ! ले आओ तुम मुझे कोई आपत्ति नहो परन्तु उसके रहने से मैं नहीं रह सकूंगा यह भी तुम निश्चित रूप से जान लो ।

नहीं रह सकता ! आश्चर्य तो सुखदेई को हुआ परन्तु अपने को संयत रखते हुए कहा—"तो जा ! लड़के के चले जाने पर कोई कलंक नहीं लगता, लगता है बहू के जाने पर ;

"तब फिर ठीक है मां ! कह सुखदेई के चरण छू कान्त बाहर की ओर चल दिया, चौक पार कर ज्यों ही दहलीज में पहुंचा वहां सुचित्रा को खड़े देख ठिठक कर खड़ा हो गया। इस प्रकार उसे रुकते देख कर सुचित्रा बोली जानती हूँ मेरे कारण घर छोड़कर जा रहे हो। परन्तु मेरी एक बात का उत्तर दिये बिना तुम्हारा जाना नहीं हो सकता ।

शांत भाव से कान्त ने कहा "कहो क्या कहना चाहती हो ?"

तुम्हें स्मरण होगा आज से आठ वर्ष पहले तुमने कहा था कि

तुम्हारे घर के द्वार मेरे लिए सर्वदा खुले रहेंगे, सोचती थी अपनी वह बात तुम भूलोगे नहीं, परन्तु देखती हूँ कि आज तुम्हें वह बात स्मरण कराने की आवश्यकता पड़ गई है।'

इसी से तो तुम्हें ना निकाल मैं स्वयं निकल कर जा रहा हूँ।

' तुम्हें निकालने मैं नहीं आई, मैं पूछने आई हूँ केवल इतना ही कि मेरे लिए स्थान तुम्हारे घर में है अथवा नहीं। सच जानना नहीं कहदेने भर से ही एक क्षण भी बिना रुके चली जाऊंगी, मेरी इस बात का कोई छोटा मोटा उत्तर तुम्हारे पास है !"

"मैंने कहा ना, स्थान है।"

"जिसे तुम स्थान कहते हो उस स्थान की बात मैं नहीं कह रही हूँ नौकर चाकरों की भांति पड़ी रहने वाली सुचित्रा नहीं है इस घर के बहू के स्थान की बात ही हम लोगों में निश्चित हुई थी यह तुम भी जानते हो।"

"वह स्थान तो तुमने खो दिया।"

स्थान कोई खोता नहीं वह तो अपने ही स्थान पर ज्यों का त्यों बना रहता है मनुष्य उसे छोड़ कर भी चला जाय तो वह कहीं जाता नहीं मुझे अपने उस स्थान पर तुम बैठने नहीं देना चाहते यही क्या तुम ने सोच रखा है।"

"यही समझ लो !"

"यही समझ लेती हूँ परन्तु एक बात और बताओ—मेरे स्थान के अतिरिक्त दूसरा स्थान दे मेरा अपमान करने का साहस तुम्हें क्योंकर हुआ चलो वह भी छोड़े देती हूँ। कारण कि तुम्हारी दी हुई भिक्षा लेने मैं नहीं आई कुछ भी मिल जाने पर सन्तोष कर लेना भी मेरा स्वभाव नहीं है।"

"इन ऊट पटांग बातों के लिए मेरे पास समय नहीं है कृपया मुझे जाने दो ?"

"ठीक है जाओ। परन्तु स्मरण रखना जिस प्रकार मेरे चले जाने पर मेरे स्थान पर तुम अधिकार जमा कर बैठ गए थे उसी प्रकार एक बार जाने से इस घर की चौखट पर पांव रखने का भी अधिकार तुम्हें नहीं रहेगा तुम्हारा यह जाना अन्तिम जाना होगा अब तुम चाहो तो

तब फिर क्या चाहती हो तुम ?

वही जो प्रत्येक भारतीय नारी चाहती है।

उसका तो तुम स्वयं विरोध कर चुकी हो ?

भूल भी तो स्वीकार रही हूं।

लेकिन ······ ।

सुचिता की आंखें बहने लगीं। भरे गले से वह केवल इतना ही कह सकी—नारी की एक भूल को भी वह पुरुष सहन नहीं कर सकता जिसका जीवन ही भूल भुलइयों में बीतता है। निर्माण और उत्थान के सपने—देख कर उन्हें साकार करने वाले तुम भी अपनी 'सचि' को क्षमा नहीं कर सकते।

कान्त चुप रहा।

सुचिता लौटने लगी—तब फिर जो होता है हो, अपनी भूल के प्रयश्चित स्वरूपप अब भूल करनी पड़ेगी ही तो पड़े। अगर तुम देखना ही चाहते हो कि ईन्सानी भेड़िये मेरे शरीर का व्यापार करते रहें और तुम मानवीयता के सपने देखते रहो, तो देखो। मैं अब कभी नहीं आऊंगी तुम्हारे द्वार पर······कभी नहीं :

सुचिता दूर होने लगी तो कान्त को लगा जैसे उसके सम्पूर्ण अहम् को चुनौती दे, तिरस्कृत कर वह अपनी भूल को सही कर लौट गई है।

मां को आवाज देता वह बोला.—

रोको मां, रोको, मैंने उसे माफ कर दिया। लौटा लाओ अपनी बहू को। मैं कह रहा हूं, लौटा लो।

और दौड़ता हुआ पुकार उठा—यहां लौटो सुचिता, तुम इस घर की बहू हो, बहू बन कर लौट आओ।

दूसरे ही क्षण सचि कान्त के परों की ओर झुक रही थी और कान्त उसे उठाता कह रहा था—आओ सखि। हम तुम भूल-भुलैयों की दुनिया में नया कदम उठाएं। आगे बढ़ें।

——